आचार्य श्री तुलसी
"जैसा मैंने समझा"

सीताशरण शर्मा
सचालक—वल्लभ निकेतन
बैंगलूर

दक्षिण प्रादेशिक अणुव्रत समिति प्रकाशन

संस्करण पहला—१९६९

प्रतियां २०००

अर्थप्रदाता श्री पन्नालाल सूरजमल सेठिया, स्मारक ट्रस्ट, बेंगलूर

—

प्राप्ति स्थान

(१) विश्वनीडम् ट्रस्ट
वल्लभ निकेतन
न० ४ कुमार कृपा
बंगलूर—१
फोन २८७१५

(२) दक्षिण प्रादेशिक अणुव्रत समिति

(३) कोहेनूर एलेक्ट्रिक
चिकपेट बंगलूर २A

मूल्य सजिल्द ४ रुपये

श्री पन्नालाल जी सेठिया
(मृत्यु के समय 65 वर्ष)

श्री सूरजमल सेठिया
(मृत्यु के समय 27 वर्ष)

समर्पण

जिनके गोद में खेलते खेलते ही मैंने
धार्मिक कहानियो श्रौर श्रात्म सयम की बातों में
रुचि लेना शुरू कर दिया था,
उस जन्मदात्री पू० माता
श्रीमती सरस्वती देवी
श्रौर

जिनके स्नेह, ताडना, श्रौर शिक्षण ने
जवानी के डगमगाते पगो को
एक सही दिशा दर्शन दिया
तथा श्राज भी दे रहा है
उस मुक्तिदात्री पू० माता
श्रीमती महादेवी ताईजी
को
सादर समर्पित ।

विषय क्रम

चेतनवान जैन आचार्य

मुगेर (बिहार) के स्वामी सत्यानन्द जी ने गोंदिया में एक योग-विद्या प्रेमियो का सम्मेलन बुलाया था। मैंने अपनी हिमालय साधना के दिवसो मे योग विद्या का अल्प-स्वल्प अनुभव किया था। लेकिन हठ-योगी और राजयोगी होने का मैंने कभी दावा नही किया। तो भी गोंदिया के सम्मेलन मे शरीक होने का आमत्रण मिला। वहाँ मैंने मुख्य-तया दो बातो पर भार दिया।

महात्मा गाधी जी ने अपने आश्रम की बुनियाद मे ग्यारह व्रतो की स्थापना की। जिसमे योग विद्या के यम नियमो का (खास करके यमो का) पुरस्कार है। सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह ये पाँच यम जिस तरह भारतीय सस्कृति की बुनियाद है, उसी तरह योग विद्या की भी बुनियाद है। मैं तो मानता हू कि ये यम मानवीय सस्कृति के— सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक विश्व सस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। इसलिए दुनिया के आर्थिक, शैक्षणिक आदि सार्वभौम सवालो का हल भी हमें इन्ही यमो में मिलता है।

महात्मा गाधीजी ने पाच यमो में और छ तत्वों का बढावा किया। जिससे भारतीय सस्कृति और मानवीय सस्कृति भी विशुद्ध और समृद्ध हो जाये। उनके छ तत्व निम्न प्रकार है —

शरीर धारी के लिए अगर निष्पाप जीवन व्यतीत करना है, आरोग्य, कौशल्य और विश्वप्रेम का विकास करना है तो मनुष्य को शरीर-श्रम करना ही चाहिए। और जब शरीर-श्रम करना ही है तो अन्नोत्पत्ति, वस्त्र-निर्माण, गृह रचना और उपकरणो के आविष्कार के रूप मे शरीर-श्रम भी करना ही चाहिए। ब्रह्मचर्य यानी सयम की सिद्धि प्राप्त करनी है तो स्वादेन्द्रिय पर काबू पाना आवश्यक है। मनुष्य न

पेटू बने न स्वयं बने । जिह्वा लौल्य के वश न जाय । इसके लिए गांधीजी ने अस्वाद व्रत की स्थापना की। भारत मे और समस्त दुनिया मे अनेक वंश के मानव रहते है। उनके उद्धार के लिए अनेक धर्म दुनिया मे प्रचलित हुए है। इनके बीच अभिमान मूलक या मत्सर मूलक संघर्ष अगर टालना है और मानव जाति के लिए सहयोग और समन्वय की संस्कृति देनी है तो उच्च-नीच भाव दफनाकर सर्व धर्म-समभाव का स्वीकार करना ही चाहिए। भारत में धर्म के नाम से और यूरोप मे वर्णों के अभिमान से जो अस्पृश्यता अथवा अलगाव प्रचलित है उसका विरोध तो कमर कस कर करना ही चाहिए।

ऐसा करते विश्वप्रेम के नाम से मनुष्य अगर अपने इर्द गिर्द के लोगो के प्रति उसका जो विशेष कर्तव्य है उसे टाल दें तो सामुदायिक जीवन की बुनियाद ही टूट जायगी। इसलिए गांधीजी ने स्वदेशी व्रत का नये और आध्यात्मिक ढंग से पुरस्कार किया।

और अगर व्यक्ति को जाति को वंश को या राष्ट्र को पुरुषार्थ करना है पराक्रम करना है तो निर्भयता तो अत्यावश्यक है ही। गीता मे इसीलिए दैवी संपत की फेहरिस्त मे सत्त्व संशुद्धि के भी पहले अभय को स्थान दिया गया है।

योग विद्या की बुनियाद मे जो पांच यम है उनमे ये छ: व्रत बढ़ा कर गांधीजी ने अपने आश्रम के सेवा व्रतों को संपूर्ण किया।

गोन्दिया वाले योग सम्मेलन में मैंने इन यमों की बुनियाद का जिक्र किया। मुझे आश्चर्य हुआ कि केरल की ओर के किसी प्रतिनिधि ने इसी सम्मेलन मे कहा कि योग विद्या मे इन यमों का कोई महत्त्व नहीं है। मैं जानता हूं कि योग विद्या के अभिमानी लोग आसन प्राणायाम से प्रारम्भ करके धारणा ध्यान समाधि की ओर प्रस्थान करते हैं। नेति बस्ती धौती त्राटक आदि शारीरिक क्रियाओं को महत्व देते हैं। लेकिन यम नियमों की उपेक्षा करके योग-विद्या कैसे सफल हो सकती है मेरे ध्यान मे नही आता। मैं तो शिक्षण शास्त्र की बुनियाद

मे भी यमो को स्थान देना उचित समझूगा ।

हमारे जमाने मे साम्कृतिक विकास की दृष्टि से इन यमो को स्वीकार करके सारा राष्ट्र उसके लिए तैयार हो जाये, इस हेतु इन यमो को आसान स्वरूप मे देश के सामने रखने का युगानुकूल और स्तुत्य प्रयत्न आचार्य तुलसीजी ने चलाया है। इसे वे 'अणुव्रत' कहते हैं। मैं इस अणुव्रत आन्दोलन की सफलता केवल भारत मे नही किन्तु सारी दुनिया मे हो ऐसी प्रार्थना करता हू और इसीलिए आचार्य तुलसी के प्रयास का अभिनन्दन करता हू ।

गोन्दिया योग सम्मेलन मे मैंने जो दूसरी बात कही थी उसका यहा पर कोई सम्बन्ध नहीं है। तो भी उसका जिक्र कही तो होना ही चाहिए, ऐसे लोभ से यहा पर उसे पादटीप मे दे दूगा ।[1]

गाधी जी जानते थे कि इस युग के लिए सार्वभौम आदर्श है सर्वोदय । उसके लिए जिस सस्कृति का विकास करना है वह होगी ग्यारह व्रतों वाली जीवन-साधना । और ऐसी साधना सिद्ध करते अगर अन्याय, अत्याचार, सघर्ष और शोषण का विरोध

---

१ हम लोग अकसर योग-विद्या की बात करते पातजल योग को ही प्रधानता देते हैं। वह स्वाभाविक भी है। लेकिन आज के युग मे सात प्रकार के योगो का एक साथ अध्ययन होना चाहिए ।

(१) पातजल योग-दर्शन, (२) जैन योग-दर्शन, (३) बौद्ध योग-र्शन, (४) बौद्ध-दर्शन मे से जापानियो ने जिसका विशेष विकास किया वैसा झेन (ध्यान) दर्शन। (५) भक्तियोग, (६) इस्लाम ने जिसका वकास किया है वह तसौफ यानी सूफी योग-दर्शन और (७) ईसाई ढवादी (Mystic) लोगो का योग-दर्शन ।

इन सातो का आदर पूर्वक किन्तु वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ अध्ययन होना चाहिए। और फलत एक सार्वभौम योग-विद्या का आविष्कार भी होना चाहिए ।

करना पड़े तो अहिंसामूलक सात्विक क्षात्र-तेज से प्रेरित सत्याग्रह की युद्धनीति का स्वीकार करना होगा। सत्याग्रह एक तरह से एक अद्वितीय रणनीति है और दूसरी तरह से देखा जाय तो वह व्यक्ति को और समाज को सुशिक्षित करने की अंतिम और उग्र शिक्षण-पद्धति भी है।

जब मैं देखता हू कि गाधी जी के इस विराट युगकार्य मे आचार्य तुलसी जी के अणुव्रत आदोलन का महत्व का योगदान है तब मैं उसका हार्दिक पुरस्कार क्यो न करू ?

गाधी जी ने अपने युग-कार्य में सामाजिक आर्थिक शोषण का बुनियादी इलाज ढूढ निकाला। धन धर्म के बीच जो विग्रह चलता है उसकी अधार्मिकता गाधी जी ने दुनियाँ के सामने प्रगट की। अस्पृश्यता के कलक के खिलाफ गाधी जी ने जो बेहाद पुकारी उसका महत्व जड-मानस वाला हिन्दू समाज नही समझ सका उसे अमेरीकन लोग समझ सके। अब वे अन्तर्मुख जरूर होगें।

जिन प्राणियो के सहयोग से मनुष्य जाति ने अपना उत्कर्ष साधा है, उनके प्रति धर्मबुद्धि जागृत करने के लिए गाधी जी ने गो-रक्षा के भारतीय प्रयास को एक नयी बुनियाद दी। जिसका आकलन हमारे बड़-बडे आचार्यों को भी नही हुआ है।

लेकिन गाधी जी ने एक बहुत बड़ अन्याय और असम्य उपेक्षा का विरोध करने के लिये जो प्रयास किया उसकी ओर भी लोगो का पूरा ध्यान नहीं गया—वह है स्त्री जाति का उद्धार। जिस माता के पेट से मनुष्य जन्म लेता है उसकी उपेक्षा करने का पाप भी वह करता है। इस विशाल दोष को टालने के लिये महात्मा जी ने अपने आश्रम के द्वारा नव-सस्कृति की बुनियाद डाली और कस्तूरबा स्मारक को भी एक विशेष रूप दिया।

आचार्य तुलसी जी ने जन साध्वियो को अपने ढग से शिक्षित करने का आग्रह रखा है यह सराहनीय है। सिलोन (लका) और ब्रह्मदेश के

बौद्धों ने भिक्षुणियों के संघ को नामशेष ही कर डाला है। जब हमने वहाँ के साधुओं को पूछा कि आप के देश में भिक्षुणियों का संघ क्यों नहीं, तब रूढ़िनिष्ठों को छाजे, ऐसा जवाब उन्होंने दिया। कहने लगे कि "नियम के अनुसार पुरुष-साधु स्त्रियों को दीक्षा नहीं दे सकते और हमारे यहाँ दीक्षा देनेवाली कोई स्त्री साध्वी रही नहीं। इसलिये भिक्षुणी-संघ नामशेष हुआ है।" जवाब उनके लिये पर्याप्त और संतोष कारक था। लेकिन धर्म-जीवन की ऐसी उपेक्षा मानव-हितैषी सहन कैसे करें। जापान में तो बौद्ध भिक्षुओं के साथ बौद्ध भिक्षुणियां भी काम करती हैं। जैन संप्रदाय में साधु और साध्वी दोनों संघ विद्यमान हैं। लेकिन साध्वियों की शिक्षा की ओर तुलसी जी ही विशेष ध्यान देते हैं। यही विशेष बात है। जगत की आज की स्थिति, मानव जाति की भूख और धर्म-जीवन के सामने खड़े होने वाले महान आत्मिक प्रश्न इन सबका विचार करके साध्वियों का शिक्षा-क्रम जो आचार्यजी ने चलाया है, वह भी मेरे जैसे की दृष्टि से शायद थोड़ा अपर्याप्त गिना जायगा। किन्तु साध्वियों को अद्यतन शिक्षा देने का महत्त्व वे स्वीकारते हैं, यही बहुत है। मैं उनका अभिनंदन करता हूँ।

किसी भी धर्म की बात लीजिये। उसके साधु जब समाज-हितैषी और शिष्य-वत्सल होते हैं, तभी संघ का विस्तार हो सकता है। और संघ समाज की सेवा भी कर सकता है। मैं मानता हूं कि तेरापंथ जैसे अपनी ही रूढ़ि को आग्रहपूर्वक चलाने वाले पंथ में आचार्य तुलसी जी कुछ खुली हवा ला सके हैं। उनका कार्य जैसे बढ़ता जायेगा, वैसे रूढ़िनिष्ठा का जोर कम होता जायेगा। और संघ में प्राण का स्फुरण होता जायेगा। संघ के लोग रूढ़िनिष्ठा अत्यन्त आवश्यक मानते हैं सो मैं जानता हूं। लेकिन रूढ़ि के आग्रही लोग जानते नहीं कि संघ-बल और प्राण-शक्ति एक नहीं है। कभी दोनों का प्रमाण व्यस्त ही सिद्ध होता है। Orthodoxy no doubt strengthens the Church but weakens and devitalizes the Faith.

(

लिखते समय मैंने अपने आपको जैन मान कर ही लिखा और कम से कम जैन बन्धु इसी भावना से इसे ग्रहण करेंगे।

बंगलूर के हिन्दी प्रेस में कम्पोजिटरों की कठिनाई तथा मेरे पास समय के अभाव के कारण छपाई की अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं। इन अशुद्धियों के लिये अलग से शुद्धिपत्र छापना भी ठीक नहीं लगा। पाठक मेरी मजबूरी को समझकर क्षमा करेंगे।

इस पुस्तक के निर्माण में अनेकों का सहयोग मिला है। खासकर साध्वी श्री सोहनाजी श्री मोतीलाल रांका श्री इ० पी० मनन श्री कान्ति स्वरूप शर्मा श्री पी० वैंकटाचलम शर्मा श्रीमती लक्ष्मी अम्मल श्रीमती राजम्मा बहन। और यदि सेठिया परिवार का सहयोग नहीं मिलता तो किताब प्रकाशित ही नहीं हो सकती थी।

इस छोटी-सी पुस्तक के लिये श्री काका साहेब कालेलकर जी ने एक-एक शब्द पढ़कर जिस तरह से सुधारने का मार्ग दर्शन किया वह सम्भव नहीं हो सका। फिर भी उन्होंने मुझे प्रोत्साहन देने के लिये भूमिका लिखी यह अपने आप में बड़ी बात है। लेकिन मैं उनके लिये आभार प्रदर्शन करने का नाटक नहीं करना चाहता हूँ। पिता को पुत्र से ऐसी अपेक्षा ही नहीं रहती।

इस पुस्तक की सारी खामियों के लिये मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ और यह बात पुस्तक के नाम से ही साफ हो जाती है। पाठकों से निवेदन है कि इसमें जो सार तत्त्व मिले उसे ग्रहण करके पुस्तक को फेंक दें।

—सीताशरण शर्मा

आचार्य तुलसी

जैसा मैंने समझा

प्रथम चरण

जब बालक थे !

डायरी के पन्ने से

13-2-1967—इस घटना से दुनियाँ का एक विचित्र चित्र सामने आता है। यहाँ अधिकाश नाते - रिश्ते स्वार्थ पर आधारित हैं। परमार्थ तो दूर, मैत्री का सामान्य आचार भी आज देखने को नहीं मिलता। मैं जहाँ पैदा हुआ और पला वह साधारण से कुछ ऊँचे दर्जे का गाँव था। पहले उस का नाम शंभुपुर था जो समय की मार से अधमुआ हो कर अब केवल शाम्हो रह गया है। परंतु वहाँ आज भी दूसरों की सुरक्षा के लिए स्वयं विषपान करने वाले शंभुओं की कमी नहीं है। गाँव में लोग एक दूसरे पर और भगवान् पर जो श्रद्धा रखते हैं वह शहरों में कही दिखाई नही देती। इसीलिए तो गरीब ग्रामीणों की अपेक्षा सामत शहरियों का जीवन अधिक बोझिल हो रहा है ....।

17-2-1967—मंदिर में जाने से कोई लाभ नहीं हुआ। वहाँ भगवान् अजीब स्थिति में पडा है। पुजारी धूप, दीप जला रहा था, परंतु वह स्वयं भी अपनी ईर्ष्या, अविश्वास और क्रोध आदि विकारों में जल रहा था। मैं ने वहाँ जाकर अच्छा नहीं किया। इस तरह तो मैं श्रद्धा हीन हो जाऊँगा। और कोई बात तो

मुझ में है नहीं। — हे परमात्मा! तू है तो कहाँ है? किस रूप में है? कैसे तुम्हें जानूँ?—— –।

18 2 1967—श्री विरधी चद चौधरी जी जब तक थे तब तक चर्चा में मन बहल जाता था। आज वे भी चले गये। तबियत सुधर रही है। मानसिक तनाव फिर भी है। बीमारी में मनुष्य कितनी बातें सोचता है? अब जेल जाने का ज़माना नहीं रहा। ऐसे में कभी कभी बीमार पड़ने से चिंतन का लाभ तो मिलता है।

20-2 1967—मोती बहन के आपरेशन के समय में भी अस्पताल में था। वहाँ आदमी मज़बूर हो कर जिन्दगी डाक्टरों के हवाले कर देता है। क्या इसी तरह भगवान् को जीवन समर्पण नहीं किया जा सकता? लेकिन भगवान् के लिए इतनी ऊँची श्रद्धा और विश्वास हो तब न? यहाँ तो डाक्टर सामने हैं। काम के समय ये देखने में यमदूत से भी भयानक लगते हैं। परतु काम देवताओं से बढ़कर है—इनका। दूसरों की ज़िन्दगी के लिए यहाँ दिन रात संघर्ष चलता रहता है। वैसे मौत पर, भला, इनका क्या बस होगा? लेकिन आज की हालत में आखिर मनुष्य जीना क्यों चाहता है? मैं भी क्यों जीना चाहता हूँ? सब ओर सब कुछ आनजाने में चल रहा है—— –।

24-2 1967—चुनाव का परिणाम देख कर दग रह गया हूँ। बडे बडे नेता छोटे छोटे कार्यकर्ताओं से पराजित हो गये हैं।

जीवन संग्राम में भी कौन आगे निकल जाएगा, किसी को पता नहीं चलता। भारत की भोली जनता ने बीस वर्षों तक बापू के नाम पर राज्य चलनेवाले नेताओ पर श्रद्धा रखी। आज वह निराश हो गयी है। समाज श्रद्धाहीन हो रहा है। मेरी भी वही हालत है। ज्ञान के अभाव में अगर श्रद्धा भी नही टिक सकी, तो क्या लोकतन्त्र आगे चल सकेगा? क्या मैं आगे बढ़ सकूँगा? क्या- ।

——संचालक क्वार्टर की नींव डाली गयी। श्री नानालाल भाई मद्रास वाले इसके लिए पूरा खर्च देंगे। क्यों देंगे? क्योंकि उनकी अत्यंत श्रद्धा है—स्व० वल्लभ स्वामी पर। इस श्रद्धा के कारण ही एक अच्छा काम करने की प्रेरणा हुई है।——चिक्पेट जाने पर पता चला कि आचार्य श्री तुलसी जी ने दक्षिणभारत यात्रा की घोषणा कर दी है। मुझे याद आ रहा है राजस्थान का वह छोटा - सा कस्बा बीदासर। वही जाकर चंद महीने पहले हम ने उनसे दक्षिण यात्रा के लिए आग्रह किया था। हम चद मित्र वहाँ गये थे। परंतु हमारे पीछे हजारों भाइयों की ताकत थी। हज़ारो की श्रद्धा का बल लेकर हम गये थे। आज आचार्य श्री ने दक्षिण वासियों की चिर संचित अभिलाषा के अनुकूल घोषणा की है। उन्हे इस भाग की एक इंच जमीन से भी परिचय नहीं है। भाषा की समस्या है। और भी अनेकानेक कठिनाईयों की कल्पना की जा सकती है। फिर भी उन्होंनें मानव मात्र पर श्रद्धा रख कर घोषणा की है। अब हमारा और इस से संबंधित हर मनुष्य का दायित्व बढ़

गया है कि हम उनकी श्रद्धा को विश्वास में बदलें। श्री मेनन और सतीश भी तो विनोबा जी के कहने पर मानव मात्र पर श्रद्धा रख कर बिना पैसा खर्च किये दुनियाँ की पैदल यात्रा कर आये। श्रद्धा विश्वास में परिवर्तित हो गयी। अच्छे उद्देश्यों के लिए श्रद्धा का संबल जरूरी है। इसके बिना मनुष्य भटक जायगा—हृदय हीन हो जाएगा।

अभी रात के नौ बजे हैं। मेरे अपने अंदर एक संघर्ष चल रहा है। ऐसे समय में इस यात्रा की घोषणा ईश्वरीय संकेत लगता है। मैं भी आमन्त्रण देकर आया हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए? माना कि अकेला चना भाड नहीं फोड सकता। मैं भी क्या करूँगा? लेकिन – ।

बच्चों के लिए आज से आचार्य श्री की जीवनी लिखना शुरू करूँगा। आज से क्यों—अभी से। वैसे आचार्य श्री तुलसी के जीवन से संबंधित अनेकों किताबें मैं ने पढ़ी हैं। एक से एक बढ़कर, विद्वानों की लिखी हुई। परन्तु इस से क्या? मेरी श्रद्धा है, मैं लिखूँगा। इस से मेरी जानकारी बढ़ेगी। और फिर अंधे को चलते देखकर कोई सहारा भी दे देता है।— –तो सोचना बेकार है। परमात्मा के नाम स्मरण के साथ – –



आचार्य तुलसी जब बालक थे

प्यारे बच्चो !

आचार्य तुलसी का नाम तो तुमने सुना ही होगा। अणुव्रत के जन्मदाता के रूप में आपने काफी ख्याति प्राप्त की है। वैसे आप तेरापंथी जैन समाज के धर्म गुरु अर्थात् आचार्य भी हैं।

अब पढ़ो, उनकी कहानी। उनका जन्म कहाँ हुआ ! उनके माता-पिता कौन थे ? भाई-बहन क्या करते थे ? परिवार की आर्थिक स्थिति क्या थी ? परिवार में धर्म भावना का क्या स्थान था ? आचार्य श्री का बचपन में स्वभाव कैसा था ? दीक्षा के लिए उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा ? उनके गुरु कौन थे ? ... आदि आदि।

इस भाग मे उनके ग्यारह साल तक की कहानी पढ़ोगे। इसी उम्र में उन्होंने दीक्षा-ग्रहण की थी।

[दूसरे भाग में उनके अध्ययन आदि की जानकारी मिलेगी। बाईस साल की उम्र में तो वे आचार्य पद पर पहुँच गये।]

वेष - भूषा

साफ, सफेद कपड़ों में मुँह पर सफेद पट्टी लगाये साधुओं को तो तुमने देखा ही होगा। देखते ही तुम समझ जाते होगे कि ये कोई जैन साधु है।

सफेद लुंगी, सफेद चादर, मुँह पर वही परिचित सफेद पट्टी, बगल में रजो हरण (सफाई का साधन), कभी कभी हाथ में भिक्षा-पात्र, उम्र में पचास को पार करने पर भी जवानों को मात करनेवाला चमकता चेहरा, उन्नत ललाट, गौर वर्ण, स्वस्थ शरीर——जानते हो, ये कौन हैं? ये ही हैं——आचार्य तुलसी।

केवल नाम से परिचित हो जाना ही काफी नहीं है। अब, बच्चो! तुम यह जानना चाहोगे कि आचार्य श्री तुलसी कौन हैं? अब मैं यही बताने जा रहा हूँ। आगे मेरे साथ चलो!

रौबीले राजरूप

बात पुरानी है। एक बड़े व्यापारी थे। उनका नाम था राज बहादुर बुद्धसिंह। आप रहते थे सिराजगंज में। यह सिराजगंज आज पश्चिमी पाकिस्तान में है। बुद्धसिंह जी का कारोबार बहुत बड़ा था। कारोबार को संभालने के लिए और हिसाब किताब रखने आदि के लिए श्री बुद्धसिंह जी ने अपने यहाँ एक मुनीम को रखा था। उनका नाम था श्री राजरूप जी खटेर। व्यापार की सारी जिम्मेदारी श्री राजरूप जी पर थी।

श्री राजरूप जी बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। बड़े ठाट-बाट से रहते थे। इन्हीं राजरूप जी को बालक तुलसी के दादा बनने का श्रेय मिला।

वि० स० १९४४ की बात है। श्री बुद्धसिंह जी के पोते इन्द्रचन्द्र आदि जो विलायत गये हुए थे, लौटे। वह ऐसा समय था, जब लोग, विलायत जाना ही पाप समझते थे। ऐसे समय में इन लोगों का विलायत जाना और वहाँ से लौटना, अपने समाज में हलचल मचाने के लिए काफी था। फिर भीऔर हुआ भी यही। इन लोगों के विलायत से लौटने पर एक सामाजिक झगड़ा उठ खड़ा हुआ। श्री बुद्धसिंह जी के मुनीम राजरूप जी का इस झगडे से कोई वास्ता नहीं था। फिर भी श्री सघ के पक्षपाती होने के कारण बुद्धसिंह जी की मुनीमी करना ठीक नहीं लगा। इसलिए उन्होंने नौकरी छोड दी और सिराजगज छोड़कर "लाडणू" चले गये।

बच्चो! यह लाडणू कहाँ है, इसे तुम जानना चाहोगे न? सुनो, लाडणू पुराने मारवाड राज्य का एक गाँव है जो अभी राजस्थान के चुरू जिले में है। पहले जोधपुर राज्य के अदर था। यह राजरूप जी का अपना गाँव था। इसलिए नौकरी छोडने के बाद सिराजगंज से यहाँ आये। इसी गाँव में श्री राजरूप जी के घर में बालक तुलसी का जन्म हुआ, और यहीं बालक तुलसी का बचपन बीता।

हाँ, बच्चो! आगे सुनो। राजरूपजी के नौकरी छोडते ही

गरीबी बढ़ने लगी। उन्होंने कई जगह नौकरी करने की कोशिश की। लेकिन कहीं टिक नहीं पाये। कहीं भी पुरानी प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती थी। जिस प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने नौकरी छोड़ी, उसी प्रतिष्ठा को छोड़ना उनके बस की बात नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि उन्हें गरीबी से संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में वे थक गये। आखिर सं० १९८३ में गरीबी में रहकर भी अपनी उस प्रतिष्ठा के साथ उठ गये।

सरल स्वभाव झूमरमल :

श्री राजरूप जी के पुत्र थे झूमरमल, बड़े ही सरल स्वभाव के व्यक्ति। श्री झूमरमल जी ने समय समय पर व्यापार करने का असफल प्रयत्न किया, लेकिन सारे प्रयत्न बेकार हुए। सरल स्वभाव और व्यापार इन दोनों में मेल बैठना मुश्किल है। घर में कोई "कमाऊ" व्यापार कुशल नहीं था। इस बात से वे बहुत चिंतित रहते थे। आखिर उन्हें संग्रहणी की बीमारी हो गयी, पिता की मृत्यु के तीन वर्षों के अंदर अंदर ही वे भी ईश्वर के प्यारे हो गये। बालक तुलसी के पिता होने का गौरव ईश्वर ने इन्हीं को दिया।

वन्दनीया वदनां जी

आचार्य श्री तुलसी के परिवार के सभी लोग धार्मिक रुचि रखनेवाले थे। लेकिन पू० वदनां जी की धर्माभिरुचि सर्वोपरि थी।

लाडणूं में स० १९१४ से ही वृद्धा सतियों का स्थिरवास चला आ रहा है। उन साध्वियो का निवास स्थान बदना जी के पास ही पड़ता था। बदना जी बराबर व्याख्यान श्रवण करती थीं। फुरसत का समय इन साध्वियों की सेवा में ही बदना जी लगाया करती थीं। प्रात. नाश्ते के पहले बच्चों को साध्वियों के दर्शन के लिए भेजा करती थीं। बच्चों के आचार विचार पर बराबर ध्यान रखा करती थीं। इस तरह साध्वियों के दर्शन करनेवाले बालकों में बालक तुल्सीं भी होता। यही बालक तुलसी आगे चलकर आचार्य तुनसी बने। बालक तुल्सी पर इसी समय से धार्मिक सस्कारों का प्रभाव पडना शुरू हो गया। सचमुस हम जो कुछ भी हैं — उसका मुख्य आधार बचपन का सस्कार ही है।

प्यारे बच्चो! यह वंदनीय माँ बदना जी कौन थी — यह तो समझ ही गये होंगे। इसी प्रातः स्मरणीया ममतामयी माँ के गर्भ से आचार्य श्री तुलसी जैसे बालक का जन्म हुआ। ऐसे ज्ञानी भक्त पुत्र को जन्म देनेवाली माँ की पूजा कौन नहीं करेगा? दुनियाँ भर में हर रोज लाखों माताऍं पुत्र जनती हैं, लेकिन ईश्वर - भक्त को पुत्र के रूप में पानेवाली माताएँ विरली ही मिलती हैं। रामायण में सुमित्रा कहती है. —

" पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥
न तरु बाझ भलि वादि बियानी। राम विमुख सुतते हित जानी॥"

पिता के प्यार से वंचित बालक तुलसी – २

हाँ, बच्चो! अब हमें ज़रा पीछे मुड़कर थोड़ी दूर चलना होगा। मैं ने कहा था कि श्री झूमरमल जी का देहावसान हुआ, उस समय बालक तुलसी केवल पाँच साल के थे। आचार्य तुलसी का जन्म वि० सं० १९८१ कार्तिक शुक्ला द्वितीया को हुआ था। इनके पाँच भाई और थे। वे सब इनसे बड़े थे। दो बहिनें थीं। एक छोटी, एक बड़ी। बड़ी बहन श्री लाडा जी दीक्षा ग्रहण कर साध्वी हो गयी हैं। आर्थिक स्थिति का ज़िक्र तो पहले ही हो चुका है। माताजी ने भी साध्वी जीवन अपना लिया है, वे आज भी हमारे बीच हैं।

नैया के खेवैया – श्री मोहनलाल जी

आचार्य श्री के सब से बड़े भाई का नाम श्री मोहनलाल था। उस समय एक मात्र मोहनलाल ही परिवार के आधार थे। उन्होंने साहस और बुद्धिमत्ता से स्थिति को संभाल लिया। अन्य भाईयों के साथ व्यापार में लग गये। ईश्वर सदा के लिए किसी को दुःख ही नहीं देता है। फिर जो परिवार पूर्णतया धर्म भावनावाला हो वह अधिक दिनों तक दुःखी नहीं ही रह सकता। थोड़े दिनों तक दुःख

देकर भगवान् हमारे धैर्य की परीक्षा लेता है। यह परिवार भी इस तरह की परीक्षा से छूट नहीं सका। आखिर परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। व्यापार में लाभ हुआ। सारा कर्ज चुकाकर ऋणमुक्त हो गया। परिवार अपने पैरों पर खड़ा हो गया। सम्मान-पूर्वक परिवार की गाडी आगे सरकने लगी।

प्रतिभावान् बालक तुलसी :

बच्चो ! अब तुम लोगों को आचार्य श्री तुलसी के परिवार का संक्षेप में परिचय मिल गया न ? आगे तुम्हें उनके बचपन की कुछ जानकारी दूँगा। तुम में से बहुत से बच्चे अपने वर्ग में प्रथम आते होंगे। लेकिन धार्मिक प्रवृत्तियों की ओर तुम लोगों का झुकाव कम होगा। सादगी से रहना पसद नहीं होगा। घर पर अध्यापक को रखकर पढ़ना-पढ़ाना तो एक आम बात हो गयी है।

फिर तुम में से कई लडके ऐसे भी होंगे जिन में धार्मिक रुचि होगी। लेकिन वर्ग में प्रथम क्या — पास होना भी कठिन होता होगा। मैं तुम्हारी शिकायत नहीं करना चाहता। सामान्यत मनुष्य में सब गुण सहज ही प्रगट नहीं होते। परंतु बालक तुलसी में ऐसे अनेक गुण बचपन में ही दीखने लगे। वे वर्ग में प्रथम तो आते, साथ ही उनमें धार्मिक भावना भी विकास की ओर बढती जाती। इसी से वे इतने ऊँचे उठ गये।

विजयी बालक तुलसी *

मनुष्य का मन बड़ा चंचल होता है। इसका तो तुम सब को अनुभव होगा ही। हमारे अंतर में अच्छे कामों के लिए प्रेरणा होती रहती है। वैसे ही बुरे विचारों का प्रभाव भी होता रहता है। विवेक से काम लेते हैं तो गलत विचारों पर विजय पा लेते हैं। जो कुछ मन में आया उसे कर डालने वाला सही रास्ते से बहक जाता है। विवेक के जागृत होने तक वह बहुत दूर चला गया होता है और बुरी आदतों का गुलाम बना रहता है। ऐसी हालत में अपने को संभाल लेना कठिन हो जाता है। परंतु आचार्य तुलसी की बात कुछ और है। शुरू से ही आप के जीवन में उत्तम संस्कारों का प्रभाव प्रबल रहा है। यह बात नहीं कि उन पर आसुरी प्रभावों ने आक्रमण नहीं किया। मगर उन्होंने उन प्रभावों से संघर्ष करते हुए उन पर विजय प्राप्त की। ग्यारह वर्ष की अवस्था और यह भाव-संघर्ष! शायद बच्चो तुममें से बहुतों को इस अवस्था में अच्छे-बुरे को समझने तक की विवेचन शक्ति नहीं होगी। यह आश्चर्य की बात है ऐसी छोटी उम्र में इस भाव संघर्ष के संग्राम में आचार्य तुलसी ने विजय प्राप्त कर ली। सोलह साल के अभिमन्यु ने महाभारत युद्ध में अपना पौरुष दिखाया था। तेरह साल के बालक अकबर हिन्दुस्तान का बादशाह बना था। परंतु यह सब भौतिक संघर्ष था। अपने ही अंदर हो रहे विचार संघर्ष के समर में विजयी होना, और अपने को एक नियंत्रण में रखना, साधारण बात नहीं।

इस तरह की विजय के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे बडे बडे साधकों को भी सहज में प्राप्त नहीं होते। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में इन गुणों का वर्णन श्री रामचन्द्र जी से इस प्रकार करवाया है। प्रसग राम-रावण युद्ध का है। रावण रथ पर है जिस में कई घोडे जुते हैं। राम ज़मीन पर नगे पैर खडे हैं। एक तरफ़ हथियारों से सुसज्जित सेना के साथ रथारूढ रावण और दूसरी तरफ़ नंगे पाँव ज़मीन पर खडे भगवान धनुर्धारी राम। इस दशा को विभीषण देख रहे थे। यह सहज था कि उनके मन में शका उत्पन्न हो। वे सोचने लगे कि इतने भयंकर शत्रु को राम इस साधारण शक्ति से जीत कैसे सकेंगे। आखिर उनसे रहा न गया तो पूछ बैठे। 'हे प्रभो!' इस स्थिति में ऐसे प्रबल रावण से आप कैसे लड सकेंगे।

विभीषण के इस प्रश्न को सुनकर श्री रामचन्द्र जी कहते हैं :—

सुनहु सखा, कह कृपानिधाना, ।
जेहिं जय होइ सो स्यदन आना ॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥

बल बिवेक दम परहित घोरे ।
छमा कृपा समता रजु जोरे ॥

ईस भजनु सारथी सुजाना ।
विरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा ।
वर विग्यान कठिन कोदण्डा ॥
अचल अमल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा ।
एहि सम विजय उपाय न दूजा ॥

और कहते हैं —

सखा धर्ममय अस रथ जाकें ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

दो० — महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥ —८०

— लंका कांड, रा० च० मानस ।

अर्थात्—विभीषण से श्री रामचन्द्र जी कहते हैं — हे मित्र सुनो, जिस से जय होती है वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और सदाचार उसकी मजबूत ध्वज-पताका है। बल, विवेक, इन्द्रियों का वश में होना और परोपकार— ये चार इस रथ के घोड़े हैं। क्षमा, दया और समता रूपी रस्सी से रथ में ये घोड़े जोते गये हैं। ईश्वर का भजन ही उस रथ को

चलानेवाला सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है। उत्तम विज्ञान कठोर धनुष है। पाप रहित और स्थिर मन तरकस के समान है। शम, अर्थात् मन पर विजय, यम (अहिंसा आदि) नियम (शौचादि) ये बहुत से प्रबल तीर हैं। गुरु पूजा कवच है। इसके समान विजय का दूसरा साधन नहीं है। इसलिए ऐसा धर्म रथ जिस के पास हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है। हे मित्र! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर जनम - मरण रूपी दुर्जय संसार को भी आसानी से जीत सकता है। फिर यह रावण क्या चीज है।

समझे बच्चो, रामचन्द्र का यह रथ कैसा है? बालक तुलसी को भी ऐसा ही रथ मिला था जिसकी सहायता से वे इस संघर्ष में विजयी हो सके थे।

अंदर चलनेवाले संघर्षों का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। उसे समझाने के लिए एक - दो घटनाओं का उल्लेख करना होगा। इससे तुम खुद अनुभव कर सकोगे।

घटना १—क्या देवता बोलता है?

गाँव के बाहर 'ओरण' में रामदेव जी का एक मंदिर था। बालक तुलसी को यह बताया गया कि मंदिर का देवता, बोलता है,

लेकिन नारियल चढ़ाना जरूरी है। बतानेवाले सज्जन कौटुबिक जन थे इसलिए अविश्वास की गुंजाइश नहीं थी। आध्यात्मिक वृत्ति वाले लोग वैसे ही सब पर विश्वास कर लेते हैं। फिर बालक तुलसी की तो उम्र ही क्या थी। बालक की उत्सुकता बढ़ी। अपने घर से नारियल लाया। देवता की बोली सुन ली। अब क्या था, देवता की बोली बार-बार सुनने के लोभ में बालक तुलसी नारियल अर्पण करने लगा। लेकिन शीघ्र ही बालक के विवेक ने उसे विचार करने के लिए बाध्य किया। चिंतन करने पर पता चला कि यह आवाज़ देवता की नहीं बल्कि आदमी की है। बालक तुलसी ने अपने को संतुलित कर लिया। बात ऐसी थी कि वे सज्जन नारियल के लोभ में बच्चों को धोखा देते थे। वही मंदिर में छिपकर देवता की जगह बोलते थे। हो सकता है कि मज़ाक में ही ऐसा करते हों।

घटना २ —अंतिम परीक्षा:—

"कल यह बालक दीक्षा ग्रहण करेगा। आज तक के जीवन का व्यवहार, चाल चलन, आदतें आदि को एक झटके में तोड़ना होगा। ओह! साधु जीवन कितना कठिन है। मालूम नहीं, तुलसी ने सब पहलुओं पर विचार किया है या नहीं अगर केवल भावना के आवेग में दीक्षा ले रहा हो तो उस जीवन को निभाना कठिन है।" इस तरह के विचारों ने मोहनलाल जी के मन को

झकझोर दिया। आखिर उन्होंने बालक तुलसी की परीक्षा लेने के लिए युक्ति निकाली। रात को दोनों भाइयों के सोने की व्यवस्था ऐसी थी कि दोनों की चारपाइयाँ पास पास लगा करती थी। यह एक अच्छा अवसर था। मोहनलाल जी ने बात धीरे धीरे शुरू की.–

"देखो तुलसी, साधु जीवन में सब कुछ त्यागना पडता है। बहुत बडी बडी कठिनाइयाँ सामने आती हैं। कभी कभी तो भोजन और पानी भी नहीं मिलता है। भूख - प्यास से बडे - बडों को भी परेशानी उठानी पडती है। तुम तो अभी बच्चे हो। मुझे तुम्हारी बड़ी चिंता है। इसलिए मैंने एक युक्ति सोची है।"

इतना कहकर उन्होंने अपने पास से सौ रुपये का नोट निकाल कर बालक तुलसी की ओर बढ़ा दिया, और कहने लगे—"इसे पास में रख लो। जब सकट आये इसमें से काम चला लेना।"

बालक तुलसी का ज्ञान प्रौढ था। हँसते हुए बोले—"साधु हो जाने के बाद नोट रखना उचित नहीं है।"

मोहनलाल :—"पैसा रखना अनुचित है। किन्तु यह तो एक कागज का टुकडा है। साधुओं को कागज रखने का निषेध कहाँ है? उनके पास तो कितने ही कागज़ पडे रहते हैं। साधुओं ने जो प्रतिक्रमण सीखा है वह भी तो कागज़ों पर ही लिखा रहता है। जब इतने सारे कागज़ों का निषेध नहीं रहता है तो इस

छोटे-से कागज़ के रखने में क्या हर्ज है। अपने पुट्ठे (किताबों) के अंदर रख लो। पड़ा रहेगा। तुम्हारा इस में नुकसान ही क्या होगा? अगर कभी संकट आये तो काम देगा।"

हँसते हुए बालक तुलसी ने कहा —"उस कागज़ से इस कागज़ की तुलना नहीं हो सकती। यह तो आखिर रुपया है। इसे रखना साधु नियम के विरुद्ध है।

भाई का आग्रह ज़ोरदार रहा। परंतु उम्र में छोटे और ज्ञान में वृद्ध तुलसी पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

दोनों भाइयों के बीच के इस संवाद से उनकी बहन जो वहीं पास में सो रही थी जाग उठी। उन्होंने बड़े भाई से पूछा—"भैया! आप यह क्या कह रहे हैं?"

नोट को यथा स्थान रखते हुए मोहनलाल बोले—"मैं तुलसी की परीक्षा ले रहा था। वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।"

बच्चो! इन घटनाओं से, क्या यह ज़ाहिर नहीं होता कि तुलसी इस छोटी उम्र में दीक्षा लेने के पहले ही सच्चा साधु बन चुका था। ग्यारह वर्ष की अवस्थावाले बालक के मन में देवता के बोलनेवाली बात पर जिज्ञासा का जगना और धन का लोभ न होना—साधारण बात नहीं। इस उम्र के बच्चों में ऐसी विवेक-पूर्ण विवेचना शक्ति की कल्पना ही नहीं हो सकती। यहाँ एक पुरानी कहानी याद आती है —

एक बार एक बादशाह कुछ दान करना चाहता था। नौकरों को शहर भेज कर साधु-संतों को दान देने की आज्ञा दी। शाम को वे सब नौकर दान दिये बिना ही लौटे और राजा से बोले—"जो साधु-संत हैं वे पैसे को छूते नहीं, और जो पैसे की माया में फँसे हैं वे साधु कैसे कहाएँगे।"

बालक तुलसी साधु भी कसौटी पर खरा उतरा। एक बालक के लिए यह त्याग का उच्चतम उदाहरण कहा जायगा। हम बिना त्याग किये ईश्वर के सामने हाथ पसारे रहते हैं और ऐसे मुफ्तखोरों के लिए भला वहाँ कहाँ गुंजाइश है। इस स्थान पर एक सच्ची घटना का जिक्र कर दूँ तो कोई अनुचित नहीं होगा। घटना यों है:—

बेलगाँव के पास एक संत-महाराज रहते थे। उन संत महाराज का नाम था श्री दीक्षित जी। सेवा, प्रेम और त्याग की वे साकार मूर्ति माने जाते थे। एक दिन एक महिला ने संत जी की बड़ी सेवा-पूजा की। उसके कोई संतान नहीं थी। उसके मन में ऐसी धारणा थी कि संत की सेवा से संतान की प्राप्ति होगी।

श्री दीक्षित जी ने अपने पास से दो मुट्ठी चने उठाकर उस स्त्री को दिया, और कहा—जा दूर बैठ, जब बुलाऊँ तब आना।

स्त्री दूर बैठकर चना चबाने लगी। उसके आस-पास कुछ बच्चे खेल रहे थे। चने को देखकर उन्हें लालच हुआ। वे सब

खेलना छोड़कर उस स्त्री के पास चक्कर काटने लगे। एक दो ने तो हाथ भी पसार दिया। एक दो को देने से सब को देना पड़ेगा— यह सोचकर वह स्त्री आँचल में मुँह छिपाकर चना चबाने लगी।

थोड़ी देर बाद श्री दीक्षित जी ने उस स्त्री को पास बुलाकर कहा—"माता जी, जब मुफ्त के चने में से बच्चों को एक दाना भी तुम नहीं दे सकीं तो भगवान् हाड मास का जान सहित बच्चा कैसे दे देगा? याद रखो, प्रेम त्याग और करुणा के बिना, केवल व्रत उपवास, पूजा पाठ करने से भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होगा। यह सुनकर स्त्री के मन में त्याग की भावना जगी और उसका महत्व उजागर हो गया।

बालक तुलसी के जो गुण बचपन में प्रगट हुए वह भविष्य की सूचना थी।—

उपजे एकहि खेत में, बोये एक किसान।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥



सत्यनिष्ठ बालक तुलसी :

बालक तुलसी में बचपन से ही सचाई के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उसी निष्ठा के बल पर वे इतने आगे बढ़ रहे हैं। इस संबंध में यहाँ एक घटना का जिक्र करना प्रासंगिक होगा।

एक बार उनकी भाभी (श्री मोहनलाल जी की बहू) ने अपने मोती (देवर) से बोली—"बाजार से लोहे का कील ले आ। और पैसा दे दिया। बालक श्री नेमिचंद कोठारी की दूकान पर पहुँचा। कोठारी जी ने कीले तो दे दी, लेकिन पैसे नहीं लिये। नेमिचंद जी उनके मामा लगते थे। बालक सीधे घर आया। कीलें और पैसे उन्होंने भाभी के हाथ में रख दिये।

अब ज़रा सोचो तो बच्चों! बालक तुलसी की जगह तुम होते तो क्या करते? तुम क्या करते यह तो तुम्हीं जानो। लेकिन आज के सामान्य बच्चे ऐसे मौके पर मिठाई खा लेते। सोचेंगे कि किसी को इस बात का पता तो चलेगा ही नहीं। इस बात का ज्ञान कि भगवान् जानता है बच्चों को नहीं होता।

बालक तुलसी की सत्य-निष्ठा का पता इस से सहज ही लगता है। एक चावल का दाना देखकर ही हाँडी भर भात के पकने का निर्णय लिया जाता है।

श्रमनिष्ठ बालक तुलसी :

दादा के समय तो वह परिवार संपन्न था। घर में गाय थी। घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ी। गाय नहीं रही। दूध-दही व

अभाव हो गया। पू० वदनां जी का पड़ोसियों से अच्छा संबंध था। इसलिए कभी कभी पड़ोसियों के घर से मठा मगा लिया करती थी। मागने के लिए बहुधा बालक तुलसी को ही भेजती। छोटे बच्चों से एसे काम लेने की परिपाटी सी है। बात तो सामान्य है। फिर भी बालक को मांगना पसद नहीं था। केवल माता की आज्ञा को मानकर मागने जाता था। यह काम करते हुए बालक तुलसी के मन में एक सघर्ष चलता रहता। इसलिए बालक बराबर आर्थिक स्वावलम्बन की बात सोचता रहता। आठ नौ साल की उम्र में ही वह कमाने के लिए परदेश जाने को उत्सुक था। कोई भी सामान्य से सामान्य चीज़ भी किसी से मांगना अच्छा नहीं लगता था।

उनके बड़े भाई बगाल में रहते थे। साल में एकाध बार घर आना होता था। एक बार जब घर से परदेश लौटने लगे तो बालक तुलसी भी उनके साथ जाने का आग्रह करने लगा।

उस समय तुलसी के बड़े भाई सागरमल जी का जाना तय हो गया था। बालक तुलसी का तर्क था कि मैं उम्र में छोटा होते हुए भी भैया से अधिक काम करूगा। लेकिन तुलसी का जाना नहीं हो सका। होता भी कैसे? बालक मांगने से मुक्ति चाहता था और विधि का विधान था कि तुलसी जीवन भर मागता रहे। आज तक वे माग रहे हैं। परंतु अब त्यागी होकर मांगते हैं, मजबूरी से नहीं।

कई लोग आज सोचते हैं कि अगर बालक तुलसी उस समय परदेश चले जाते तो हमें आचार्य तुलसी कैसे मिलते? इस तरह से सोचना उच्च ज्ञान का परिचायक नहीं है। ईश्वर की योजना का हमें पता नहीं होता। परमात्मा किससे क्या सेवा लेना चाहता है, यह बात हम पर प्रगट नहीं होने देता। उसकी योजना में बालक तुलसी से भविष्य में बहुत बड़ी सेवा लेने का निश्चय रहा होगा। इसलिए व्यापार में लगने की परिस्थिति को बदल दिया। श्री रामचद्र जी अगर राजगद्दी पर बैठते तो जन - जन की उतनी सेवा सभव नहीं हो सकती थी। ऐसी अनेक मिसाले हैं जिन से पता चलता है कि ईश्वर जैसा चाहता है वैसी ही परिस्थिति बना देता है।

तुलसी–बालविद्यार्थी के रूप में :

प्यारे बच्चो! तुम आज विद्यार्थी हो। करीब बाईस साल पहले यह लेखक भी विद्यार्थी रहा। पैंतालीस वर्ष पूर्व आचार्य तुलसी भी विद्यार्थी रहे। मैं सोचता हूँ कि मेरे समय की पढ़ाई में और आज की पढाई मे कितना अतर हो गया है। उस समय भी नौकरी की भूख समाज में थी। फिर भी नीचे की कक्षाओं में अधिकाश बच्चे ज्ञान प्राप्त करने या व्यवहार सीखने के लिए ही पढ़ते थे। किताबों का इतना बोझ नहीं था। साहित्य और

गणित की प्रधानता थी। धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन आवश्यक था। आज से बीस बाईस साल पहले की शिक्षा पद्धति में जब इतना अंतर था तो आचार्य तुलसी के शिक्षण काल में शिक्षा का स्वरूप क्या रहा होगा? उस समय विशेषत गाँव के शिक्षणमें धार्मिक ग्रंथों की प्रधानता थी। बालकों के आचार विचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था – बच्चों में ईश्वर और धर्म के प्रति आस्था पैदा करना, जीवन में सचाई और सादगी की आदत डालना और व्यवहार में कुशलता प्राप्त करना। सारांश यह कि उस समय शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था, बालकों के भविष्य निर्माण की पक्की नींव डालना। उस समय 'अर्थ' का स्थान गौण था।

आज तो गाँव के शिक्षण में भी 'अर्थ' ही प्रधान हो गया है। गुरु शिष्य संबंध का आधार भी 'अर्थ' बन गया है। आज के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी की भविष्यवाणी सत्य साबित हो रही है। कलिकाल शिक्षण का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है —

"गुरु सिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनइ एक नहीं देखा।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥"

—और संरक्षक के विषय में लिखा है :—

" मातु - पिता बालकहिं बोलावहिं ।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥ "

खैर, यह सब तो महज़ जानकारी के लिए लिख दिया । तुम्हें तो बाल विद्यार्थी तुलसी के बारे में जानना है ।

विद्याध्ययन में बालक तुलसी की रुचि बचपन से ही थी । लगभग छः साल की उम्र में वे जिस स्थानीय स्कूल में भर्ती हुए वह ब्राह्मणों का स्कूल था । तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा, और सोच रहे होगे कि ब्राह्मणों के स्कूल का क्या अर्थ ?

बात यों है कि उस समय गाँव - गाँव में शिक्षा स्वतंत्र थी । ऊपर बताया ही है कि उस समय शिक्षा में धर्म की प्रधानता थी और उन दिनों जाति भेद ज़ोरों पर था । इसलिए अपनी - अपनी जाति और धर्म के लोग अपना - अपना स्कूल चलाया करते थे । ब्राह्मणों के स्कूल में कुछ जातियों के लोगों को अछूत कहकर उनने लिए प्रवेश निषिद्ध कर रखा था । थोडे दिनों तक ब्राह्मणों के स्कूल में पढ़ने के बाद तुलसी जैन स्कूल में जाने लगे । वहाँ हिन्दी–साहित्य गणित आदि सीखा । उस समय प्रारंभिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों में अंग्रेजी नहीं पढ़ाई जाती थी । बालक को पाठ कंठस्थ करने का बडा शौक था । लगन के कारण पाठों का स्मरण भी रहता था । बचपन में ही

गणित की प्रधानता थी। धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन आवश्यक था। आज से बीस बाईस साल पहले की शिक्षा पद्धति में जब इतना अंतर था तो आचार्य तुलसी के शिक्षण काल में शिक्षा का स्वरूप क्या रहा होगा? उस समय विशेषत गाँव के शिक्षणमें धार्मिक ग्रंथों की प्रधानता थी। बालकों के आचार विचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था – बच्चों में ईश्वर और धर्म के प्रति आस्था पैदा करना, जीवन में सचाई और सादगी की आदत डालना और व्यवहार में कुशलता प्राप्त करना। सारांश यह कि उस समय शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था, बालकों के भविष्य निर्माण की पक्की नींव डालना। उस समय 'अर्थ' का स्थान गौण था।

आज तो गाँव के शिक्षण में भी 'अर्थ' ही प्रधान हो गया है। गुरु शिष्य संबंध का आधार भी 'अर्थ' बन गया है। आज के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी की भविष्यवाणी सत्य साबित हो रही है। कलिकाल शिक्षण का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है —

"गुरु सिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनइ एक नहीं देखा।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥"

—और संरक्षक के विषय में लिखा है :—

" मातु - पिता बालकहिं बोलावहिं ।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ॥ "

खैर, यह सब तो महज़ जानकारी के लिए लिख दिया। तुम्हें तो बाल विद्यार्थी तुलसी के बारे में जानना है।

विद्याध्ययन में बालक तुलसी की रुचि बचपन से ही थी। लगभग छः साल की उम्र में वे जिस स्थानीय स्कूल में भर्ती हुए वह ब्राह्मणो का स्कूल था। तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा, और सोच रहे होगे कि ब्राह्मणों के स्कूल का क्या अर्थ!

बात यों है कि उस समय गाँव - गाँव में शिक्षा स्वतंत्र थी। ऊपर बताया ही है कि उस समय शिक्षा में धर्म की प्रधानता थी और उन दिनों जाति भेद जोरों पर था। इसलिए अपनी - अपनी जाति और धर्म के लोग अपना - अपना स्कूल चलाया करते थे। ब्राह्मणों के स्कूल में कुछ जातियों के लोगों को अछूत कहकर उनने लिए प्रवेश निषिद्ध कर रखा था। थोड़े दिनों तक ब्राह्मणों के स्कूल में पढ़ने के बाद तुलसी जैन स्कूल में जाने लगे। वहाँ हिन्दी–साहित्य गणित आदि सीखा। उस समय प्रारंभिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों में अंग्रेजी नहीं पढ़ाई जाती थी। बालक को पाठ कंठस्थ करने का बड़ा शौक था। लगन के कारण पाठों का स्मरण भी रहता था। बचपन में ही

उनको कई चीजें कठस्थ हो गयी थी जैसे पचीस बोल, चर्चा, हितशिक्षा के पचीस बोल, जाणपणा के पच्चीस बोल, नमस्कार मत्र, सामयिक, पचपद, वदना आदि। उस समय कहावत प्रचलित थी —"विद्या कठ की, पैसा गाठ का।" इस कहावत को उन्होंने चरितार्थ कर दिया। उस समय के शिक्षण में और भी कई बातें थीं—जैसे हर विद्यार्थी को अपने से निचले दर्जे के विद्यार्थियों को पढाना, पाठशाला के सभी नियमों का पालन करना आदि आदि। ये अपने वर्ग के मानीटर भी बने रहे।



दीक्षा की इच्छा और संघर्ष

प्यारे बच्चो! अभी तक तुमने जो कुछ पढ़ा, उस से बालक तुलसी की प्रतिभा कैसी थी—इस बात को समझ लिया होगा। उनके परिवार के बारे में तुम पढ़ चुके हो। आगे अब जो तुम पढ़ने जा रहे हो वह बड़ा रोचक और आश्चर्य जनक है। अब तुम्हें बतलाऊँगा कि एक बालक को अपनी सदिच्छा पूर्ण करने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा और आखिर किस तरह उसने परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की।

वि० सं० १९८१ में तुलसी के बड़े भाई मुनि श्री चम्पालाल जी ने दीक्षा ग्रहण की। उसी समय से बालक तुलसी दीक्षा ग्रहण करने के लिए व्यग्र रहने लगे। और उसके लिए अनुकूल परिस्थिति की प्रतीक्षा करने लगे।

वि० सं० १९८२ के मार्गशीर्ष के महीने में आचार्य श्री कालूगणी जी का "लाडणू" में पदार्पण हुआ। कालूगणी जी उस समय तेरापंथ के आठवें आचार्य-पद की शोभा बढ़ा रहे थे। वे बड़े विद्वान् और सरल स्वभाव के थे। लाडणू की व्याख्यान-सभा में बालक तुलसी नियमित रूप से जाया करते थे। वहाँ जो कुछ

सुनते उसका मनन करते । उसमें से कई प्रश्न उनके मन में उठ खड़े होते । उन प्रश्नों को बालक तुलसी अपनी माता जी के सामने रखते । माँ जो कुछ भी सहज और सरल रीति से उत्तर देती, उसी से बालक-मन समाधान पा लेता ।

आखिर बालक के मन में पूर्व संस्कार जाग उठे । काफी सोच समझकर उन्होंने परिवार के लोगों के सामने अपनी बात रखी कि " मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ । " बालक के इस अनुरोध पर किसी ने ध्यान नहीं दिया । बाल विनोद समझकर टाल दिया । बालक ने अपनी बात बार बार दुहरायी तो लोगों ने इसे बाल हठ समझा । सचमुच मानव कितना अधूरा है । वह खुद को ही नहीं समझ पाता है । थोड़ा बहुत जो कुछ वह देख पाता है, उसे भी अपने चश्मे के रंग से रंगीन करके ही देखता है । परिवार के लोग ठहरे सामान्य मनुष्य । तो फिर उस छोटी आयु के बालक के अंतर की भावनाओं को वे कैसे समझ पाते ।

इधर बालक तुलसी के मन में तड़प थी । वे सोचते—मेरे लिए जो वास्तविक है—उसे ये लोग बाल भाव समझकर टाल रहे हैं । मगर उन्हें समझाना आसान नहीं था । फिर भी उन्होंने अपना आग्रह जारी रखा ।

इधर घरवाले तुलसी के बार बार के अनुरोध पर कुछ कुछ सोचने लग गये थे ।

एक और धक्का :

बालक तुलसी की बड़ी बहन पू० लाडा जी कुछ समय से दीक्षा लेने की सोच रही थीं। आचार्य श्री कालूगणी के लाडणू पधारने पर सब को आशा बँधी। लोग सोच रहे थे—इस बार श्री लाडा जी को दीक्षा लेने की आज्ञा मिल जाएगी।

तेरापंथ के दीक्षा सबंधी नियम बड़े कठिन हैं। किसी को दीक्षा ग्रहण करने के पहले अपने अभिभावकों से लिखित रूप में स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। यह समस्या तुलसी के लिए एक दुर्गम पहाड़ जैसी थी।

जिस समय आचार्य श्री कालूगणी जी लाडणूं में विराजमान थे उस समय मोहनलाल जी बंगाल में थे। लाडा जी के विषय में कोई कदम उठाने से पहले उनका लाडणूं आना अनिवार्य था। घरवालों ने उन्हें बुलाने का निश्चय किया। बालक तुलसी के दीक्षा-सबंधी प्रश्न भी उनके सामने रखने का निश्चय हुआ। सब ने सोचा, वे जैसा ठीक समझेंगे, करेंगे। आखिर वही तो परिवार के प्रधान थे। उन्हें तार दे कर बुलाया गया, वे भी तार पाते ही आ गये। स्टेशन पर ही उन्हें सब बातें बता दी गयीं। तुलसी की दीक्षा की बात सुनते ही वे आग बबूला हो गये। और लोगों के साथ बालक तुलसी को भी खूब फटकार सुननी पड़ी। आगे से फिर ऐसी बातें मुँह से न निकालने की चेतावनी दे दी गयी। बेचारा बालक चुप हो गया। करे भी तो क्या करे।

आजकल के लड़के तो सिनेमा देखने की भी हठ ठानलें तो किसी के रोके फिर नहीं रुकते। परतु तब का ज़माना ही दूसरा था।

मोहनलाल जी को भी कैसे दोष दें। उनके एक भाई पहले ही साधु बन चुके थे। बहन भी दीक्षा ग्रहण करने जा रही थी। अब तुलसी भी उसी रास्ते पर जाने की तैयारी कर रहे थे। मोहनलाल जी घाम पसीना एक करके इन लोगों का पालन पोषण कर रहे थे। अपने बच्चों के समान सबको प्यार करते थे। कोई भी ऐसी परिस्थिति में वही करता जो मोहनलाल जी ने किया।

ऊपर की घटनाओं से बालक तुलसी की कठिनाइयाँ तो तुम्हारी समझ में आ गयीं न? अब तुम क्या अनुमान लगा रहे हो? यही न, कि बेचारे बालक ने प्रयास तो बहुत किया, लेकिन सफल नहीं हुआ। किन्तु ऐसी बात नही है। तुलसी का जन्म हार मानने के लिए हुआ ही नहीं था। पुस्तकों में अनेक कथाएँ पढ़ चुके थे औरइ स तरह मनन चिंतन कर आत्म बल की महत्ता को समझ चुके थे। आत्म बल पर उनका विश्वास जम चुका था। परतु वे यह भी जानते थे कि अपनी शक्ति और बुद्धि का पूरा उपयोग करने के बाद ही सफलता मिलती है। उन्हें वे सारे पाठ याद आये होंगे जिन्हें उन्होंने कभी पढ़ा था। उन्हें याद

आ रहा होगा कि बालक शंकराचार्य ने कैसे सन्यास ग्रहण लिया ; बालक ध्रुव ने भगवान का दर्शन कैसे प्राप्त किया, श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में ही कंस को यमपुरी कैसे पहुँचाया, भगवान् महावीर ने कैसे कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया – न मालूम ऐसी कितनी ही बातें उनके दिमाग में घूम गयी होंगी। सबकी सफलताओं का बीज वह खोज रहा होगा और पाया होगा कि इन सफलताओं का बीज संकल्प की दृढ़ता है। इस तरह बालक तुलसी ने विचार करते करते अपने को दृढ़ बना लिया और अपने संकल्प को कार्यरूप देने का उपाय खोजने लगा।

ऊपर जिन महानुभावों का मैंने ज़िक्र किया है उनके बारे में तुम लोग जानते ही होगे। फिर भी तुम में से कई ऐसे भी होंगे जो नहीं जानते हों। अच्छा तो सुनो, मैं उनमें से एक - दो के बारे में कुछ बताता हूँ।

) शंकराचार्य :

श्री शंकराचार्य बहुत बड़े विद्वान थे। आज से करीब दस रह सौ वर्ष पहले उनका जन्म हुआ था। उन्होंने कई ग्रंथ रचे। नका एक स्वतंत्र दर्शन ही बन गया। हिन्दुस्थान की चारों दिशाओं में आज भी चार केन्द्र स्थापित हैं जिसमें इस दर्शन का अध्ययन, अनुष्ठान और अनुसंधान हो रहा है। ये चारों केन्द्र

शंकराचार्य जी द्वारा स्थापित हैं। इन्हें आम्नाय पीठ कहते हैं। उत्तर में बद्रीनारायण, दक्षिण में शृंगेरी, पूरब में पुरी जगन्नाथ और पश्चिम में द्वारिका ये चार केन्द्र हैं। ये शारदा पीठ के नाम से भी पहचाने जाते हैं। इन चारों पीठों में श्री शंकराचार्य जी की शिष्य परंपरा चली आ रही है। आज भी इन चारों पीठाधिपतियों को जगद्गुरु कहते हैं।

कहते हैं कि श्री शंकराचार्य की माँ को एक साधु ने आशीर्वाद दिया था कि तुम पुत्रवती होगी लेकिन शर्त यह है कि तुम उसे साधु जीवन में प्रवेश करने से मत रोकना।

शंकराचार्य बाल्यावस्था से ही कुशाग्रबुद्धि थे। वे बचपन में ही सन्यास लेना चाहते थे। लेकिन एक तो उस समय सीधे सन्यास लेने की परंपरा नहीं थी। उसके लिए क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और अंत में सन्यास, आश्रम में प्रवेश करने का विधान था। दूसरे माँ की ममता पुत्र के सन्यास लेने के मार्ग में बाधक थी। बालक शंकर अपने संकल्प पर दृढ़ था। आखिर ईश्वर ने मदद की। एक दिन की बात है कि माँ बेटा नदी में स्नान करने गये। बालक शंकर ने पानी में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही बालक के पैर को मगर ने पकड़ लिया और धीरे धीरे बालक को पानी में खींचने लगा। बालक ने माँ! माँ! कहकर चिल्लाना शुरू किया। माँ किनारे पर रो रही थी, बेचारी कुछ नहीं कर पा रही थी। माँ के सामने ही उसका एकमात्र पुत्र द्रुत गति से मौत की ओर बढ़ रहा था।

कुछ ही क्षणों के वाद बालक ने हठात् ज़ोर से चिल्लाते हुए कहा—"माँ! अब तो मेरी मृत्यु निकट है। मरने से पहले मुझे सन्यास लेने की अनुमति दे दो। विवस माता ने पुत्र को सन्यास लेने की अनुमति दे दी। बालक ने स्वयं सन्यास ग्रहण किया। ईश्वर कृपा से मगर ने बालक को छोड दिया। बालक किनारे पर आ गया। माँ ने बेटे को छाती से लगाया और कहा—"बेटा, अब जल्दी घर चलो।" बालक ने हँसते हुए कहा—"अब घर क्यों? मैं तो आपकी अनुमति से सन्यास ले चुका हूँ। अब तो आपको यह ममता छोडनी ही होगी। माँ को याद आया— सन्यासी को दिया गया वचन। वे देखती ही रह गयी। बेटे ने सन्यासी बन कर वहाँ से प्रस्थान किया।

जानते हो बच्चो! उस समय बालक शंकर की उम्र केवल आठ साल की थी।

(२) बालक ध्रुव :

ऐसी एक कहानी बालक ध्रुव के विषय में भी पढ़ो। राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं – बडी का नाम सुनीती और छोटी का नाम सुरुचि था। राजा दोनों को खूब प्यार करते थे। परंतु उनका छोटी रानी पर विशेष प्यार था।

मनुष्य, विकार के वश में होकर, बराबर अनर्थ ही करता

जाता है। उत्तानपाद भी इससे बच नहीं सके। छोटी रानी ने एक दिन बड़ी रानी के खिलाफ राजा के कान भर दिये। उस ने राजा से वचन ले लिया। उस वचन के अनुसार बड़ी रानी को घर छोड कर अरण्यवास करने जाना पडा। सुनीति बड़ी धर्मात्मा थी। बेचारी वनवास को चली गयी। वहाँ अत्रि मुनि का आश्रम था। रानी महर्षि के पास गई और बार बार करुणा भरे स्वर में विलाप करती हुई बोली—'हाय! भगवान्, तुम ने मुझे किस पाप का दंड दिया है। इस जन्म में तो मैंने कोई भूल नहीं की। हे प्रभो! मैं तो आप की दासी बनी रही।" आदि आदि......

महर्षि ने समझाया—"बेटी, संकट हमेशा पापों के दंड के ही रूप में होता है – यह धारणा गलत है। कई बार उस में परमात्मा का विशेष हेतु होता है। मुझे तो लगता है कि इस दंड में तेरा कल्याण छिपा है। इस लिए शोक करना उचित नहीं। परमात्मा पर भरोसा रखो। इस आश्रम को तुम अपना समझो।" रानी उसी आश्रम में रहने लगी।

बहुत दिनों के बाद अचानक राजा एक दिन उधर आ निकले। एक रात आश्रम के मेहमान रहे। परमात्मा की योजना सचमुच विचित्र होती है। कुछ समय के बाद रानी ने आश्रम में एक बालक को जन्म दिया।

पाँच वर्ष की अवस्था में बालक ध्रुव को पता चला कि वह

राजा उत्तानपादका बेटा है। बस, वह पिता से मिलने को मचल उठा औरएक दिन राजधानी पहुँच गया। राजा को जब पता चला कि वह उन्हीं का पुत्र है, तो वे खुशी से विह्वल हो उठे। ध्रुव को प्यार से अपनी गोद में बिठा लिया। बालक ध्रुव की खुशी का तो कहना ही क्या! यह खबर सुनते ही सुरुचि अपनी कुरुचि लेकर राजसभा में आ धमकी। उसने ध्रुव को सबोधित कर कहा—"अरे भिखारिन के बच्चे! उतर जा सिंहासन से नीचे। मेरी कोख से जन्म लिये बिना तू इस सिंहासन पर बैठ नही सकता।" ध्रुव ने प्रतिवाद किया। आखिर सुरुचि ने हाथ पकड कर बालक को नीचे उतार दिया। यह सब कुछ हुआ और विषयी राजा चुप बैठा रहा, उसने कुछ नहीं कहा। बालक के स्वाभिमान को धक्का लगा। वह हाथ जोडकर पिता से बोला—"पिताजी! आप राजाधिराज हैं। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं उससे भी ऊँचे पद को प्राप्त कर सकूँ और यह सिंहासन मेरे बैठने लायक ही न रहे।" इतना कहकर बालक ने आश्रम की तरफ़ प्रस्थान किया।

आश्रम जाकर माँ को सब हाल सुनाया। साथ ही राज-सिंहासन से भी ऊँचा पद प्राप्त करने के अपने निश्चय को भी दुहराया। इसका उपाय भी पूछा। माँ बोली—"बेटा! नारायण की तपस्या कर। वह ही तेरी मनोकामना पूर्ण करेगा।"

ध्रुव को पहले तो सदेह हुआ। पूछा—"माँ! नारायण को कैसे याद करूँ? क्या वह मेरी सुन सकता है?"

माँ ने समझाया—"विश्वास रखकर पुकारने पर वह अवश्य सुनेगा।"

ध्रुव उसी समय जगल में जा कर तपस्या करने लगा। कुछ दिनों के बाद नारद मुनि से उसकी मुलाकात हुई। उन्होंने बालक को समझाया कि जब तक किसी के प्रति घृणा, द्वेष आदि भावनाएँ तुम्हारे अदर रहेंगी तब तक भगवान् दर्शन नहीं देंगे। फिर नारद के कहे अनुसार सभी बुरी भावनाओं को छोडकर शुद्धमन से बालक ने भगवान् को पुकारा। "हे भगवान्! मेरी सौतेली माता पर दया करके मुझे दर्शन दो।" मन में विमाता के लिए जो घृणा थी ध्रुव ने उसे निकाल दिया। तब भगवान् ने दर्शन दिये। बालक ध्रुव खुशी खुशी घर लौट आया। अब सचमुच राज सिंहासन उसके बैठने लायक नहीं रह गया था।

बालक की तपस्या से सुरुचि की कुरुचि नष्ट होगई। वह राजा के साथ जगल में गई और सुनीति से उसने क्षमा माँगी। सब मिल कर खुशी से रहने लगे।

सत् संकल्प की पूर्ति में इसी तरह ईश्वर मदद करता है। लेकिन प्रयत्न तो करना ही पड़ता है।

ऊपर की घटनाएँ यद्यपि हमारे विषय से संबध नहीं रखती, फिर भी मैं ने प्रसगवश कह दी। ऐसी घटनाओं से, क्या यह सिद्ध नहीं होता कि भगवान् पर भरोसा रखकर शुद्ध मन से

कर्म करने पर, भगवान् मनुष्य की सदिच्छाओं को अवश्य पूर्ण करता है।

हाजिर जवाब – तुलसी :

अब बालक तुलसी की दृढ़ता और चतुराई के विषय में पढ़ो। मोहनलाल जी की फटकार से बालक तुलसी चुप तो हो गये परंतु घबराये नहीं। अब वे अंदर ही अंदर रास्ता ढूँढ़ रहे थे। उनके भाई मुनि श्री चंपालाल जी बालक की उत्कंठा को ताड़ गये थे। वे बालक की दीक्षा के पक्ष में थे। उन्होंने मोहनलाल जी को समझाया परंतु मोहनलाल जी पर उनके समझाने का भी कोई असर नहीं हुआ।

एक दिन श्री कालूगणी जी की व्याख्यान - सभा में बालक खड़ा हो गया। उसने गुरुदेव से अर्ज़ किया —" गुरुदेव! मुझे आजीवन विवाह और व्यापार के लिए परदेश जाने का त्याग करा दीजिए।" बालक की बात सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। मोहनलाल जी कुछ बोल नहीं सके। गुरुदेव ने प्यार से समझाया— " बेटा! अभी तू बच्चा है। इस तरह का त्याग बहुत बड़ी बात है।" गुरुदेव की बात सुनकर मोहनलाल जी के जी में जी आया।

बालक तुलसी एक बार फिर अपने प्रयत्न में असफल हो गये।



"गुरुदेव ! आपके समक्ष मैं उन दोनों का त्याग करता हूँ ।"

लेकिन उन्होंने तुरंत कुछ निर्णय कर लिया। उन्होंने घोषण की। "गुरुदेव, आपके समक्ष मैं इन दोनो का त्याग करता हूँ।" इतना कहकर बालक बैठ गया। सभा स्तब्ध! मोहनलाल जी मौन!! गुरुदेव प्रसन्न!!! किसी को कुछ कहने के लिए रहा ही नहीं। बालक तुलसी विजयी हुए। * सत्य की विजय तो होनी ही थी और हुआ भी वही।

अनुकूल परिस्थिति

बच्चो! यह तो तुम्हें मालूम ही है कि घर के लोग बच्चों को उनके रंग-रूप स्वभाव आदि के अनुसार नया नाम भी दे देते हैं, यद्यपि पहले से एक नाम तो रहता ही है। जैसे बचपन में मेरे तीन नाम थे। पंडितों ने जन्मपत्री में नाम रखा "कमल-कुमार"।

---

* सत्य की विजय होती ही है—यह बात सत्य होते हुए भी कभी कभी बाह्य दृष्टि से देखने पर लगता है कि सत्य पराजित हो गया है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। सत्य की विजय देखने के लिए प्रतीक्षा करनी पडती है, पर वह हम से होती नहीं। उस परिस्थिति में हम विजयी पक्ष को सत्य पक्ष मानने लग जाते हैं। भारत चीन के झगडे को भी दुनियाँ के कई देश इसी दृष्टि से देखते हैं। दुनियाँ में ऐसी अनेक मिसालें पडी हैं। इसलिए सावधान रहना चाहिए। सत्य दर्शन का प्रयास हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिए और वह विवेक के जागृत होने के बाद ही हो सकता है।

यह नाम केवल जन्मपत्री में ही रह गया। दूसरा नाम सोच समझ कर रखा गया "सीताशरण"। यह भी ज्यादा दिनों तक नहीं चला, यद्यपि स्कूल आदि के रजिस्टरों में वह आज भी दर्ज है। ज़रा चलना फिरना सीखा कि मेरी एक बुआ ने नाम रख दिया "टुन टुन"। बाद में तो वह सब मिटकर केवल "एम० एस० शर्मा" रह गया और अब उसी का उपयोग हो रहा है।

आचार्य तुलसी को भी बचपन में उनके मामा "तुलसीदास" कहकर पुकारते थे। उस समय तो वे केवल प्यार के कारण ही ऐसा संबोधन करते होंगे। फिर भी इस में बालक तुलसी के आचार विचार आदि का प्रभाव भी अवश्य रहा होगा। कुछ भी रहा हो, आज वह भविष्यवाणी सिद्ध हो गयी। आज तो बालक तुलसी न सिर्फ तुलसीदास बल्कि 'आचार्य' सहित तुलसीदास बन गये हैं।

हाँ, तो फिर हम अपने विषय की ओर लौटें। व्याख्यान सभा में बालक तुलसी की भीष्म प्रतिज्ञा ने सब की ज़बान बद कर दी थी। अब मोहनलाल जी को सही परिस्थिति का ज्ञान हो गया था। उन्होंने अपने मन को संयत किया। भावुकता और ममता को कर्तव्य के आगे हार खानी पड़ी। परिस्थिति और कर्तव्य की पुकार के आगे कितनी माताओं को अपनी ममता का बलिदान चढ़ाना पड़ा

है-इतिहास इसका साक्षी है। सुनीति, सुभद्रा, कौशल्या, देवकी आदि के नाम तो तुम्हें भी मालूम है। ऐसा त्याग कभी निष्फल नहीं होता। इतिहास इसका भी साक्षी है।

बालक तुलसी ने तो स्वय ही अपने बधन तोड दिये थे। ऐसे बधन केवल एक ओर से हों तो वे टिकते भी नहीं। मोह का बधन मनुष्य की प्रगति में बाधक बना रहता है। ऐसा नहीं कि हम यह बात नहीं जानते। हम नाना ग्रथों में ऐसी बातें पढ़ते हैं, साधु-सतो के मुँह से ऐसी बाते सुनते है और मनन भी करते हैं। कभी-कभी क्षण भर के लिए हमारे मन में विरक्ति के भाव भी उमड आते हैं, कई तरह के सकल्प विकल्प भी मन में उठते हैं। परतु, दूसरे ही क्षण फिर से सासारिक माया-पाश को अपने ही हाथों गले मे डाल लेते हैं। बालक तुलसी ने मोहनलाल सहित सारे परिवार को इस महा मोह-पाश से मुक्त कर, हमारे लिए एक मिसाल कायम की। उन्होंने यह साबित कर दिया कि उम्र हमारे विकास मे बाधक नहीं बन सकती। अग्रेजी में एक कहावत है "Child is the father of man"

ऐसा कहा जाता है कि हर एक को अपने अपने कर्मों का ही फल भोगना पडता है। लेकिन कर्म कई प्रकार के होते हैं। कुछ कर्म व्यक्तिगत होते हैं, कुछ परिवारगत और कुछ समाजगत। इसी क्रम से कर्मों की परिधि व्यापक होती जाती है और साथ-साथ उनके

परिणाम भी व्यापक होते जाते हैं। युधिष्ठिर के जुआ खेलने का परिणाम परिवार से लेकर राष्ट्र तक को भुगतना पड़ा। अमेरिका, रूस में बन रहे अणुबमों का दुनिया भर के वातावरण पर प्रभाव पड़ रहा है। गाँधी जी के कर्मों का परिणाम सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए हितकर साबित हुआ। इसलिए मुझे ऐसा लिखने में संकोच नहीं हो रहा है कि बालक तुलसी ने सारे परिवार को मोह पाश से मुक्त कर दिया।

मोहनलाल जी एक दिन बालक तुलसी के साथ गुरुदेव के पास गये और गुरुदेव से बालक तुलसी की दीक्षा के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। दीक्षा की स्वीकृति मिल गयी। साथ ही तिथि भी निश्चित हो गयी।

बच्चो! आखिर दृढ़ संकल्प तुलसी अपने अभीष्ट को पाने में सफल हो गये। तुम जैन धर्म के कड़े नियमों से परिचित नहीं होगे। साधुओं के लिए नियम बड़े कठोर होते हैं, दीक्षा की स्वीकृति भी बहुत सोच समझ कर दी जाती है। जैन साधुओं को जीवन भर घोर तपस्या करनी पड़ती है, नियमों का उल्लंघन बड़ा अपराध माना जाता है। सारे भौतिक सुखों को जीवन भर के लिए छोड़ना आसान बात नहीं है। इसलिए दीक्षा की आज्ञा के बाद भी तिथि आदि तय करने में बहुत समय लग जाता है। इस अवधि में दीक्षार्थी की जीवन-चर्या को बहुत बारीकी से परखा जाता है।

लेकिन तुलसी के लिए दोनो आज्ञाएं एक साथ मिल गयीं। इसने बालक की सच्ची लगन और शिष्य के चयन में गुरु की सूक्ष्म-दृष्टि—दोनो का पता चलता है। बालक ने अपने आचरण से दीक्षा के लिए अपने आप को सब तरह से योग्य साबित कर दिया था, और गुरुदेव ने उनके आचरण में एक योग्य शिष्य और भावी आचार्य भाँप लिया था।

तीर्थराज

प्यारे बच्चो ! जीवन में कोई कोई ऐसी घड़ी आती है जो सारे जीवन को बदल देती है। मनुष्य हर क्षण बदलता रहता है और मृत्यु तक यह क्रम चलता रहता है। लेकिन उसका पता आसानी से नहीं लगता, या फिर उसे समझने के लिए उपयुक्त परिस्थिति नहीं बन पाती। विषय कुछ गम्भीर है इसलिए समझाने के लिए उदाहरण आवश्यक है

मान लो, तुम अपने साथियों के साथ काशी पहुँच गये, दस बजे। बारी बारी से तुम सब ने दशाश्वमेध घाट में स्नान किया। तुम सब समझ रहे हो कि हम सब लोगों ने एक ही घाट, एक ही नदी, एक ही पानी में स्नान किया। बात तो ठीक है। किन्तु ज़रा सोचो तो, पानी में प्रवाह है, इस लिए तुम्हारे स्नान के समय जो पानी था वह आगे निकल गया। वह प्रतिक्षण आगे बढ़ता ही रहता है। इसलिए तुम्हारे साथियों के लिए वह पानी बदल गया जिस में तुमने स्नान किया। हमारा शरीर स्थूल है इसलिए वह उतनी जल्दी बदलता नहीं। परन्तु हमारे विचारों में प्रवाह है और ये विचार ही जीवन हैं। वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिस तरह पानी के प्रवाह में फूल और गन्दगी दोनों साथ - साथ बहते

रहते हैं उसी तरह विचारों में भी अच्छे - बुरे विचार आते रहते हैं। जैसे गगा सब जगह पवित्र है और हर रोज पवित्र है, फिर भी खास - खास जगहों में उनका विशेष महत्व है, और उन जगहो मे भी खास - खास तिथियों में वह महत्व और भी बढ़ जाता है। वैसे ही जीवन - यात्रा भी है। बालक तुलसी के जीवन मे दीक्षा के दिवस का विशेष महत्व है। हिन्दुओं के मुताबिक उसे प्रयाग मे कुम्भ का महत्व प्राप्त है।

शुभ घड़ी :

आचार्य श्री कालूगणी को लाडणूं आये एक महीना पूरा हो गया था। नियम के मुताबिक उन्होंने चतुर्थी को गाँव छोड दिया। गाँव के बाहर श्री भालचंद बडौड जी की कोठी में निवास हुआ। कोठी के बाहर बहुत बडी जगह थी, वही स्थान दीक्षा प्रदान करने के लिए तय किया गया। प्रातःकाल ही दीक्षा होने वाली थी। पहले से ही पास - पड़ोस के लोग जमा हो गये। उपस्थित जन - समुदाय के बीच बालक की दीक्षा - विधि सपन्न हुई। जन - सागर इस शुभ मुहूर्त में खुशी से झूम उठा। शायद उसे भविष्य का आभास हो गया था। वह शुभ दिन था—विक्रम सवत् १९७२, पौष कृष्ण पंचमी।

तीर्थराज

प्यारे बच्चो ! जीवन में कोई कोई ऐसी घड़ी आती है जो सारे जीवन को बदल देती है । मनुष्य हर क्षण बदलता रहता है और मृत्यु तक यह क्रम चलता रहता है । लेकिन उसका पता आसानी से नहीं लगता, या फिर उसे समझने के लिए उपयुक्त परिस्थिति नहीं बन पाती । विषय कुछ गम्भीर है इसलिए समझाने के लिए उदाहरण आवश्यक है

मान लो, तुम अपने साथियों के साथ काशी पहुँच गये, दस बजे । बारी बारी से तुम सब ने दशाश्वमेध घाट में स्नान किया । तुम सब समझ रहे हो कि हम सब लोगों ने एक ही घाट, एक ही नदी, एक ही पानी में स्नान किया । बात तो ठीक है । किन्तु ज़रा सोचो तो, पानी में प्रवाह है, इस लिए तुम्हारे स्नान के समय जो पानी था वह आगे निकल गया । वह प्रतिक्षण आगे बढ़ता ही रहता है । इसलिए तुम्हारे साथियों के लिए वह पानी बदल गया जिस में तुमने स्नान किया । हमारा शरीर स्थूल है इसलिए वह उतनी जल्दी बदलता नहीं । परंतु हमारे विचारों में प्रवाह है और ये विचार ही जीवन हैं । वह प्रतिक्षण बदलता रहता है । जिस तरह पानी के प्रवाह में फूल और गंदगी दोनों साथ साथ बहते

रहते हैं उसी तरह विचारों में भी अच्छे - बुरे विचार आते रहते हैं। जैसे गंगा सब जगह पवित्र है और हर रोज पवित्र है, फिर भी खास - खास जगहो में उनका विशेष महत्व है, और उन जगहो मे भी खास - खास तिथियो में वह महत्व और भी बढ़ जाता है। वैसे ही जीवन - यात्रा भी है। बालक तुलसी के जीवन मे दीक्षा के दिवस का विशेष महत्व है। हिन्दुओं के मुताबिक उसे प्रयाग मे कुम्भ का महत्व प्राप्त है।

शुभ घड़ी :

आचार्य श्री कालूगणी को लाडणूं आये एक महीना पूरा हो गया था। नियम के मुताबिक उन्होंने चतुर्थी को गाँव छोड दिया। गाँव के बाहर श्री भालचद बडौड जी की कोठी में निवास हुआ। कोठी के बाहर बहुत बडी जगह थी, वही स्थान दीक्षा प्रदान करने के लिए तय किया गया। प्रात.काल ही दीक्षा होने वाली थी। पहले से ही पास - पडोस के लोग जमा हो गये। उपस्थित जन - समुदाय के बीच बालक की दीक्षा - विधि सपन्न हुई। जन - सागर इस शुभ मुहूर्त में खुशी से झूम उठा। शायद उसे भविष्य का आभास हो गया था। वह शुभ दिन था—विक्रम सवत् १९७२, पौष कृष्ण पचमी।

तीर्थराज

प्यारे बच्चो ! जीवन में कोई कोई ऐसी घडी आती है जो सारे जीवन को बदल देती है। मनुष्य हर क्षण बदलता रहता है और मृत्यु तक यह क्रम चलता रहता है। लेकिन उसका पता आसानी से नहीं लगता, या फिर उसे समझने के लिए उपयुक्त परिस्थिति नहीं बन पाती। विषय कुछ गम्भीर है इसलिए समझाने के लिए उदाहरण आवश्यक है

मान लो, तुम अपने साथियों के साथ काशी पहुँच गये, दस बजे। बारी बारी से तुम सब ने दशाश्वमेध घाट में स्नान किया। तुम सब समझ रहे हो कि हम सब लोगों ने एक ही घाट, एक ही नदी, एक ही पानी में स्नान किया। बात तो ठीक है। किन्तु ज़रा सोचो तो, पानी में प्रवाह है, इस लिए तुम्हारे स्नान के समय जो पानी था वह आगे निकल गया। वह प्रतिक्षण आगे बढ़ता ही रहता है। इसलिए तुम्हारे साथियों के लिए वह पानी बदल गया जिस में तुमने स्नान किया। हमारा शरीर स्थूल है इसलिए वह उतनी जल्दी बदलता नहीं। परंतु हमारे विचारों में प्रवाह है और ये विचार ही जीवन हैं। वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिस तरह पानी के प्रवाह में फूल और गन्दगी दोनों साथ साथ बहते

तुम देख ही रहे हो—तुलसी की दीक्षा अनायास और अचानक हुई।" उनके इन शब्दों से पता चलता है कि तुलसी की दीक्षा से गुरुदेव को बड़ी प्रसन्नता हुई थी मानो उनकी कोई संचित अभिलाषा पूर्ण हुई हो, यद्यपि गुरुदेव ने ऐसा कभी प्रकट नहीं किया। परंतु आज हम आचार्य तुलसी को जिस रूप में पाते हैं—उसे गुरुदेव पहले ही समझ गये हों तो इस में आश्चर्य ही क्या है? संत द्रष्टा होते हैं। उन्हें भविष्य का भास होता है या यों कहें कि कालूगणी ऐसे पहुँचे हुए संत थे कि वे जो भी कल्पना करते वह फलित हो जाया करती थी। माण्डूक्य उपनिषत् में एक प्रसंग आया है :—

"यं यं लोकं मनसा संविभाति,
विशुद्ध सत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जायते तांश्चकामान्,
तस्मात् आत्मज्ञ हि अर्चयेत भूतिकामः॥" *

"अर्थात् ऐसे संतों का जिनका चित्त निर्विकार है—उनकी कल्पनाएँ सफल हो जाती हैं। वे जिस लोक की कल्पना करते हैं

निर्विकार :—तम-रज से ऊपर केवल सत्व गुण से भरा हुआ चित्त।
भूतिकाम —आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा रखनेवाला।
लोक —जिससे हम देखते हैं उसे लोचन कहते हैं। रोशनी या प्रकाश जिस के बिना हम देख नहीं सकते, उसे आलोक कहते हैं। लोचन और आलोक—दोनों की मदद से जो कुछ दिखाई देता है उसे लोक कहते हैं।

पूर्वाभास

प्यारे बच्चो! तेरापंथ के आचार्य हर साल किसी न किसी की दीक्षा विधि संपन्न करते होंगे। लेकिन इस बालक की दीक्षा में गुरुदेव तथा अन्य लोगों की जितनी रुचि रही उतनी सामान्यत औरों की दीक्षा के मामलों में नहीं पाते। ऐसा क्यों? क्योंकि एक तो उस समय बालक की उम्र बहुत कम थी और इस छोटी अवस्था में ही दीक्षा के लिए उन्होंने अपने आप को भली प्रकार योग्य प्रमाणित कर दिया था। बालक की प्रतिभा से श्री कालूगणी भी प्रभावित थे। वे बालक तुलसी में तेरापंथ का भविष्य देख रहे थे जब कि समान्य लोगों के लिए वर्तमान ही कौतूहल से भरा था।

श्री तुलसी की दीक्षा को गुरुदेव ने पहले से ही विशिष्ट समझा था। एक बार उनकी चर्चा में भी यह बात प्रगट हो गयी थी।

किसी समय श्री कालूगणी के सामने शकुन संबंधी चर्चा चल पड़ी। "पहले तो शकुन के फल प्राय मिला करते थे, अब वैसी बात नहीं रही।"—मुनि श्री चौथमल जी ने कहा। गुरुदेव ने उसका प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा—"नहीं ही मिलते, यह बात नहीं है। कभी कभी तो वे अवश्य फलदायी होते हैं, हम ध्यान नहीं देते। अभी हमने बिदासर से लाडनू के लिए प्रस्थान किया था, उस समय कई शुभ सकुन सामने आये थे। अब उसका फल

अच्छा बच्चो! अब विदा।

तुम्हें याद होगा मैंने 24-2-67 की रात से डायरी के ये पन्ने लिखने शुरु किये, आज है अप्रैल की अठारह तारीख। इसी दिन विनोबा जी को प्रथम भूदान प्राप्त हुआ था। हम इस दिन को बहुत महत्व देते हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह दिन अमर रहेगा।

जय जगत्



उसे प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए यदि तू अपनी उन्नति की इच्छा रखता है तो ऐसे आत्मज्ञानी की पूजा कर, उसकी सेवा कर।"

संत आत्मज्ञानी होते हैं इसलिए उनके लिए कुछ भी अदृश्य नहीं होता है। पुराणों में मृत्यु लोक से सत्य लोक तक सात लोगों की कल्पना की गयी है। हम सांसारिक मनुष्य अदृश्य का दर्शन नहीं कर पाते। आत्मज्ञान के बिना माया का स्वरूप समझ में नहीं आता। संदेह आत्मज्ञान के मार्ग में कांटा है। दर्शन के अधूरे ज्ञान के कारण आचरण, विचार से पीछे छूट जाता है। ब्रह्मतत्त्व-(सत्य दर्शन या आत्म ज्ञान) जो कि हवा की तरह है, पकड़ में नहीं आती। संतों ने कहा हैं कि साधना, पूर्ण श्रद्धा और अटल विश्वास रखकर आचरण करने वाले ही आत्म ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

अंधेरे में बिछावन् पर पड़ी रस्सी से सांप का भ्रम होता है। रोशनी होने पर उसका असली रूप दिखाई देता है। ज्ञानी पुरुषों को भविष्य देखने की रोशनी मिल जाती है।

एक ही माटी की विविध मूर्तियाँ तैयार की जाती हैं। कलाकार जैसी कल्पना करेगा-वैसी मूर्ति तैयार हो जायेगी। काळ्राणी जी उच्चकोटि के संत थे। इसीलिए उनकी जो भी कल्पना तुलसी के विषय में थी वह साकार हुई है, उनकी कामना पूर्ण हुई है। इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं।

आचार्य श्री तुलसी

जैसा मैंने समझा

द्वितीय चरण

जब मुनि बने !

डायरी के पन्ने

---

1 5-67—आज दुनियाँ भर मे मजदूर दिवस मनाया जा रहा है। करुणा से प्रेरित होकर, कार्ल मार्क्स ने जो विचार दुनियाँ को दिये थे उनकी सफलता का प्रथम दिन था – पहली मई। करीब सौ साल पहले जब साम्यवाद का विचार मार्क्स ने जनता के सामने रखा था तब वह कितना क्रातिकारी विचार था! उस समय सारा ससार पूजीपतियों की गुलामी में दम तोड रहा था। आज परिस्थिति बदल गई है। आज राजनैतिक गुलामी लगभग समाप्त हो गई है, आर्थिक गुलामी का दौर चल रहा है। मार्क्स को माननेवाले एक अच्छे विचार के पीछे दकियानूमी ढग से चलते - चलते आज कहाँ से कहाँ पहुँच गये हैं! आज मार्क्स के नाम पर दुनियाँ में मानव की स्वतत्रता कुचली जा रही है। उस महामानव के नाम पर उन्हीं के विचारों में दो पक्ष हो गये और वे एक दूसरे के दुश्मन बन गये।

मार्क्स की कल्पना थी कि दुनिया भर में केवल दो ही वर्ग हैं—गरीब और अमीर, जिन्हें दूसरे शब्दों में शोपक और शोषित अथवा मालिक और मजदूर भी कहा जा सकता है। उन्होंने दुनियाँ भर के मजदूरों को एक होने का नारा दिया था, किन्तु वह हो नहीं

डायरी के पन्ने

1 5-67—आज दुनियाँ भर मे मजदूर दिवस मनाया जा रहा है। करुणा से प्रेरित होकर, कार्ल मार्क्स ने जो विचार दुनियाँ को दिये थे उनकी सफलता का प्रथम दिन था – पहली मई। करीब सौ साल पहले जब साम्यवाद का विचार मार्क्स ने जनता के सामने रखा था तब वह कितना क्रातिकारी विचार था! उस समय सारा ससार पुजीपतियों की गुलामी में दम तोड रहा था। आज परिस्थिति बदल गई है। आज राजनैतिक गुलामी लगभग समाप्त हो गई है, आर्थिक गुलामी का दौर चल रहा है। मार्क्स को माननेवाले एक अच्छे विचार के पीछे दकियानूसी ढग से चलते - चलते आज कहाँ से कहाँ पहुँच गये हैं। आज मार्क्स के नाम पर दुनियाँ में मानव की स्वतत्रता कुचली जा रही है। उस महामानव के नाम पर उन्हीं के विचारों में दो पक्ष हो गये और वे एक दूसरे के दुश्मन बन गये।

मार्क्स की कल्पना थी कि दुनिया भर में केवल दो ही वर्ग हैं—गरीब और अमीर, जिन्हें दूसरे शब्दों में शोषक और शोषित अथवा मालिक और मजदूर भी कहा जा सकता है। उन्होंने दुनियाँ भर के मजदूरों को एक होने का नारा दिया था, किन्तु वह हो नहीं

सका। आज भी दुनियाँ मुख्यत दो हिस्सों में बटी है जरूर, लेकिन यह विभाजन मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है। कम्यूनिस्ट और कम्यूनिस्ट विरोधी इन दो नामों से वर्तमान दुनियाँ को पुकारा जाता है। किन्तु सचाई यह है कि कम्यूनिस्ट और पूजीवादी, दोनों तरह की व्यवस्था में अमीर और गरीब का भेद मौजूद है। दोनों जगह शोषक और शोषित मेजूद हैं। दोनों जगह दबे हुए लोगों के मन में खाते पीते लोगों के लिए ईर्षा है, द्वेष है। परन्तु राष्ट्रीयता के नाम पर सब एक होकर पर राष्ट्र के विरोध में खड़े हैं।

दुनिया भर के अफसर खाते-पीते और संपन्न वर्ग के लोग हैं। कुल दुनियाँ में मजदूर और सिपाही, जो आगे की पक्ति में रहते हैं, साधारण स्थिति में हैं। इन लोगों को सब जगह कम मजदूरी पर गुजारा करना पड़ता है। इन सबका सचालन बुद्धिवादी अफसरों और नेताओं के हाथ में है। क्या ये बुद्धिजीवी लोग इन गरीबों को एक होने देंगे? जिन नेताओं का नारा है कि दुनियाँ भर के मजदूर एक हैं, उनसे पूछता हूँ कि क्या आप दुनियाँ भर के नेता एक हैं?

सचाई यह है कि न वे एक हो सकते है और न दूसरों को एक होने देंगे। क्योंकि यदि दुनियाँ में भाई चारा और एकता का उदय हुआ तो उनकी नेतागीरी के तारे अस्त हो जायेंगे।

अणुबम के आविष्कार ने राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया है, तोपों की आवाज बन्द है। मार्क्स ने सभवत. यह कल्पना नहीं की होगी कि एक दिन मानव के हाथों में एक ऐसी शक्ति पहुँच जायेगी जिसकी भयकरता के आगे सभी पुराने तोडने वाले विचार बेकार हो जायेंगे। मार्क्स यदि आज की दुनिया में होते तो वे ससार में शान्ति और समता के लिए सर्वोदय का, अणुव्रत का अर्थात हृदय परिवर्तन का तरीका अपनाते। किन्तु दुर्भाग्य से उनके अनुयाइयों का ध्यान इस सचाई की ओर नहीं गया है। हृदय परिवर्तन, विचार परिर्तवन की बात सुनकर हमारे साम्यवादी भाइयों को हँसी आती है किन्तु सचाई यह है कि उनका भी हृदय परिवर्तन हुआ है और वह भी केवल मार्क्स के ग्रन्थों को पढ़कर। जब पुस्तकों को पढ़कर हृदय परिवर्तन हो सकता है तो फिर जहाँ विनोबा जी और आचार्य तुलसी जैसे विचारक लोगों को समझाने को गाँव-गाँव घूम रहे हैं, परिवर्तन क्यों नहीं होगा? और यदि नहीं होगा तो ससार का क्या होगा—इस विषय में गभीरता से विचार करना होगा।

... 18 अप्रैल के बाद आज तक आ० श्री की जीवनी लिखने का काम बन्द पडा रहा। आज से दूसरा चरण लिखना है।



आचार्य तुलसी, जब मुनि बने

जीवन में श्रद्धा का स्थान

प्यारे बच्चो! मैंने अब तक जो कुछ लिखा है और जो आगे लिखने जा रहा हूँ, उसकी प्रेरणा का स्रोत क्या है, इसका उत्तर मैं भी नहीं जानता। फिर भी इतना बता दूँ कि आचार्य तुलसी के विषय में जो कुछ पढ़ा, सुना और देखा उस से मैं उत्तरोत्तर आकर्षित होता गया हूँ। उनमें शुरु से ही आत्म बल और व्यापक दृष्टिकोण रहा है जो कि महान से महानतर होता गया है। मेरा आकर्षण इसी व्यापक दृष्टिकोण के प्रति उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार के आकर्षण को ही श्रद्धा कहते हैं—जो के श्रद्धेय गुणों के कारण पैदा होती है। श्रद्धा, जीवन विकास की पहली सीढ़ी है। आचार्य तुलसी अपनी महानता के कारण जन जन के श्रद्धा के पात्र बन गये हैं।

आचार्य तुलसी ने ग्यारह वर्ष की अवस्था में मुनि जीवन में प्रवेश किया और बाईस वर्ष की अवस्था में आचार्य पद प्राप्त किया। अर्थात मुनि जीवन ग्यारह वर्ष तक चला। उसी के विषय में इस चरण में पढ़ोगे।

आचार्य श्री कालूगणी जी में अनेक गुण थे और इधर बालक तुलसी भी गुणों की खान थे। फिर भी बालक तुलसी की गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति तथा गुरुदेव का बालक तुलसी के प्रति विश्वास और स्नेह बालक तुलसी के विकास की कुंजी साबित हुई। श्रद्धा और विश्वास के मेल से जो शक्ति बनती है वही है जीवन विकास की कुंजी। बैट्री और बल्ब का सपर्क होते ही रोशनी फूट पड़ती है। ठीक उसी प्रकार गुरु-शिष्य का मधुर सबन्ध शिष्य के ज्ञान चक्षुओं को खोल देता है।

मुनि श्री तुलसी ___ओह! अवस्था का ध्यान आते ही बालक तुलसी लिखने को जी चाहता है— । परंतु सघ की मर्यादा और बालक के महान गुणों का ध्यान रखना जरूरी है। खैर!

हाँ, तो मुनि श्री तुलसी को गुरू का स्नेह और कठोर नियंत्रण साथ-साथ मिला। केवल स्नेह बालक को हठी और नटखट बनाता है और केवल नियत्रण पारस्परिक मधुर सम्बन्धों में बाधक होकर बालक में भय उत्पन्न करता है, असत्य की ओर ले जाता है। इस से बालक पलायनवादी (जिम्मेदारी से बचकर दूर भागना) प्रवृत्ति का हो जाता है। इसलिए प्रेम और नियत्रण, दोनों मिलकर ही बच्चों में मानव जीवन की बुनियाद रख सकते हैं। ताली बजाने के लिए दोनों हाथों की जरूरत होती है।

बच्चो! एक प्रश्न उठता है कि गुरुदेव तो समदर्शी थे।

उनके लिए तो सभी शिष्य समान होने चाहिएँ। फिर उनके मन में तुलसी के प्रति विशेष स्नेह क्यों था? उत्तर स्पष्ट है जहाँ ज्ञान की प्यास जितनी तीव्र होगी, ज्ञानगंगा की धारा वहाँ उतनी ही तीव्रता से पहुँचेगी। गुण का आकर्षण गुणों को अपनी ओर खींच कर उनका गुनन करके गुण वृद्धि करता रहता है। एक कहानी सुनो।

राम विश्वामित्र के साथ जनकपुर जा रहे थे। उस समय की प्रथा अनुसार राजा का लड़का होते हुए भी महर्षि विश्वामित्र के साथ पैदल ही चल रहे थे। मार्ग भी जंगल का था। रास्ते में एक स्त्री की पत्थर की मूर्ति दिखाई दी। राम ने गुरु से पूछा— 'यह पत्थर की मूर्ति यहाँ कैसे पड़ी है?' विश्वामित्र ने बताया, 'राम, यह गौतम मुनि की पत्नी अहिल्या है। इस अभागी से अनजाने में एक अपराध हो गया था। मुनि लोगों का क्रोध तो जानते ही हो, उन्होंने श्राप दे दिया। पति श्राप से वह पत्थर हो गई है। आपकी चरण धूली के स्पर्श से इसका उद्धार हो जायेगा। अब आप कृपा करके इसे अपने चरणों का स्पर्श करा दीजिये।' राम को आश्चर्य तो हुआ परन्तु गुरु के कथन पर अविश्वास कैसे हो सकता था? राम ने ज्यों ही उस मूर्ति से चरण स्पर्श किया, वह मूर्ति एक दिव्य स्त्री बन गई।

अब जरा सोचें, राम वर्षों तक जंगलों में और पहाड़ों पर घूमते रहे। पैरों में जूते भी नहीं थे। इस बीच न केवल साधारण

पत्थर पर, वल्कि अनेक पत्थर की मूर्तियों पर भी उनके चरण पडे होंगे, किन्तु एक भी प्रतिमा सजीव नहीं हो सकी। उधर अहिल्या की प्रतिमा अनेक वर्षों तक असख्य लोगों के चरणो की धूलि चाटती रही, फिर भी उस में एक स्पन्दन भी नहीं आया। इसका कारण साफ है। उधर राम की चरण–धूलि में विशेष गुण थे इधर अहिल्या की प्रतिमा में भी कुछ विशेषता थी। दोनों का सपर्क होते ही अहिल्या श्राप मुक्त होकर मानव हो गई और राम की कीर्ति पताका दूर - दूर तक युग - युग के लिए फहर गई।

ठीक इसी तरह आचार्य श्री कालूगणी जी तथा वालमुनि श्री तुलसी दोनों में ही कुछ विशेष गुण थे। गुरुदेव एक योग्य शिष्य की खोज में थे और बालक तुलसी योग्य गुरु पाने को तडप रहे थे। फिर क्या था, "जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु सदेहू।" तुलसी राम की ओर से जहाँ गुरु को श्रद्धा और समर्पण मिला वहाँ गुरु ने भी अपनी ज्ञान-निधि शिष्य के आगे उँडेल दी। दोनों ही एक दूसरे को पाकर धन्य हो गये।

कठिनाई से छुट्टी :

तेरा पथ के आचार्य पर एक बड़ी जिम्मेदारी रहती है। उन्हें खुद भावी आचार्य का चुनाव करना पडता है। कई सप्रदायों में आज जो परपरा है, वह अत्यंत हास्यास्पद है। उन में अपढ़ आतातों को भी शिष्य परपरा के अनुसार प्रधान बना दिया जाता

पढ़ना शुरू हो गया था। ऐसे योग्य शिष्य का अनायास प्राप्त होना ईश्वर कृपा ही कहना ठीक होगा।

कठोर तपस्या

बच्चो! विद्याध्ययन से बढ़कर कठिन तपस्या की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विद्या का अर्थ स्कूली शिक्षा नहीं है। आजकल तो विद्यार्थी जीवन से बढ़कर मौज मजा का संयोग फिर कभी आता ही नहीं। श्री तुलसी पहले से ही अध्ययनशील और परिश्रमी थे। दीक्षा के बाद अध्ययन का विषय बदल गया। बाल्यावस्था, तीव्रबुद्धि, और विद्याप्रेम को गुरु का स्नेह और संरक्षण मिला। फिर क्या था, भावी जीवन की बुनियाद पक्की होने लगी। बहुत थोड़े समय में बालक ने पहला पाठ 'दशवैकालिक' कण्ठ कर लिया। यह पाठ अनिवार्य था। फिर संस्कृत के अध्ययन में लग गये। संस्कृत में कण्ठ करने की परंपरा आज भी है। श्री तुलसी में कण्ठ करने की अजीब शक्ति थी। उन्होंने मुनिजीवन में ही हजारों श्लोक कण्ठ कर लिये। पुराने जमाने में लिखने की कला नहीं थी। सुन सुनाकर ही अध्ययन अध्यापन चलता था। इसीलिये वेदों को श्रुति कहा गया। लेकिन आज जब कागज से प्रेस तक सब साधन उपलब्ध हैं, तब बालक तुलसी ने कंठ करने में जो परिश्रम किया वह सराहनीय है।

जहाँ चाह वहा राह :

प्यारे बच्चो ! तुम तो अपनी कक्षा में अनेक शिक्षको से पढ़ते होगे । बाल मुनि तुलसी को पढ़ाने की जिम्मेदारी मुख्यत गुरुदेव ने अपने ऊपर रखी । परंतु उनकी वृद्धावस्था और बालक की तीव्र ज्ञान पिपासा के कारण कई अन्य लोगों की सहायता लेनी ही पडी । उनमें आयुर्वेदाचार्य आशुकवि प० रघुनन्दन शर्मा प्रमुख थे । उन्होंने मुनि तुलसी के विद्याध्यन का मार्ग प्रशस्त किया । तुलसी राम मुनि श्री चंपालाल जी की देख-रेख में रहते थे । मुनि श्री चंपालाल जी का प्यार जितना उदार था नियत्रण उतना ही कठोर । उस से बालक के विकास में बहुत सहायता मिली । जिसने अपने पर नियंत्रण कर लिया है, उसे और किसी प्रकार के नियंत्रण की जरूरत नहीं होती । फिर भी व्यावहारिक दुनियाँ में वह करना ही पडता है । 'मुनि श्री चंपालाल जी रात्निक और बडे भाई थे, इसलिए मुनि श्री तुलसी उनका बहुत सम्मान करते थे । इनकी दीक्षा में भी भाई साहब का बहुत बडा हाथ था । आज भी आचार्य श्री तुलसी उनका उसी तरह सम्मान करते हैं ।

मुनि श्री चौथमल जी बडे ही कर्मठ थे । भिक्षु शब्दानुशासन महा व्याकरण तथा कालु कौमुदी के निर्माण में उनका जीवन खप गया, वे सब ग्रन्थ आज अध्ययन करने वालों के लिए वरदान साबित हुए हैं । मुनि श्री जी से श्री तुलसी को काफी मदद मिली ।

पढ़ना शुरू हो गया था। ऐसे योग्य शिष्य का अनायास प्राप्त होना ईश्वर कृपा ही कहना ठीक होगा।

कठोर तपस्या

बच्चो! विद्याध्ययन से बढ़कर कठिन तपस्या की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विद्या का अर्थ स्कूली शिक्षा नहीं है। आजकल तो विद्यार्थी जीवन से बढ़कर मौज मजा का संयोग फिर कभी आता ही नहीं। श्री तुलसी पहले से ही अध्ययनशील और परिश्रमी थे। दीक्षा के बाद अध्ययन का विषय बदल गया। बाल्यावस्था, तीव्रबुद्धि, और विद्याप्रेम को गुरु का स्नेह और संरक्षण मिला। फिर क्या था, भावी जीवन की बुनियाद पक्की होने लगी। बहुत थोड़े समय में बालक ने पहला पाठ 'दशवैकालिक' कण्ठ कर लिया। यह पाठ अनिवार्य था। फिर संस्कृत के अध्ययन में लग गये। संस्कृत में कण्ठ करने की परंपरा आज भी है। श्री तुलसी में कण्ठ करने की अजीब शक्ति थी। उन्होंने मुनिजीवन में ही हजारों श्लोक कण्ठ कर लिये। पुराने जमाने में लिखने की कला नहीं थी। सुन सुनाकर ही अध्ययन अध्यापन चलता था। इसीलिये वेदों को श्रुति कहा गया। लेकिन आज जब कागज से प्रेस तक सब साधन उपलब्ध हैं, तब बालक तुलसी ने कंठ करने में जो परिश्रम किया वह सराहनीय है।

जहाँ चाह वहा राह :

प्यारे बच्चो ! तुम तो अपनी कक्षा में अनेक शिक्षकों से पढ़ते होगे । बाल मुनि तुलसी को पढ़ाने की जिम्मेदारी मुख्यत गुरुदेव ने अपने ऊपर रखी । परंतु उनकी वृद्धावस्था और बालक की तीव्र ज्ञान पिपासा के कारण कई अन्य लोगों की सहायता लेनी ही पड़ी । उनमें आयुर्वेदाचार्य आशुकवि प० रघुनन्दन शर्मा प्रमुख थे । उन्होंने मुनि तुलसी के विद्याध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया । तुलसी राम मुनि श्री चंपालाल जी की देख-रेख में रहते थे । मुनि श्री चंपालाल जी का प्यार जितना उदार था नियंत्रण उतना ही कठोर । उस से बालक के विकास में बहुत सहायता मिली । जिसने अपने पर नियंत्रण कर लिया है, उसे और किसी प्रकार के नियत्रण की जरूरत नहीं होती । फिर भी व्यावहारिक दुनियाँ में वह करना ही पड़ता है । 'मुनि श्री चंपालाल जी रात्निक और बड़े भाई थे, इसलिए मुनि श्री तुलसी उनका बहुत सम्मान करते थे । इनकी दीक्षा में भी भाई साहब का बहुत बड़ा हाथ था । आज भी आचार्य श्री तुलसी उनका उसी तरह सम्मान करते हैं ।

मुनि श्री चौथमल जी बड़े ही कर्मठ थे । भिक्षु शब्दानुशासन महा व्याकरण तथा कालु कौमुदी के निर्माण में उनका जीवन खप गया, वे सब ग्रन्थ आज अध्ययन करने वालों के लिए वरदान साबित हुए हैं । मुनि श्री जी से श्री तुलसी को काफी मदद मिली ।

प० घनश्याम वर्मा बड़े विद्वान थे। उन्होंने संघ में विद्या-प्रचार के लिए बहुत काम किया। उन्होंने भी मुनि तुलसी के अध्यापन में काफी समय दिया। बिना पारिश्रमिक लिए स्वेच्छा से ज्ञान दान करने वाले उत्साही विद्वानों का मिलना सहज नहीं होता।

मुनि श्री भीमराय आगम के मर्मज्ञ थे। उन्होंने बहुतों को आगम सिखाया। वे समय के बहुत पाबन्द थे। श्रमनिष्ठ तो इतने थे कि जीवन भर किसी से भी किसी तरह की सेवा नहीं ली। उन्होंने भी श्री तुलसी को आगम का गहरा अध्ययन कराया।

मुनि श्री हेमराज जी की तर्क शक्ति अजेय थी, जिसके सामने कोई टिक नहीं पाता था। उन्होंने श्री तुलसी को आगम-समुद्र में गोता लगाकर रत्न निकालना सिखाया। माता वदनां जी से लेकर उपरोक्त महानुभावों तक सभी के उपकार का गुनगान आज भी आचार्य तुलसी मुक्त कंठ से करते हैं।

ज्ञान का भण्डार

योग्य पात्र के लिए ज्ञानदाताओं की कमी नहीं है। सारी प्रकृति ही ज्ञान देने को पग पग पर खड़ी है। हर चीज, हर घटना एक न एक शिक्षा देने के लिए ही रची गयी है। ग्रहण शक्ति का विकास करके अपने व्यक्तित्व का विकास और निर्माण

है। में

अपनी मंगल दृष्टि से ही नहीं बल्कि जिज्ञासु-दृष्टि से भी देखते हैं और अपना विकास करते जाते हैं। रामचरित मानस में संतों की तुलना चदन से की गई है :—

काटइ परसु मलय सुनु भाई ।
निज गुन देत सुगंध बसाई ॥

अर्थात् "कुल्हाडी चन्दन को काटती है। किन्तु चंदन अपनी सुगंध से कुल्हाडी को भी सुगधित कर देता है।" इससे बढ़कर क्षमा की शिक्षा और कौन देगा? कबीरदास साधु की उपमा सूप से देते हैं :—

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देत उडाय ॥

अर्थात् जैसे सूप निस्सार थोथे को उडा देता है और अच्छे दानों को अपने में सजोये रखता है, साधु को गुण ग्रहण करने मे वैसा ही होना चाहिए। इस तरह के अनगिनत गुरु हमारे सामने ज्ञान दान करने को तैयार खडे हैं। श्री तुलसी के जीवन निर्माण में प्रकृति ने कितनी मदद की है, यह कौन कह सकता है! ज्ञानार्जन की प्यास रखने वाले के लिए जड़ भी चेतन बन कर उपदेश देती रहती है।

मानव की असीम क्षमता •

प्यारे बच्चो! तुम में से कई बच्चे संस्कृत सीखते होंगे। संस्कृत व्याकरण में जो सफल होगया, उसके लिए शास्त्रों का अध्ययन आसान है। किन्तु व्याकरण रूपी इस हाथी को वश में लाना बड़ा कठिन हो जाता है। आचार्य श्री कालूगणी जी विद्यार्थियों को एक दोहा सुनाया करते थे —

" खान पान चिंता तजे, निश्चय मांडे-मरण ।
घो ची पू-छी करतो रहे, जद आवै व्याकरण ॥ "

अर्थात् व्याकरण में सफलता प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को कठिन तपस्या करनी पड़ती है। उसे खाने पीने तक को त्याग देना पड़ता है। अध्ययन काल में कठस्थ करना, फिर उस पाठ को बार बार दुहराना तथा चिंतन-मनन करना होता है। पूछताछ करना और समझना आदि का तांता लगातार बनाये रखना पड़ता है। कुल मिलाकर जीवन की सभी वृत्तियों को समेट कर, केवल व्याकरण के ही पीछे लगा देना पड़ता है। इस दोहे से साफ हो जाता है कि व्याकरण सीखना कितना कठिन है। एकाग्रता, निष्ठा और श्रम के सम्मिलित प्रयास के बिना सफलता संभव नहीं। जानकार गुरु की तो आवश्यकता है ही।

मुनी श्री तुलसी में ये सब गुण पहले से ही मौजूद थे। इसलिए गुरु श्री कालूगणी जी के ऊपर के दोहे की सार्थकता ि —

करना श्री तुलसी के लिए कोई कठिन नहीं था। व्याकरण ही नहीं वे जो भी विषय लेते उसी के पीछे तपस्या शुरू कर देते। वे पढ़ने से कभी थकते नहीं थे। न शरीर से, न मन से। इसी तपस्या के कारण उन्होंने अध्ययन के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता प्राप्त कर ली। इस तरह की उनकी तपस्या आज भी जारी है। चूँकि उन्हें आजीवन अध्यापक बने रहना है—इसलिए विद्यार्थी बने रहना भी आवश्यक है। जो जितना सफल विद्यार्थी है, वह उतना ही सफल अध्यापक है। जो जिस दिन विद्यार्थी जीवन से इन्कार करता है, वह उसी दिन से शिक्षक बनने की योग्यता खो देता है।

बाल मुनि श्री तुलसी जिस किसी ग्रन्थ को कठस्थ करने का निश्चय करते, उसे थोड़े ही समय में पूरा कर लेते। इस तरह उन्होंने जिन ग्रन्थों को कठस्थ किया उसके कुछ नाम इस प्रकार है:—" दशवैतालिक, भ्रम विध्वंसन, अभिधान चिंतामणि समुच्चय, व्याकरण तथा दर्शन सम्बंधी कई अन्य ग्रन्थ। इन सब के अलावा स्वाध्याय के द्वारा व्याख्यान के लिए उपयोगी कई अन्य विषयों की पुस्तकें भी उन्होंने कंठस्थ कर लीं—जैसे शान्त सुधारस, भक्तामर आदि आदि। उन्होंने ऐसे भी अनेक ग्रन्थों को कठस्थ कर लिया जिन्हें एक बार पढ़ना मात्र पर्याप्त था। इस तरह कंठस्थ करने का आज कोई समर्थन नहीं करेगा। इसे तो दिमाग पर डाला गया बोझ माना जाएगा। यह बात ठीक है कि उस समय भी आम लोगों के लिए यह बोझ ही था। लेकिन, जिसे बिना

परिश्रम के अपने आप दो एक बार पढ़ने से ही कंठस्थ हो, उसे बोझ कैसे कहें। अधिक भोजन करना हानिकर है। परंतु जो अधिक खाकर पचा लेता है – उसके लिए तो वह स्वास्थ्यप्रद ही है। श्री तुलसी को कंठस्थ करने में परिश्रम तो बहुत करना पड़ा। लेकिन, उसका बोझ उन्हें महसूस नहीं हुआ। दृढ़ संकल्प और नियमित परिश्रम के कारण धीरे धीरे कई चीजें सामान्य आदतों में बदल जाती हैं। दौड़ना, भार उठाना, तैरना – यहाँ तक कि टहलना – बोलना भी किसी किसी के लिए श्रम है और वही किसी किसी के लिए कष्टदायक है तो किसी के लिए मन बहलाने का साधन। श्री तुलसी को कंठ करने की एक आदत सी थी। उसी में उन्हें आनंद आता था।

भार नहीं – भाई

दीनबन्धु एन्डूस एक दिन अपने मकान की सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। एक पाँच वर्ष की लड़की बड़ी कठिनाई से सीढ़ी पर चढ़ रही थी। उसकी पीठ पर उसका दो ढाई वर्ष का भाई था। उस बच्ची के लिए यह भार अधिक था। दीनबंधु ने लड़की से कहा —"बेटी! तुम इतनी छोटी हो, फिर पीठ पर इतना अधिक बोझ लेकर पूरी सीढ़ी कैसे चढ़ पाओगी?"

"मेरी पीठ पर बोझ नहीं, मेरा भाई है।"—इस छोटे से उत्तर के साथ लड़की एक सीढ़ी और चढ़ गयी।

वास्तव में काम में आत्मीयता की भावना जुट जाय तो उसका भार कभी महसूस नहीं होता।

रोज की खुराक:

स० १९९१ की बात है। शीत काल का समय था। श्री कालूगणी जी का विहार चालू था। मारवाड का छोटा-सा गाँव था। एक जगह अधिक ठहरने का नियम नहीं। प्रात काल का समय यात्रा में ही समाप्त। दिन भर बँधी हुई दिनचर्या। पढ़ाने का काम और सघ का कठोर नियम। कृत्रिम प्रकाश में पढ़ना वर्जित, रात में पढ़ने का निषेध। सब तरफ़ से कठिनाई ही कठिनाई। इसके भावजूद भी श्री तुलसी ने एक कठिन ग्रन्थ हाथ में लिया, जैन रामायण कठस्थ करने का संकल्प। और फिर, आज ५६, कल ६०, परसों सौ और फिर १२५ इस तरह केवल ६८ दिनों में कुल रामायण कंठस्थ। साथी लोग देखकर दग रह गये।

बच्चो! ऐसा न समझ लेना कि उन्हें कंठ करने की ही भूख थी। वे जिसे कंठ करते थे उसे स्वाध्याय में जोडते जाते थे। रोज सोने से पहले, उठने के बाद और कभी-कभी रात का अधिकाश समय उसे पाठ करने में लगा देते थे। कभी-कभी तो सोने से पहले ही दो हजार तक श्लोकों का पाठ पूरा हो जाता था। अगर कभी नींद या आलस्य का प्रभाव दीखता तो खडे हो जाते थे। जाडे के दिनों में रात्रि के अतिम पहर में गुरुदेव उन्हें पास बुलाते,

उनसे पाठ कराते और खुद सुनते। स्वाध्याय की यह आदत आज भी उनमें कायम है, और जीवन भर कायम रहेगी क्योंकि अब वह आदत स्वधर्म बन गयी है, जीवन का अंग बन गयी है। भीड़ भाड़ तथा अनेक जिम्मेदारियों के कारण अब सोने से पहले स्वाध्याय को समय नहीं मिलता है। लेकिन रात की पिछली घड़ियों में अभी भी उनका मानसिक व्यायाम चलता ही रहता है।

छोटे मास्टरजी

मुनि श्री को संघ के कुछ साधु विद्यार्थियों को पढ़ाने का काम सौंपा गया। उस समय उनकी अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी। विद्यार्थी, उम्र में अध्यापक से बड़े थे। अध्यापक, ज्ञान और गुण में विद्यार्थियों से बड़े थे। संघ कोई स्कूल तो था नहीं, जहाँ दण्ड द्वारा भय दिखाकर सिखाया जाता है। लोग समझते कि आज तो दण्ड प्रयोग की प्रथा उठ ही गयी है। परंतु वास्तव में दण्ड के प्रयोग का अधिकार मात्र उल्टा हो गया है। अब दण्ड-शक्ति गुरु के पास नहीं, शिष्यों के पास आ गयी है। एक तरह से वह होना ही था। दण्ड, चाहे किसी भी कारण से दिया गया हो—वह हिंसा ही है। यद्यपि शिक्षण में दण्ड के उद्देश्य अच्छे थे, पर उस से हिंसा की प्रतिष्ठा बढ़ती है। बेंत की छड़ी भी तो हथियार ही है। हथियार कोई पतिव्रता नारी तो है नहीं। वह जिसके हाथ में ताकत होगी, उसके हाथ में पहुँच सकती है। एक के विरोध में

दूसरे के हाथ में अथवा दोनों के हाथ में पहुँच सकती है। अणुबम अमरीका ने बनाया था। उस समय उसे इस पर गर्व था। आज वह भय का कारण बन गया है। क्योंकि वह धीरे-धीरे अनेकों के हाथों में पहुँच गया और पहुँचता जा रहा है। इसलिए हिंसा का मूलोच्छेदन करना होगा। उसके लिए छडी से लेकर अणुबम तक को एक श्रेणी में रखना होगा। वरना उसका नाश सभव नही और जब तक इस का नाश नहीं होगा तब तक हम एक दूसरे के हिंसक हाथों शिकार होते रहेंगे, अस्तु। मैं प्रस्तुत विषय से दूर जा रहा हूँ। हाँ तो सघ में अनुशासन तो रखना होता ही है। इस के लिए जिन हथियारों का प्रयोग होता है – वे हैं – प्रेम, करुणा, श्रद्धा। ये हथियार श्री तुलसी को प्राप्त थे ही। ऐसे हथियार चाहे जितने हाथों में चले जाँय, इन से किसी को नुकसान पहुँचने या पहुँचाने का सवाल ही नहीं उठता। इन हथियारों के प्रचार और प्रसार में सुख है, शाति है, आनंद है। सुख उसी को कहते हैं जो बाटने से बढता है। इन्हीं हथियारों के बल पर श्री तुलसी ने विद्यार्थियों के हृदय को जीत लिया था।

आप स्वय विद्यार्थी होते हुए भी दूसरों के लिए समय देने में आगे रहते थे। विद्यार्थी साधुओं को कार्य कुशल बनाना, उनके आचार-विचार पर ध्यान देना, रहन-सहन और खान-पान पर निगाह रखना, उन लोगों की सार समाल करना, उन लोगों के निजी कामों पर ध्यान देना, अनुशासन सिखाना आदि की योग्यता उन में

थी। सचमुच वे ऐसे शिक्षक थे जिन के लिए " आचार्य देवो भ
कहा गया है। उनके सपर्क में आनेवालों का काफ़ी विकास हु
छोटे मास्टर जी का कहना सभी मानते थे। यह सब जानकर
को आश्चर्य होता है कि एक छोटा-सा बालक किस प्रकार अनुश
कायम रख सका। लेकिन मुश्किल तो है अपने पर शासन क
आत्म तत्त्व को पकड़ना। जो आपने पर शासन कर सक
आत्म तत्त्व को जान सकता है, वह ख़ुद किसी की पकड़ में
आता, बल्कि सब उसकी पकड में आ जाते हैं। श्री तुलसी
आप पर शासन करने में पहले ही सफल हो गये थे।

जो भी हो, बच्चो! थोड़े समय में ही उनके प्रभाव
की परिधि विस्तृत होती गयी। १६ विद्यार्थी छोटे मास
से पढ़ने लगे। उस समय के विद्यार्थियों में मुनि श्री नथमल जी
थे। वे लिखते हैं —" आचार्य श्री तुलसी उस समय पढ़ा
अधिक समय देते थे। पढ़ने को समय कम मिलता था"। मुनि
चंपालाल जी कहते हैं — " अपने अध्ययन के लिए भी
निकालना चाहिए। तब श्री तुलसी कहते—ये सब कोई दूसरे
ही हैं।" ऐसा लगता है जैसे श्री तुलसी को अद्वैत का भा
गया हो, प्राणी मात्र को मित्रवत् देखने का मत्र आचरण
गया हो। जो भी हो, लेकिन इस त्याग ने उन्हें सब कुछ प्राप्त
दिया। पुराण में एक कहानी है —

नहीं चाहनेवाले की, लक्ष्मी दासी :

लक्ष्मी देवी का स्वयंवर था। वह वरमाला लेकर मंडप में आयी। दूर-दूर से राजा लोग सज-धज कर मंडप में विराजमान थे। हर एक को लक्ष्मी की चाह थी। सब उसे पाने को उत्सुक थे। लक्ष्मीदेवी यह सब देखकर बोली—"मैं उसी को अपना पति चुनूंगी जिसे मेरी चाह नहीं हो।" इस अटपटी घोषणा ने सब की उम्मीदों पर पानी फेर दिया। धीरे-धीरे वे सब लोग चले गये।

तब लक्ष्मी मनचाहे पति को खोजने निकली और उसकी इच्छा पूरी हुई। ऐसा कौन था जिसे लक्ष्मी जैसी गुणवती स्त्री की चाह नहीं थी? वह थे विष्णु। वे शेषनाग पर क्षीरसागर में सोये हुए थे। लक्ष्मी वहाँ पहुँची, पैरों के पास बैठ गयी। परंतु विष्णु ने ध्यान भी नहीं दिया। आखिर लक्ष्मीदेवी ने उनके गले में माला डाल दी। इसलिए कहावत है—"जो नहीं चाहते, रमा होती उसकी दासी।" इच्छाओं पर विजय पानेवालों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं।

प्रारंभ में विद्यार्थियों को नियंत्रण स्वीकार नहीं होता। गुणों का असर तो धीरे-धीरे होता है। इस विषय में श्री बुद्धमल जी ने एक घटना सुनाई थी —

एक दिन मुनि श्री बुद्धमल जी नथमल जी के साथ गुरुदेव के पास जाकर बोले—"श्री तुलसी राम हम पर बहुत कड़ाई करते

था। सचमुच वे ऐसे शिक्षक थे जिन के लिए "आचार्य देवो भव" कहा गया है। उनके सपर्क में आनेवालों का काफ़ी विकास हुआ। छोटे मास्टर जी का कहना सभी मानते थे। यह सब जानकर लोगों को आश्चर्य होता है कि एक छोटा-सा बालक किस प्रकार अनुशासन कायम रख सका। लेकिन मुश्किल तो है अपने पर शासन करना; आत्म तत्त्व को पकड़ना। जो आपने पर शासन कर सकता है, आत्म तत्त्व को जान सकता है, वह खुद किसी की पकड़ में नहीं आता, बल्कि सब उसकी पकड़ में आ जाते हैं। श्री तुल्सी अपने आप पर शासन करने में पहले ही सफल हो गये थे।

जो भी हो, बच्चो! थोड़े समय में ही उनके प्रभाव-क्षेत्र की परिधि विस्तृत होती गयी। १६ विद्यार्थी छोटे मास्टर जी से पढ़ने लगे। उस समय के विद्यार्थियों में मुनि श्री नथमल जी भी थे। वे लिखते हैं —"आचार्य श्री तुल्सी उस समय पढ़ाने में अधिक समय देते थे। पढ़ने को समय कम मिलता था"। मुनि श्री चपालाल जी कहते हैं — "अपने अध्ययन के लिए भी समय निकालना चाहिए। तब श्री तुल्सी कहते—ये सब कोई दूसरे थोड़े ही हैं।" ऐसा लगता है जैसे श्री तुल्सी को अद्वैत का भास हो गया हो, प्राणी मात्र को मित्रवत् देखने का मंत्र आचरण में आ गया हो। जो भी हो, लेकिन इस त्याग ने उन्हें सब कुछ प्राप्त करा दिया। पुराण में एक कहानी है —

नहीं चाहनेवाले की, लक्ष्मी दासी :

लक्ष्मी देवी का स्वयंवर था। वह वरमाला लेकर मंडप मे आयी। दूर - दूर से राजा लोग सज - धज कर मंडप में विराजमान थे। हर एक को लक्ष्मी की चाह थी। सब उसे पाने को उत्सुक थे। लक्ष्मीदेवी यह सब देखकर बोली—"मैं उसी को अपना पति चुनूगी जिसे मेरी चाह नहीं हो।" इस अटपटी घोषणा ने सब की उम्मीदों पर पानी फेर दिया। धीरे - धीरे वे सब लोग चले गये।

तब लक्ष्मी मनचाहे पति को खोजने निकली और उसकी इच्छा पूरी हुई। ऐसा कौन था जिसे लक्ष्मी जैसी गुणवती स्त्री की चाह नहीं थी? वह थे विष्णु। वे शेषनाग पर क्षीरसागर में सोये हुए थे। लक्ष्मी वहाँ पहुँची, पैरों के पास बैठ गयी। परंतु विष्णु ने ध्यान भी नहीं दिया। आखिर लक्ष्मीदेवी ने उनके गले में माला डाल दी। इसलिए कहावत है—"जो नहीं चाहते, रमा होती उसकी दासी।" इच्छाओं पर विजय पानेवालों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं।

प्रारंभ में विद्यार्थियों को नियंत्रण स्वीकार नहीं होता। गुणों का असर तो धीरे - धीरे होता है। इस विषय में श्री बुद्धमल जी ने एक घटना सुनाई थी —

एक दिन मुनि श्री बुद्धमल जी नथमल जी के साथ गुरुदेव के पास जाकर बोले—"श्री तुलसी राम हम पर बहुत कड़ाई करते

हैं। आपस में बात भी नहीं करने देते।" गुरुदेव ने पूछा-"यह सब तुम्हारी पढ़ाई के लिए करता है या और कोई कारण है?" उन लोगों ने कहा—"करते तो पढ़ाई के लिए ही है।" गुरुदेव के कहा—"तब शिकायत क्यों? इस में वह जैसा चाहेगा वैसा ही करेगा।" फिर गुरुदेव ने उन्हें एक कहानी बतायी। वह यों हैं —

एक राजा का लड़का गुरुकुल में पढ़ाई समाप्त करके आचार्य के साथ वापस जा रहा था। रास्ते में आचार्य ने गेहूँ खरीदा। गठरी राजकुमार के सिर पर रख दी। बहुत दूर जाने के बाद फिर गठरी कहीं छोड़ दी।

दरबार में राजा ने गुरु से पूछा—"राजकुमार का व्यवहार कैसा रहा?"

आचार्य बोले—"बहुत अच्छा, बहुत विनय युक्त!"

राजा ने राकुमार से पूछा—"आचार्य जी का तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार रहा?"

राजकुमार ने कहा—इतने वर्षों तक तो बहुत अच्छा रहा। पर आज का व्यवहार उस से भिन्न था।" उन्होंने गठरी ढोने की बात बतायी।

राजा को भी आश्चर्य हुआ। तब आचार्य ने समझाया, वह भी एक पाठ था। मैं भावी राजा को बतला देना चाहता था कि

गठरी ढोना कितना कष्ट देनेवाला काम है। इससे अपने शासन काल में उन्हें श्रम करनेवालों के प्रति न्याय करने में सुविधा होगी। यह पाठ और पाठों की अपेक्षा भावी राजा के लिए अधिक आवश्यक था।

कालूगणी जी ने समझाया कि "राजा के लडके से गठरी उठवाने में भी अध्यापक को हिचक नहीं होती है। फिर तुम्हारी शिकायत कैसे मानी जाएगी? उसने तो तुम्हें केवल बात करने से ही रोका है। जाओ पढ़ो और वह जैसा कहे वैसा करो।"

इस घटना से विद्यार्थियों के सहज स्वभाव और गुरू के सही मार्गदर्शन का अच्छा आभास मिलता है।

प्यारे बच्चो! गुरूदेव की सीख जितनी लाभदायक उस समय शिकायत करनेवालों के लिए थी उतनी ही लाभदायक आज तुम्हारे लिए भी है। सब तरह के प्रत्यक्ष अनुभव से लाभ उठाते हुए, कष्ट सहकर भी परिश्रम तथा लगन- से अध्ययन करनेवाले ही विद्या हासिल करसकते हैं।

विद्या का स्थान श्री तुलसी राम के लिए सर्वोच्च था। असल में जिस समय जिस काम की जिम्मेदारी उन पर आयी उस समय उसी का स्थान उनके लिए सर्वोच्च रहा। मुनि श्री नथमल जी आगे लिखते हैं, "कभी कभी मधुर स्वरों में श्री तुलसीराम जी हमें समझाते—"अगर तुम ठीक से नहीं पढ़ोगे तो तुम्हारा जीवन बन नहीं

सकता । तुम्हारा यह समय बातों में बिताने का नहीं । आगे चलकर जीवन भर बातें करते रहना । अभी तो पढ़ने में ही तुम्हारी सारी शक्ति लगनी चाहिए । अध्ययन काल की स्वतन्त्रता जीवन भर के लिए कैदखाना साबित होगी।" इतना सब कहने के बाद वे अपनी ओर से कभी दबाव नहीं डालते थे। आखिर में कहते— "कहना मेरा फर्ज है, फिर जैसी तुम्हारी इच्छा____।"

यहाँ हमें कुरान की एक आयत याद आ रही है। अल्लाह ताला मुहम्मद पैगंबर को शिक्षाप्रद बातें बताते थे, फिर उसे जनता को बताने के लिए कहते थे। एक दिन मुहम्मद पैगंबर ने अल्लाह ताला से कहा—"ऐ! परवर्दिगार! आप बार बार पाक पैगाम देते रहे हैं और मैं उसे लोगों तक पहुँचाता रहा हूँ। लेकिन लोग उसके मुताबिक चल नहीं रहे हैं।" तब अल्लाह ताला ने कहा— "अल्य नल हिसाब, अल्य कल बलाग।" (कुरान शरीफ)— अर्थात् "लोग क्या करते हैं, कितना करते है—इसका हिसाब मैं खुद लूँगा, तुम्हें इस में पड़ने की जरूरत नहीं। तुम्हारा फर्ज तो मेरी बात लोगों तक पहुँचाना भर है।"

श्री कृष्ण ने भी अर्जुन को सारी गीता समझा कर यही कहा था—

"इति ते ज्ञानमाख्यात गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥"—गीता अ १८, श्लो ६३

अर्थात्—हे पार्थ। इस प्रकार गूढ़ से गूढ़ ज्ञान मैं ने तुझे बता दिया। इस पर पूर्ण रूप से विचार करके तू जैसा चाहे वैसा कर।

श्री तुलसी की इसी नम्रता के बोझ से शिक्षार्थी दबे रहते थे। वे सब अपने छोटे गुरूजी के उपदेशो को यथा सभव चरितार्थ करने की कोशिश करते।

छोटे गुरूजी का विद्यार्थियो पर जो विश्वास था उसका असर होना स्वाभाविक था। इस की एक सुदर मिसाल है —

स्वामी रामतीर्थ अमरीका की यात्रा पर गये। उस समय केवल समुद्री रास्ते से जहाज द्वारा अमरीका जाना होता था। कुछ दिनों के बाद जहाज अमरीका के नजदीक पहुँचा। किनारा नजदीक आ गया। सब लोग अपना अपना सामान समेटने लगे। जहाज में हलचल मच गयी। हर कोई सब से पहले उतरने को आतुर था। लेकिन स्वामीजी शात बैठे थे। यह देखकर एक अमरीकन बहन ने पूछा—"क्या यहाँ आपके कोई परिचित नहीं है?"

स्वामीजी ने कहा—"हाँ हैं।"

महिला ने पूछा—"कौन?"

स्वामीजी ने कहा—"आप ही।"

"आप ही" शब्द में इतना विश्वास भरा था कि वह शब्द उस बहन पर जादू कर गया। आखिर वह स्वामीजी को अपने घर

ले गयी। अमरीका यात्रा में उस बहन ने स्वामीजी की काफ़ी मदद की।

ऐसे सात्विक गुणों का जो प्रभाव होता है — उसका अंदाज़ हम नहीं कर सकते। एक भी गुण हमारे लिए तारनहार साबित हो सकता है। फिर जिसने अपने अंदर इन गुणों का भंडार इकट्ठा कर रखा हो — उसके विषय में कितना ही कहा जाय, कितना ही लिखा जाय — वह समुद्र में बूँद बराबर भी नहीं होगा।

मुनि श्री नथमल जी लिखते हैं—"हम ने नाम माला कंठ करना शुरू किया। बड़ी मुश्किल से दो श्लोक कंठ कर पाते थे। नीरस पदों में जी नहीं लगता था। हमारा उत्साह बढ़ाने के लिए आपने (श्री तुलसीने) हमारे साथ श्लोक रटना शुरू कर दिया साथ ही उसका अर्थ भी समझाते जाते। थोड़े ही दिनों में हम लोग छत्तीस छत्तीस श्लोक कंठस्थ करने लग गये। और क्या, बात-बात में आप स्वयं हमारी कठिनाइयों और सुविधाओं का ख्याल रखते।"

प्यारे बच्चो! आज तो लोग खुद काम नहीं करते हैं, न करना चाहते हैं। बल्कि इसे प्रतिष्ठा के खिलाफ़ समझते हैं। इसीलिए तो आज समाज नेता विहीन हो गया है और होता जा रहा है। नेता को अपने काम से समाज के सामने मिसाल कायम करनी होती है। विद्यार्थियों को सिखाने के लिए शिक्षक को विद्यार्थी बनना आवश्यक है। आचार्य विनोबा जी विद्यार्थियों को सिखाने में

एक रस हो जाते थे। आज भी उनकी सिखाने की कला वैसी ही है। इसी कारण वल्लभस्वामी तथा महादेवी ताई जैसी अनेक प्रतिभायें समाज को मिली। अनगिनत ऐसे लोग सर्वोदय परिवार में आज भी मिलेंगे, जिन्हें विनोबाजी से सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आचार्य श्री तुलसी से शिक्षा - प्राप्त विद्वानों में मुनि श्री नथमल जी, बुद्धमल जी आदि कई उच्चकोटि के विद्वान् हैं जिन से सत् साहित्य की श्री-वृद्धि हो रही है। शिक्षक या नेता पहले स्वयं आचरण में उन गुणों को ढाल लेता है, जिन्हें वह दूसरों को बताना चाहता है, तब उसके आचरण से ही समाज को प्रेरणा मिलती है। लोग स्वयं उसको नेता मान लेते हैं। उस के लिए तीन - पाँच के बहुमत की आवश्यकता नहीं होती है। पाँचों (सब के सब) उसका सम्मान करते हैं। महाभारत में एक घटना यों वर्णित है :—

महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ कर रहे थे। श्री कृष्ण ने अपने लिए कोई काम माँगा। युधिष्ठिर ने कहा—“आप के लिए कोई काम नहीं है।” श्री कृष्ण बोले—“मैं बेकार नही रह सकता।” युधिष्ठिर ने कहा—“तब फिर आप खुद कोई काम खोज लीजिये।”

श्री कृष्ण ने देखा कि सभी कामों की जिम्मेदारी किसी न किसी को सौंपी गयी है। फिर भी अपने लिए एक काम उन्होंने

खोज निकाला। जानते हो बच्चो! वह काम क्या था? काम था जूठी पत्तलें उठाना और उस जगह को साफ करना। छोटे कहे जानेवाले इस काम को श्रद्धा से करनेवाला कृष्ण ही उस सभा में अग्रपूजा के योग्य माने गये।

शुरू से ही ऐसे गुणों को आत्मसात् करके आचरण में दिखा कर आचार्य तुलसी आज जन जन के नेता बन गये हैं।

प्यारे बच्चो! अध्यापन के कारण श्री तुलसी के अध्ययन में समय की कमी हो जाती थी। इसका ऊपर जिक्र हो चुका है। व तो त्यागी थे। दूसरों के लिए त्याग करने में उन्हें आनंद आता था। दूसरों पर प्रेम करना ही उनका धर्म था। उस समय जो विद्यार्थी उन से सीखते थे वे आज भी उस अद्भुत प्रेम का यशोगान करते हैं जो उस समय छोटे गुरु जी की ओर से मिलता था।

प्रेम ही पूजा

एक साधु की आत्मा, मरने के बाद, स्वर्ग पहुँची। चित्रगुप्त महाराज ने साधु का पुण्य देखने के लिए बही निकाली। साधु बोला—"महाराज पुण्य ही देखना हो तो मेरी वृद्धावस्था का हिसाब निकालिए।"

चित्रगुप्त महाराज ने आरंभ के पन्ने देखना छोड़ कर अंतिम भाग का एक एक अक्षर देखा। परंतु उन्हें पुण्य के नाम की एक भी

पंक्ति नहीं मिली। साधु चकित रह गये। अपने आप कहने लगे — यह क्या हो गया? और सोचा कि चित्रगुप्त के हिसाब लिखने में अवश्य भूल हो गयी है। तब बोले—महाराज! यह कैसा गड़बड़ घोटाला है?

यह सुनकर महाराज चित्रगुप्त चुप रहे, उन्होंने साधु को कोई उत्तर नहीं दिया। आराम से वही के पन्ने उलटते गये। उन्होंने आश्चर्य से देखा—यौवनावस्था में उनके पुण्यों की भरमार थी। यह देखकर साधु ने कहा—"महाराज! आपका हिसाब गलत है। यौवनावस्था में तो मैं प्रेम में लिप्त रहा। एक दिन भी पूजा-पाठ नहीं किया। किसी तीर्थ के दर्शन नहीं किये। जप-तप की तो बात भी रुचती नहीं थी। दान-पुण्य तो किया ही नहीं।"

साधु की ये बातें सुनकर चित्रगुप्त महाराज ने कहा—"साधु महाराज! जिसे आप प्रेम कहते हैं, उसी को तो हम पूजा कहते हैं। बाकी सब तो बहुधा अहंकार बढ़ाने के साधन हैं।"

प्यारे बच्चो! क्या इस से यह मालूम नहीं होता कि प्रेमपूर्ण व्यवहार दुनियाँ में कितना प्रभावशाली होता है।

विद्यार्थियों के साथ बाल मुनि तुलसी का यही प्रेमपूर्ण व्यवहार उनकी पूजा थी।

रात दिन में २४ घंटे से अधिक समय हो नहीं सकता। २४ घंटे से अधिक समय बढ़ाना हमारी ताकत के बाहर की बात है। लेकिन काम में कुछ हेर फेर करके अधिक से अधिक समय का उपयोग किया जा सकता है। गुरुदेव ने अनुभव किया कि तुलसी अपने अमूल्य समय का त्याग कर रहा है। गुरुदेव तुलसी को बहुत चाहते थे। अत उन्होंने युक्ति निकाली। सामुदायिक कार्य विभाग से श्री तुलसी को मुक्त कर दिया। यह काम बारी बारी से सभी साधुओं को अनिवार्य रूप से करना पड़ता था। आचार्य श्री कालूगणी जी वृद्ध हो गये थे। उनकी अंतिम पदयात्रा चालू थी। अवस्था के हिसाब से यात्रा में अधिक समय लग जाता था। सब को गुरुदेव के साथ धीरे - धीरे चलना होता था। श्री तुलसी भी साथ थे। एक दिन गुरुदेव ने कहा— "तुलसी! तू आगे चला जा। वहाँ पहले पहुँच कर अध्ययन करना।" श्री तुलसी गुरुदेव से एक क्षण भी अलग होना नहीं चाहते थे। अध्ययन की भूख तो उनमें बड़ी प्रबल थी। परंतु साथियों को पढ़ाकर वे खुश थे। गुरुदेव ने समझाया—"आगे जाकर जो सेवा करेगा, वह मेरी ही सेवा होगी।" फिर तो गुरू की आज्ञा मानकर उन्हें आगे जाना ही पड़ा। इन सब घटनाओं से आचार्य श्री तुलसी के उस समय के, हृदय का पता चलता है। वे अपने साथियों को अपने से भी अधिक चाहते थे। यहाँ

मुझे स्वामी रामानुज की एक कहानी याद आती है। कहानी यों है :—

दूसरों के लिए नरक मंजूर :

स्वामी रामानुज को गुरू ने एक मत्र बताया। गुरू की आज्ञा थी कि इसका एकात में जप करना। और यह भी कहा कि किसी को बताना नहीं, इस मत्र के जप से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

स्वामी रामानुज ने कुछ दिनों तक गुरू की आज्ञा का पालन किया। फिर उन्हें अकेले अकेले इस मंत्र से लाभ उठाना अच्छा नहीं लगा। वे सोचने लगे—"मुक्ति का साधन हाथ लगा है, उससे हमारे पास-पड़ोस के लोग वचित रहें—यह उचित नहीं।" एक तरफ गुरू की आज्ञा के उलघन का दोप लगने का भय, और दूसरी तरफ ऐसे महामत्र से लोगों को वचित करने का दुःख। क्या करें? —सोच-सोचकर आखिर निर्णय किया—"चाहे जो हो, यह मंत्र लोगों को बता ही देंगे।" और उन्होंने यह मत्र लोगों को बता दिया।

गुरू को इस बात का पता लगा तो वे बहुत क्रोधित हुए। रामानुज को बुलाया। बोले—"तुमने गुरू की आज्ञा का उलघन किया है। अब तुम्हारे लिए नरक ही एक मात्र गति है।"

रामानुज ने नम्रतापूर्वक पूछा—"गुरूदेव! आपका कहना

ठीक है। परंतु जिन्होंने मेरे कहने से मंत्र का जप किया, उनका क्या होगा? क्या वे लोग भी नरक जायेंगे?"

गुरुदेव ने कहा—"नहीं, उनका उद्धार होगा। वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।"

रामानुज ने उत्तर दिया—"गुरुदेव! अपने स्वजनों के उद्धार के निमित्त मैं नरक जाना पसन्द करूँगा।" — इस जवाब से गुरुदेव बहुत खुश हुए। रामानुज के सारे दोष माफ कर दिये और उन्हें आशीर्वाद दिया।

मुनि श्री तुलसी ने जब अपने साथियों के लिए अपने अध्ययन तक का त्याग किया तब गुरुदेव ने युक्ति से उन्हें अध्ययन की सुविधा करा दी। सच्चे त्यागी के लिए स्वयं ईश्वर भी अनुकूल हो जाता है।

गुरु - शिष्य का निर्माता :

प्यारे बच्चो! इस बात का जिक्र बारबार आ चुका है कि तुलसी पर गुरुदेव की विशेष दृष्टि थी। संघ के कठोर नियमों और उत्तरदायित्वों को देखते हुए यह आवश्यक भी था। असम के लोगों का प्रिय ग्रंथ "नामघोषा सार" — (ले॰ माधवदेव, भाषा असमिया) — में एक पद है जिस में योग्य शिष्य की आवश्यकता पर बल दिया है। वह यों है —

" जेवे शिष्य सवे महा शुध भावे, उपदेश आचरय ।
शास्त्र गुरू अपुनाको सिटो शिष्ये, तिन को रक्षा करय ॥ "

अर्थात्—जो शिष्य पूर्णरूप से, शुद्ध भाव से गुरू के उपदेश पर चलता है, वह शास्त्र, गुरू और खुद अपनी भी रक्षा करता है। इन ग्रथ - वचनों को छोड वैज्ञानिक ढग से ही सोचें तब भी लगता है कि यह शिष्य की योग्यता के विकास की प्रक्रिया है। अयोग्य शिष्य के कारण सघ या सस्था पतन की ओर बढ़ती है। इसलिए योग्य शिष्य के निर्माण में गुरू की पूरी शक्ति लगनी ही चाहिए। जीवन भर में गुरू और कुछ न करके केवल एक योग्य शिष्य का निर्माण कर दें तो भी वे सफल हैं। इसके बदले दुनियाँ भर की उखाड - पछाड में जीवन खपा दें और योग्य शिष्य का निर्माण नहीं कर सकें तो गुरू की सब उखाड - पछाड, बुझने से पहले के दीपक की लौ सिद्ध होगी। श्री रामकृष्ण परमहंस ने समाज को नरेन्द्र (विवेकानद) जैसा योग्य व्यक्ति दिया। गाँधी ने तो विनोबा, राजेन्द्र प्रसाद और नेहरू आदि कई योग्य व्यक्ति, समाज को दिये। आचार्य श्री कालूगणी जी ने आचार्य श्री तुलसी जैसा व्यक्ति तैयार करके समाज को सौंप दिया। ऐसे संतों के उपकार से ही समाज में व्यवस्था, सस्कृति और शाति कायम है। समाज उन का सदैव ऋणी रहेगा।

श्री कालूगणी जी ने श्री तुलसी के निर्माण में काफ़ी परिश्रम

किया है। परन्तु श्रीतुलसी ने भी अपने परिश्रम से गुरुदेव की सारी कामना को पूरा करके दिखा दिया।

श्री कालूगणी जी के जीवन के अंतिम तीन वर्षों को महत्व पूर्ण स्थान प्राप्त है। इन वर्षों में मारवाड, मेवाड और मालवा की यात्राएँ हुई। इससे पहले वे मरुस्थली में ही (उस समय के बीकानेर राज्य में) विहार करते रहे। वृद्धावस्था में यह यात्रा क्यों शुरू की? ऐसा लगता है कि श्री तुलसी की प्रतिभा का और उनके परिचय का विस्तार हो – इसीलिए ये यात्राएँ शुरू हुई। इस यात्रा में मुनि श्री तुलसी जन-जन के तुलसीदास हो गये।

संघ के आंतरिक कामों में श्री गुरुदेव श्री तुलसी का उपयोग करने लगे। अब तक मुनि श्री तुलसी का अध्ययन काफी हो चुका था। व्याख्यान में निर्भय और निपुण होने का पाठ सामने था। दो-पहर के व्याख्यान की जिम्मेदारी इन पर डाल दी गयी। इनका कंठ स्वर बहुत मधुर था। इनके व्याख्यान से लोग बड़े प्रभावित होते थे। ये बहुत अच्छा गाते भी थे। इन से पद्य—गान सुनकर लोग मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। कई बार गुरुदेव इन से पद्य गान कराते थे। गुरुदेव खुद उसकी व्याख्या करके समझाया करते थे। कभी कभी मुनि श्री नथमल जी एवं मुनि श्री बुद्धमल जी गाते और श्री तुलसी उसकी व्याख्या करते थे। गुरुदेव भी पास ही रहते। कहते हैं – इनका गला बहुत सुरीला था। अवस्था के साथ साथ

इन्होंने खुद अभ्यास से इसे मोटा बनाया था। आचार्य तुलसी स्वयं कहते हैं – ऐसा किये बिना स्वरों का माधुर्य कायम नहीं रहता है।" मैं स्वर का ज्ञान नहीं रखता हूँ। लेकिन तेरा-पंत के आचार्य का स्वर मोटा और ज़ोरदार होना चाहिए। ऐसा सोचने का एक कारण है। उस समय व्याख्यान में ध्वनि विस्तारक यंत्र का उपयोग वर्जित था। अगर आचार्य की आवाज जोरदार नहीं हो, तो श्रोताओं को पूरा लाभ नहीं मिल सकता था।

जो भी हो बच्चो, गुरूदेव ने श्री तुलसी के विकास के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया। ये भी अपने गुणों और परिश्रम के बल पर सफलता हासिल करते चले गये।

गुरु - शिष्य सांकेतिक – संवाद :

गुरूदेव का विहार मारवाड़ के गाँवों में चल रहा था। नियमानुसार प्रतिक्रमण के बाद ये गुरू के पास वंदना के लिए गये। गुरूदेव ने उन्हें पास बुलाया। एक सोराठा सुनाकर गुरूदेव ने उन्हें दूसरे लोगों को सिखाने की आज्ञा दी। सोरठा इस प्रकार है —

"सीखो विद्यासार, पर होकर परमादनै।
बधसी बहु विस्तार, धार सीख धीरज मनैं॥"

अर्थात् — "विद्या सीखने में आलस्य नहीं करना चाहिए। जो कुछ सीखो उसे धैर्य से धारण करो। तभी विद्या का विकास होगा।" श्री तुलसी ने यह सोरठा सब को सिखा दिया।

दूसरे दिन नियमानुसार ये मुनि श्री मगनलाल जी की वंदना करने गये। मुनि श्री ने पूछा—"कल आचार्य जी ने एक सोरठा कहा था। क्या तुमने उसके जवाब में कुछ निवेदन नहीं किया?"

श्री तुलसी ने कहा—"किया तो नहीं।"

मुनि श्री मगनलाल जी ने कहा—"आगे कर देना।"

गुरुदेव के पास दूसरे दिन श्री तुलसी ने एक सोरठा निवेदन किया। वह इस प्रकार है —

"महर राखो महाराय, लख चाकर पद कमलनों।
सीख आपो सुखदाय, जिम जल्दी शिव-गति लहूँ॥"

अर्थात् — हे महाराज! आप मुझे अपने चरण कमल का दास समझकर मुझपर अपनी कृपा रखें। आप मुझे सुख देनेवाली शिक्षा दें – ऐसी शिक्षा जिस से शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर सकूँ।"

इस प्रसंग पर नचिकेता की कथा याद आती है। बालक नचिकेता बहुत छोटी आयु में यमराज के पास स्वयं पहुँच गया। बालक नचिकेता की अंतश्चेतना जागृत थी। उसके पिता ने यज्ञ में दान देने को बहुत सी बूढ़ी गायें भी मगवायी थीं। नचिकेता का कहना था कि अनुपयोगी वस्तु का दान करना धर्म विरुद्ध है। पिता का कहना था कि सर्वस्व दान में इनका भी दान करना है। आदि आदि___

नचिकेता को ऐसी थोथी दलीलों से समाधान नहीं हुआ। उसने कहा — " मैं आप का प्यारा पुत्र हूँ। क्यों नहीं मुझे दान कर देते।"—वह कई बार इसी बात को दुहराता रहा। पिता को क्रोध आगया। उसने कहा—" तुझे यम को दान देता हूँ।" नम्रतापूर्वक पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके नचिकेता यमराज के पास पहुँच गया। अपनी बुद्धि-शक्ति और सत्य निष्ठा से उसने यमराज को खुश कर लिया।

यमराज ने इच्छित वरदान माँगने को कहा। स्वर्ग सुख तक देने का प्रलोभन दिया। लेकिन नचिकेता मोक्ष का साधन " ब्रह्म-विद्या " का रहस्य जाने बिना वहाँ से नहीं लौटा।"

सच्चा साधक मोक्ष के बिना और किसी चीज़ से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। लक्ष्य के प्रति निष्ठा और दृढ़ संकल्प के साथ नम्रता आ जाय तो मार्ग सुगम हो जाता है।

बालक मुनि तुलसी गुरू की कृपा तो चाहते हैं, परंतु भौतिक सुख के लिए नहीं। स्वर्ग-सुख की बात ही क्या ? वह तो मोक्ष का रहस्य जानने के लिए गुरू की कृपा के आकांक्षी हैं।

एक बार स्वयं ही हमारा यह मस्तक उनके पावन विचारों के आगे झुक रहा है। धन्य आचार्य तुलसी ! बलिहारी है तुम्हारी बाल-जिज्ञासा को।

*

दूसरे दिन नियमानुसार ये मुनि श्री मगनलाल जी की वंदना करने गये। मुनि श्री ने पूछा—"कल आचार्य जी ने एक सोरठा कहा था। क्या तुमने उसके जवाब में कुछ निवेदन नहीं किया?"

श्री तुलसी ने कहा—"किया तो नहीं।"

मुनि श्री मगनलाल जी ने कहा—"आगे कर देना।"

गुरुदेव के पास दूसरे दिन श्री तुलसी ने एक सोरठा निवेदन किया। वह इस प्रकार है —

"महर राखो महाराय, लख चाकर पद कमलनों।
सीख आपो सुखदाय, जिम जल्दी शिव-गति लहूँ॥"

अर्थात् — हे महाराज! आप मुझे अपने चरण कमल का दास समझकर मुझपर अपनी कृपा रखें। आप मुझे सुख देनेवाली शिक्षा दें – ऐसी शिक्षा जिस से शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर सकूँ।"

इस प्रसंग पर नचिकेता की कथा याद आती है। बालक नचिकेता बहुत छोटी आयु में यमराज के पास स्वयं पहुँच गया। बालक नचिकेता की अंतश्चेतना जागृत थी। उसके पिता ने यज्ञ में दान देने को बहुत सी बूढ़ी गायें भी मंगवायी थीं। नचिकेता का कहना था कि अनुपयोगी वस्तु का दान करना धर्म विरुद्ध है। पिता का कहना था कि सर्वस्व दान में इनका भी दान करना है। आदि आदि

हाँ तो बच्चों! ऊपर उस सोरठे का जिक्र किया था जिसे मुनि श्री मगनलाल जी के कहने पर तुलसी ने गुरू श्री कालूगणी जी के सामने निवेदन किया। गुरूदेव ने तुलसी को बुलाकर एक सोरठा सुनाकर लोगों को सिखाने का आदेश दिया था जिसे तुम पढ़ ही चुके हो। गुरूदेव का सोरठा शिष्यों के लिए उपदेश है तो शिष्य का सोरठा शिक्षा के आदर्श का निर्देशक है। दोनों को साथ मिलाकर देखने से यह गुरू शिष्य के सवाद का रूप धारण कर लेता है। गुरू का सदुपदेश और शिष्य की आकांक्षा – दोनों को मिलाकर देखने से अर्थ गंभीर हो जाता है और ऐसा लगता है कि जैसे वह भविष्य के लिए कोई खास संकेत हो।

पुराने ज़माने में गुरू इसी प्रकार की सांकेतिक भाषा का व्यवहार करते थे। सारे पुराण आगम आदि ग्रन्थों की रचना सूत्रों में ही हुई हैं। अर्थात् बहुत सारी बातें थोड़े-से शब्दों में कही गयी हैं। बाद में लोगों ने अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उसका भाष्य किया है। इसलिए कहीं कहीं अर्थ का अनर्थ हो गया है। इस का एक आध मिसाल देना आवश्यक है —

गाँधीजी ने कभी प्रसंगवश कहा था—"मैं कायरता बिल्कुल नहीं पसंद करता हूँ। कायरों के मन में हिंसा तो है ही। हिंसा करेगा तो कायरता तो निकलेगी।" कहने का मतलब था कि जिस हिंसा को मैं अत्यंत हीन मानता हूँ, कायरता उससे भी हीनतर है।

परंतु आज गाँधी जी के उस वाक्य का उपयोग हिंसा में विश्वास रखनेवाले लोग कर रहे हैं। पुराणों में एक संवाद आया है। वह यों है :—

"एक बार देवता, मनुष्य और राक्षस – तीनों अपने पिता प्रजापति के पास गये। तीनों पिता को गुरू मानकर शिक्षा प्राप्त करने लगे। अध्ययन समाप्त हुआ। तीनों गुरू के पास पहुँचे। किसी खास मंत्र की माँग की। प्रजापति ने सब के लिए एक ही मंत्र दिया। वह था "द"।

फिर उन्होंने तीनों को अलग-अलग बुलाया और मत्र का अर्थ पूछा :—

देवता बोले—"द" याने "दमन" करो, यही आपने कहा है।"

मनुष्य बोले—"द" याने "दान" करो, ऐसा आपका कहना है।"

राक्षस बोले—"द" याने "दया" करने का उपदेश दिया है।"

प्रजापति ने कहा—"तुम लोग ठीक समझ गये। अब जा सकते हो।"

वास्तव में देवता कामी होते हैं। इसलिए अपनी कमजोरी

मिटने के लिए " द " का अर्थ " दमन " लगाया। मनुष्य का लोभ सर्व विदित है। इसलिए उसने " द " का अर्थ " दान " लगाया। राक्षस हिंसक होते हैं। इसलिए उन्होंने " द " का अर्थ " दया " लगाया।

इस तरह के सूत्रों का अर्थ बहुत गंभीर होता है। इसे समझने के लिए गहरा अध्ययन तो चाहिए ही, योग्य गुरू का मिलना भी अनिवार्य है। योग्य गुरू युक्ति से कठिन विषय को भी सरल ढंग से समझा देते हैं। उपनिषद में एक दृष्टांत है।

" गुरू ने शिष्य से बरगद का एक फल मंगवाया। गुरू की आज्ञा से शिष्य एक फल तोड़ लाया। गुरू ने उसे चुटकी से तोड़ दिया। उसका सब कुछ नष्ट हो गया, कुछ भी बाकी न रहा। तब गुरू ने शिष्य को समझाया—" देखो यह अंतिम वस्तु जो दिखाई नहीं देती है, वही असली शक्ति है। उसी में विराट बरगद का वृक्ष छिपा है।"

संतों के सूत्रों में इसी प्रकार अदृश्य विराट अर्थ छिपा रहता है।

प्रकृति का चक्र :

एक तरफ़ मुनि श्री तुलसी की योग्यता बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर गुरूदेव का शरीर थकता जा रहा था। प्रकृति का चक्र इसी तरह घूमता रहता है। आम ज्यों-ज्यों पकता है ऊपरी भाग ढीला होता जाता है। क्योंकि भीतर का बीज सख्त होता जाता है। गुठली तैयार होने के बाद आम अधिक समय तक नहीं टिकता। बीज में वृक्ष बनाने की शक्ति पैदा होते ही बाकी भाग को प्रकृति आत्मसात् कर लेती है।

गुरूदेव ने मुनि श्री को एकात'में बुलाना प्रारंभ कर दिया। सघ के अनेक गूढ़ रहस्यों की जानकारी कराने लगे। कुछ कह कर, कुछ लिख कर। इस तरह भावी आचार्य को सब तरह से तैयार किया गया। अब तो आम लोग भी समझने लगे थे कि भावी आचार्य कौन होने वाले हैं। लोग खुश थे। गुण की कद्र तो होती ही है। उम्र उस में बाधक नहीं होती है। (श्रीराम को गद्दी मिलने की बात से सब लोग खुश थे।) गुरूदेव भी अपने व्याख्यान में कहते :—"कभी कभी आचार्य उम्र में छोटे होते हैं, कभी कभी बडे भी। सघ के सदस्यों को सघ के अनुशासन का पालन करना चाहिए। उम्र कुछ भी हो, योग्यता देखनी चाहिए। फिर एक बात ध्यान में रहे कि गुरू जो कुछ भी करते हैं, उसे सघ के हित को ध्यान में रखकर ही करते हैं।"—गुरूदेव की ये बातें भावी

आचार्य की ओर इशारा तो कर देती, परंतु, कभी भी गुरुदेव ने अपने उत्तराधिकारी के नाम का जिक्र नहीं किया। लेकिन लोग गुरुदेव के व्यवहार और श्री तुलसी के आचार से सब कुछ समझ रहे थे।

गुरुदेव का अंतिम समय

प्यारे बच्चो! अब तुम्हें यह बताने जा रहा हूँ कि श्री तुलसी को आचार्य पद मिला। लेकिन उससे पहले आचार्य श्री कालूगणी जी के अंतिम दिनों की कुछ चर्चा करना उचित समझता हूँ।

वि० सं० १९९३, ग्रीष्म काल। विहार करते हुए गुरुदेव मेवाड़ पहुँचे। वहाँ से चित्तौड़। वहीं उनकी तर्जनी उंगली में छोटा-सा घाव हुआ। इस छोटे से घाव की परवाह किये बिना सब काम पूर्ववत् चलता रहा। आखिर यह घाव बढ़ गया। यही घाव गुरुदेव के लिए प्राण घातक सिद्ध हुआ। रोग चाहे जितना छोटा हो, उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

"रिपु, रुज, पावक, पाप — इनहि गनिय नहीं छोट करि।"

अर्थात्—'शत्रु, रोग, आग और पाप को छोटा नहीं गिनना चाहिए।'—घाव बढ़ रहा था। पाँव भी बढ़ते जा रहे थे। भविष्य की घोषणा दोनों ओर से हो रही थी। अगला चातुर्मास गंगापुर में

करने की स्वीकृति दे दी। रोग ने भी चुपके से कहा —' मृत्यु भी वहीं होगी।

विहार चालू रहा। गाँव आये, निकल गये। शहर पीछे छूटते गये। चित्तौड और हम्मीरगढ़ होते हुए भीलवाडा के रास्ते पर आ गये। वहाँ पहुँचने के लिए दो मील और चलना था – डाक्टरों ने गुरूदेव की परीक्षा की। हालत गंभीर। डाक्टरों की राय तुरन्त आपरेशन करने की रही। आवश्यक साधन भी डाक्टरों के साथ थे। लेकिन सघ की मर्यादा का सवाल। खास निमित्त से लाये गये उपकरणों का निषेध। डाक्टरों और गुरुदेव – दोनों में घंटों बहस चलती रही। आखिर डाक्टरों की सलह से साधु के पास के चाकू से मुनि श्री चौथमल जी ने आपरेशन किया। फिर वही विहार। भीलवाडा में थोडा विश्राम। दूर - दूर के डाक्टरों का सम्मेलन। एक राय से उपचार। परंतु सब बेकार।

घाव की बढ़ती वेदना। नींद हराम। शरीर दुर्बल। फिर भी आगे विहार करने की घोषणा। सुनने वाले ठग रहे। ग्रामीणों का अनुनय, डाक्टरों का अनुरोध, मुनियों की प्रार्थना – सब की राय आगे न जाने की रही। परतु सब बेकार। इस अवस्था में भी भीष्म की तरह निश्चय पर अटल। "प्राण जाहिं पर वचन न जाहीं।"— की रट। विहारचालू ।

तकलीफ़ बढ़ती गयी। रास्ता घटता गया। मृत्यु और

गंगापुर — दोनों का फासला हर क्षण घटता जा रहा था। शरीर बिखर रहा था। आत्मा निकल रही थी। आखिर मंजिल समाप्त हुई। मुकाम आ गया। आषाढ शुक्ल द्वादशी के रोज पहुँच गये गंगापुर। पुरवासियों ने देखा — एक शरीर का थका, वचन का पक्का और आत्मा का धनी आदमी आ गया। गाँववालों की चिर संचित अभिलाषा सफल हुई। दोनों ओर खुशी। गुरुदेव अपने वचन का पालन कर सके। सब बाधाएँ सह लीं। लेकिन गंगापुर पहुँच गये। इस बात से उन्हें अपार हर्ष था।

व्याख्यान आदि का कार्यक्रम चालू रहा। परंतु शरीर कमजोर होता जा रहा था। नयी नयी जिम्मेदारियाँ तुलसी पर डालते जा रहे थे। धीरे धीरे देने लायक सभी जिम्मेदारियाँ श्री तुलसी के जिम्मे कर दी गयीं। लेकिन युवा-आचार्य की विधिवत् नियुक्ति अब भी शेष रही। अच्छा दिन देखा गया। भाद्रपद शुक्ल तृतीया से पहले शुभ दिन नहीं था। प्राण अब शरीर में रहने से इनकार कर रहे थे। कर्तव्य निष्ठा उसे छुट्टी देने को तैयार नहीं थी। आखिर वह शुभ दिन आ गया।

युव-आचार्य की घोषणा

प्यारे बच्चो! गुरुदेव के विषय में प्रसंगवश चंद शब्द लिख दिये। इस से गुरुदेव की साधना, सत्य निष्ठा, सहन शीलता, कर्तव्य-निष्ठा आदि गुणों पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे महान् गुरु के हाथ से

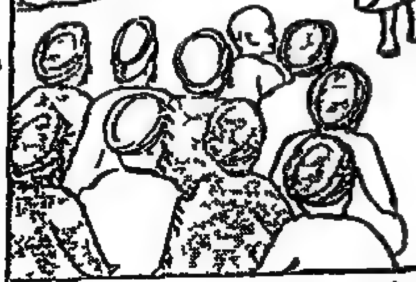
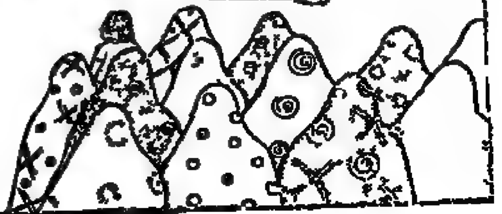
निर्मित आचार्य तुलसी से हमें अपनी आशाओ की पूर्ति की अपेक्षा करना उचित ही तो है।

आज गगापुर में खुशी और गम का दौर चल रहा है। श्री तुलसी आज युवा-आचार्य का पद सभालने वाले हैं। और गुरुदेव अब हमारे बीच से जानेवाले हैं। सचमुच गगापुर में खुशी और गम का एक अजीब मिश्रण था।

प्रातः काल का समय। रगभवन में साधु - साध्वियों के साथ कुछ श्रावक भी बैठे हैं। बाहर जन - समुद्र। गुरुदेव तो कमरे से बाहर भी नहीं आ सकते। उनके स्वास्थ्य को देखते हुए सब को भीतर जाने की छूट नहीं दी जा सकती थी। गुरुदेव हिलने - डुलने से भी लाचार। कर्तव्य की अतिम पुकार हुई। आत्मा ने एक बार (अतिम बार) शरीर को बैठने पर मजबूर किया। हाथ युवा-आचार्य पद का पत्र लिखने को बाध्य हुआ। युवा-आचार्य का पद श्री तुलसी को सौंपते ही गुरुदेव का अतिम कर्तव्य पूरा हुआ। पत्र राजस्थानी भाषा में लिखा गया। उसका हिन्दी रूपातर यों है :—

"गुरु को नमस्कार। प्रथम भिक्षु बाद भारीमल, बाद रामचद्र, बाद जीतमल, बाद मघराज, बाद माणकलाल, बाद डालचंद, बाद कालूराम, बाद तुलसी राम — विनम्र हो कर संघ की आज्ञाओं और मर्यादाओं के अनुसार चलें। सुखी रहें। स० १९९३ भदवा- ---सुदी गुरुवार।"




गुरु की साध पूरी हुई!

प्यारे बच्चो! इस तरह तुम बालक तुलसी को जानते-जानते युवा-आचार्य श्री तुलसी की देहरी पर पहुँच गये हो।

यह सही है कि बालक तुलसी को कई गुण सहज ही प्राप्त थे। पूर्व संस्कार अच्छे थे। लेकिन उन्हें अपने को बनाने में काफ़ी परिश्रम करना पड़ा। श्रद्धा और विश्वास, परिश्रम और लगन, त्याग और प्रेम—ये सब उनके विकास की सीढ़ियाँ बनीं। तुम भी अगर इन गुणों को अपना कर चलो तो बहुत आगे बढ़ सकते हो। ये सारे गुण सब को थोड़े-बहुत परिणाम में प्राप्त हैं ही। उनका विकास करना हमारा काम है। जैसे समान-पूंजी के होते हुए भी एक परिश्रमी व्यापारी अधिक कमाता है और बिना परिश्रम किये दूसरा व्यापारी मूल पूंजी को भी खो देता है। समान खेत में परिश्रमी किसान अधिक अन्न पैदा कर लेता है और आलसी कुछ भी पैदा न कर भूखों मरता है। जैसे एक ही तेल-बाती की कई लालटेनें शीशे की सफाई के अनुपात से प्रकाश देती हैं। इसलिए यह न सोचना कि आचार्य तुलसी कोई अवतारी पुरुष थे। तुम अगर संकल्प और तो उन से भी आगे जा सकते हो। परिश्रम करोयह ठीक है कि इस तरह आगे बहुत दूर तक देख सकोगे। परंतु वहाँ तक पहुँचने के लिए जिन सीढ़ियों पर से होकर जाना पड़ता है उनका भी विचार किया? आचार्य श्री तुलसी में जो सहज गुण बीज रूप में थे उनका विकास

कैसे-कैसे हुआ है—इसका भी ध्यान करो, तो तुम्हें पता लगेगा कि उन्नत बनाने के लिए तुम्हें क्या करना होगा। इसलिए अभी, और इसी समय संकल्प करो तथा लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए कदम उठाओ। प्रभु सहायक साथ है। प्रभु पर श्रद्धा रख कर विश्वास के साथ आगे बढ़ो, लगन के साथ परिश्रम करो, त्याग बुद्धि से लोगों के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करो। ये ही वे सीढ़ियाँ हैं, जिन पर से हो कर उन्नति के शिखर पर पहुँच सकोगे।

युवा आचार्य – श्री तुलसी के चार दिन

प्यारे बच्चो! श्री तुलसी का मुनि जीवन समाप्त हो गया। आचार्य तुलसी के विषय में आगे पढ़ोगे। इस बीच वे चार दिनों तक युवा-आचार्य पद पर रहे जिसका जिक्र यहाँ कर देता हूँ।

गुरूदेव ने पहले ही युवा आचार्य के कर्तव्य और अधिकार साधु साध्वियों को बता दिये थे। बाद में मन्त्री मुनि श्री मगनलाल जी ने व्याख्या कर के संघ को इस विषय में बता दिया कि युवा आचार्य के सब काम आचार्य के अनुसार होते हैं। पद में श्री आचार्य के बाद उन्हीं का स्थान है। स्वयं गुरूदेव ने युवा आचार्य के व्यक्तिगत सेवाकार्यों का भार मुनि श्री दुलीचंद को सौंपा। आज तक वे इसका पालन आनंद पूर्वक कर रहे हैं।

नया अनुभव :

एक नम्रतम व्यक्ति जब युवा-आचार्य बन गये तो बात बदल गयी। अब उनके साथी और उम्र में बडे उनको नमन करने लगे। लोगों में नये युवा-आचार्य के दर्शन की भूख बढ गयी। सकोच के कारण युवा-आचार्य परेशान थे।

अनेकानेक व्याख्यान देने वाले मुनि श्री तुलसी को आज फिर व्याख्यान देना था। परंतु, आज आप स्वयं युवा-आचार्य हैं। नम्रता के कारण आसन ग्रहण करना भी कठिन हो रहा था। भावना का अतिरेक, भविष्य की जिम्मेदारी और जन-समूह का स्नेह — इन सब ने जैसे उनकी ज़बान पर ताला लगा दिया। आँखें भर आयीं, गला रुँध गया। श्रोताओं के हृदय-भर आये। उस अनकहे व्याख्यान का जो असर श्रोताओं पर हुआ उसके मुकाबले में बाद के जीवन भर के सारे व्याख्यान कम पडेंगे। इस अवसर पर इक घटना याद आती है। घटना इस प्रकार है —

एक बार चागदेव ज्ञानदेव को पत्र लिखने बैठे। चागदेव ज्ञानदेव से उम्र में बडे और योगी थे। परतु ज्ञानदेव की भक्ति के कारण चागदेव उन्हें बडा मानते थे। इस बात को चागदेव जानते और मानते ते। जब पत्र लिखने बैठे तो उनके सामने परेशानी उठ खडी हुई कि पत्र को आशीर्वाद से शुरू करें या नमस्कार से। चागदेव बैठे सोचते रहे। कितना ही सोचने पर भी कोई रास्ता नहीं

सूझा। आखिर कुछ लिखे बिना ही उस कोरे कागज़ को ही सीधे ज्ञानदेव के पास भेज दिया। ज्ञानदेव सचमुच महान भक्त थे। उस कोरे कागज को श्रद्धा से देखा और भावना की कीमत समझी। उसके उत्तर में उन्होंने 'चागदेव पापटी' की रचना कर डाली।

वास्तव में भावनाओं को व्यक्त करने के लिए भाषा माध्यम है जरूर, परंतु क्या वह भावनाओं को सही ढंग से व्यक्त कर सकती है? सच्ची भावना तो अव्यक्त रहने पर भी सीधे अदृश्य दिल को छू लेती है। युवा आचार्य की भावनाओं ने भी श्रोताओं के दिल को झकझोर दिया।

गुरुदेव का स्वर्गवास

गुरुदेव की सारी इच्छाएँ पूर्ण हुई। इस शुभ कार्य के बाद केवल चार दिनों तक उनकी शरीर यात्रा चली। शायद, वे अपने अंतिम शुभ काम की प्रतिक्रिया जानना चाहते हों। उसे अनुकूल पाया तो शरीर की आवश्यकता समाप्त हुई। चौथे दिन गुरुदेव ने अमृतपद (स्वर्गवास) प्राप्त किया।

घटना एक – राय दो :

मुनि श्री बुद्धमल जी लिखते हैं—शरीर अस्वस्थ होने के कारण ही युवा-आचार्य का पदवीदान समारोह गंगापुर में हुआ।

गुरूदेव का स्वप्न कुछ और ही था। वे यह कार्यक्रम बिदासर पहुँचकर श्री छोगांजी (गुरुदेव की ससार पक्षीया तपस्विनी माँ) के सामने पूरा करना चाहते थे। काल के सम्मुख किसी का क्या बस चल सकता है?

मेरा मानना है कि अगर इस इच्छा के पीछे गुरूदेव अपने सकल्प को भी जोड देते तो काल की गति भी कुठित हो सकती थी। गुरूदेव के अतिम जीवन पर ध्यान देने से इस बात पर मेरा विश्वास और भी दृढ हो गया है।

अगर युवा-आचार्य का काम अपने हाथों पूरा करने का सकल्प नहीं होता तो शायद गुरूदेव और पहले ही शरीर को छुट्टी दे देते। उस जर्जर शरीर में महीनों तक प्राणो को रहने पर बाध्य किया। इस से और क्या सिद्ध हो सकता है? जो भी हो — यह अपना अपना विश्वास है। दोनों बातें सही हो सकती हैं।

प्यारे बच्चो! अब बिदा। आगे आचार्य तुलसी के बारे में पढ़ोगे।



आज २३ मई है। यह सयोग की बात है कि इस पुस्तक का प्रथम भाग १७ अप्रैल को यानी भूदान-दिवस के दिन समाप्त हुआ था। और यह दूसरा भाग आज यानी ग्राम-दान दिवस पर समाप्त कर रहा हूँ। वैसे आज, १७ अप्रैल को ही श्री आइन्स्टीन तथा

सर्वोदय के कार्यकर्ताओं के परम मित्र बेंगलोर के डा० नटराजन की जयंती है और आज ही बुद्ध पूर्णिमा भी। परंतु इस भूदान और ग्राम-दान का यह संयोग बड़ा अनूठा है।

मगरौठ का जब प्रथम ग्राम-दान हुआ था, भूदान आंदोलन में एक नया ही मोड आ गया था। लोग ग्राम-दान की बात समझने का प्रयास करने लगे थे। धीरे धीरे लोगों का सहयोग मिला। पंडित नेहरू ने शांति निकेतन की आम - सभा में, जब इस का समर्थन किया था और ग्राम-दान में शामिल होने को लोगों का आह्वान किया था तब नेफा और लद्दाख में बारूद की बदबू कायम थी। सब दूर ग्राम-दान हुआ और हो रहा है।

बिहार इस बार भी बाजी मार ले गया। ग्राम-दान के तूफ़ान मे तूफ़ान ही ला दिया। बिहार, ग्राम से प्रखंड और अब जिला दान देकर बिहार-दान का नारा बुलन्द कर रहा है। दरभंगा जिला का दान, जहाँ एक घर भी आदिवासी नहीं है चौवालीस लाख की आबादी यानी देश की आबादी का एक प्रतिशत।

दुनियाँ में हिंसक शक्ति की गति तेज़ है और अहिंसक शक्ति में भी गति आ रही है। लेकिन मेरी गति क्या? क्या मैं भी विकास की ओर बढ़ रहा हूँ? क्या मेरी साधना बढ़ी है? क्या! क्या!!——— !

आचार्य श्री तुलसी

जैसा मैंने समझा

तृतीय चरण

जब आचार्य बने!





विद्यार्थी—अणुव्रत

१ मैं परीक्षा में अवैधानिक उपायों से उत्तीर्ण होने का प्रयत्न नहीं करूँगा।

२ मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड़ फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूँगा।

३ मैं अश्लील शब्दों का प्रयोग नहीं करूँगा व अश्लील साहित्य नहीं पढ़ूँगा।

४ मैं मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।

५ मैं रुपये व अन्य प्रलोभन से मत (वोट) न लूँगा और न दूँगा।

६ मैं व्यवहार में प्रामाणिकता और सत्य की साधना करूँगा।

७ मैं माता पिता व गुरुजनों के प्रति विनम्र रहूँगा।

डायरी के पन्ने

25 मई 1967—आज के ही दिन 52 वर्ष पहले गाँधी जी ने साबरमती में आश्रम की स्थापना की थी। उस समय देश के पुराने नेता कांग्रेस के माध्यम से खण्ड आजादी के लिए अंग्रेजी सरकार से संघर्ष कर रहे थे। दूसरी ओर युवा पीढ़ी पूरी आजादी के लिए हिंसक विद्रोह की योजना बना रही थी। उन्हीं दिनों गाँधी जी का अलग प्रकार का चिंतन चल रहा था कि अहिंसक उपायों से पूर्ण आजादी कैसे हासिल किया जाय। गाँधी जी को इस लड़ाई के लिए निष्ठावान तपस्वी कार्यकर्ता की आवश्यकता थी। साबरमती आश्रम की स्थापना इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हुआ।

गाँधी जी की योजना पूर्ण हुई। आजादी मिली। परंतु उसकी व्यवस्था जिन के हाथों में दी गई थी, उन में अहिंसा पर विश्वास रखने वाले कम थे। जो थे वे भी धीरे धीरे उठते जा रहे हैं। आज फिर से देश में हिंसक शक्तियाँ प्रबल हो रही है।

सर्वोदय आन्दोलन को विनोबा जी ने भूदान से जिलादान तक पहुँचा दिये। परतु कार्यकर्त्ता तैयार करने की कोई स्वतंत्र योजना नहीं बन सकी। आज काम में मुश्किल आ रहा है।

थी। लेकिन उन्हें अपने सामर्थ्य पर विश्वास था। उन्हें साधु साध्वियों की श्रद्धा और अनुशासन प्रियता पर भरोसा था। नवमी के दिन उनका पहला वक्तव्य आचार्य पद से हुआ जिसका सार इस प्रकार है —

आचार्य के प्रथम व्याख्यान का सार

"गुरूदेव का स्वर्गवास हो गया। मृत्यु तो सबके लिए अनिवार्य है ही। फिर दु ख करने से क्या लाभ। चित्त स्थिर करके हमें गुरू द्वारा सौंपे गये गुरुतर भार को संभालना है।"

"मेरे नन्हें कधों पर विश्वास करके गुरूदेव ने जो भार सौंपा है उसके लिए उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। संघ के साधु साध्वियों को मैं जानता हूँ। उनकी अनुशासन प्रियता और नितिनिष्ठा पर मुझे भरोसा है। मैं पूर्वाचार्यों की तरह सब की सहायता करता रहूँगा। फिर भी मर्यादा की उपेक्षा मैं सहन नहीं करूँगा। अपने सघ मे सब फले फूले। सब का विकास हो। यह सघ सब का है। सब उस की उन्नति के लिए प्रयास करें।"

मुनि श्री मगनलाल जी कहा करते थे—"कौन कहता है कि आचार्य की उम्र २२ साल की है? कालूगणी जी ने साठ वर्षों तक जो अनुभव प्राप्त किया था वह सब इन्हें सहज ही प्राप्त हुआ है। इसलिए इनकी उम्र बयासी साल की है।" इस भाषण को गहराई

से देखने पर मैं श्री मगनलाल जी से भी कुछ आगे कहना चाहता हूँ। श्री तुलसी की उम्र चाहे बाईस साल की रही हो। आचार्य तुलसी शायद ८२ वर्ष के हों। परंतु तेरापथ के आचार्य तुलमी की उम्र दो सौ साल में मात्र दो वर्ष कम थी। तेरापथ के सभी आचार्यों का अनुभव उन्हें प्राप्त था। इन्होंने जिस तरह से पथ का सचालन किया है, उस से मेरा यह कथन खरा उतरता है।

प्रथम भाषण में विश्वास, नम्रता और कठोरता – इन सब का मिश्रण है। यह तो कुशल राजनितिज्ञ जैसी घोषणा है। अपनी स्थिति शुरू में ही साफ कर देने से भविष्य में आनेवाले कई खतरो से बचा जा सकता है। गुण तो है – परतु उसका प्रकाश किरण पहले से नहीं पडने से गलतफहमियों का जन्म होता है। बाद में सारा प्रयास बेकार हो जाता है। उन्होंने अपनी स्थिति साफ कर दी। सब को सावधान कर दिया कि उनकी भलाई के लिए कभी कडुवी बात भी कही जा सकती है।

भगवान और भक्त नारद के बीच भी गलत-फहमी हो गयी थी। कथा इस प्रकार है :—

'नारद को एक बार अभिमान हो गया। वे अपने को काम-जीत समझने लगे। भगवान ने उनका अहकार भंग करने का निश्चय किया।

करूणानिधि मन दीख बिचारी ।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी ।
मन हमार सेवक हितकारी ॥

एक बार नारदजी कहीं जा रहे थे। रास्ते में किसी राजकुमारी का स्वयंवर था। कन्या का हाथ देखकर नारद को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस कन्या का जो पति होगा वह अमर होगा। तीनों लोकों में उसकी पूजा होगी। अर्थात् वह सर्वशक्तिमान ईश्वर होगा। नारद जी ने सोचा अगर मुझे यह कन्या पति चुने तो बेड़ा पार हो जाय। लेकिन एक मुनि को कन्या वरमाला डाल नहीं सकती है। आखिर उन्होंने भगवान विष्णु को याद किया। भगवान आ गये। नारद जी ने भगवान से कुछ समय के लिए अपना स्वरूप देने को कहा। भगवान ने कहा—"जिस में तुम्हारा हित होगा वह मैं अवस्य करूँगा"। भगवान चले गये। नारद ने देखा कि उनका शरीर भगवान जैसा हो गया है।

स्वयंवर में नारद जी इस आशा से बैठे कि अब तो यह लड़की मुझे अवश्य ही पति चुनेगी। बेचारे इधर से उधर खिसकते रहे। संदेह था कि कन्या कहीं मुझे देख ही नहीं सकी तो क्या होगा? नारद जी जिधर जाते लड़की उधर से दूसरी ओर चली जाती। राजा के वेश में भगवान भी वहाँ पहुँचे थे। कन्या ने

उनके गले में माला डाल दी । बाद में दूसरे लोगों ने नारद को पानी में मुँह देखने को कहा । मुँह देखने पर नारद को पता चला कि अपना मुँह तो बंदर जैसा है ।

नारद को भगवान पर बड़ा गुस्सा आया । उन्होंने भगवान को शाप दिया कि तू भी नारी के विरह में तडपता रहेगा । (कहते हैं उसी शाप की पूर्ति में राम को सीता के लिए भटकना पडा ।) बाद में जब नारद का अहंकार दूर हुआ तब उन्हें लगा कि भगवान ने मुझे बचा दिया । वरना मेरी सब साधना समाप्त हो जाती ।

नारद जैसे भक्त को भी अहंकार आदि दोषों का शिकार होना पड़ा है तो सामान्य मनुष्य का क्या ठिकाना ? फिर भी अगर नारद को पहले से यह जानकारी रहती कि भगवान भक्तों को भी दंड दे सकते हैं तो शायद रूप माँगने की हिम्मत ही नहीं होती । भगवान की भलमनसाहत के कारण ही गलत फहमी हुई ।

एक और चुटकुला सुनो । एक भाई की शादी हुई । लडकी के घर वालों ने दामाद से कहा—“ लड़की बहुत क्रोधी है । दिन - रात चिल्ला कर मुहल्ले को परेशान कर देगी । जरा सभालकर रखियेगा । " दामाद बेचारा चिन्ता में पड गया । फिर चिन्तन करके एक युक्ति निकाली । घर पहुँचकर बकरी का एक बच्चा मँगाया । मेमने को बराण्डे में बांध दिया और खुद अन्दर सो गया । माँ से बिछुडने के कारण मेमने ने चिल्लाना शुरू किया ।

दो एक बार वह उठा और मेमने को एकाध छड़ी लगाकर डाँट दिया। परन्तु मेमने का चिल्लाना बन्द नहीं हुआ। आखिर उसने तलवार से मेमने का सर काट दिया। पत्नी सब देख रही थी। वह घबरा गई। सोचने लगी जो मनुष्य मेमने का चिल्लाना सहन नहीं कर सकता है वह मेरा चिल्लाना कैसे सहन करेगा? आखिर उसने मन ही मन तय कर लिया कि अब जीवन भर नहीं चिल्लाऊँगी।

आचार्य श्री ने प्रथम भाषण में ही इस तरह मनुष्य के अंतर में उठने वाले दोषों को समाप्त कर दिया। चाहे वे श्रावक वर्ग में हो या साधु वर्ग में। इस में ऐसा नहीं मानना चाहिये कि आचार्य श्री ने अपने क्रोधी या कठोर होने का संकेत दिया है।

मनुष्य और समाज

प्यारे बच्चो! तुम यह किताब पढ़ रहे हो। पढ़ने के लिए देखने का काम आँख करता है। मानलो कि किसी की आँख निकाल कर किताब पर रख दें तो क्या होगा? वह आँख देख सकेगी? नहीं देख सकती। और जिसकी आँख निकाल ली गई वह भी नहीं देख सकता। इसका अर्थ क्या हुआ? आँख का संबन्ध शरीर से है तभी उसका सही उपयोग है। अलग अलग दोनों बेकार हैं। फिर आँख सहित मुर्दा शरीर अगर पढ़ना चाहे तो भी असंभव है। याने शरीर में जान भी होनी चाहिए। हर मनुष्य एक अवयव की तरह है। वह किसी संस्था या संघ से जुड़ा है इसीलिए उसका

महत्व है। फिर वह जिस सघ का अग है, उस मे प्रवाह है, चैतन्य है, तभी उसका सही महत्व है, वरणा मुर्दा ही समझना चाहिए। इसलिए हमें देखना होगा कि आचार्य तुलसी जिस सघ के सचालक हैं उसकी क्या स्थिति है? आचार्य तुलमी को जानने से इतना तो अनुमान होता है कि उनका सघ प्राणवान होगा। उसमें एक प्रवाह होगा। फिर भी जरा निकट से देखना ठीक होगा।

तेरा पंत का मूल :

"मित्ती में सव्व भूएसु।" यह है जैन धर्म का मूल सिद्धात। भगवान महावीर ने आज से २४०० वर्ष पहले यह मत्र दिया। उसपर आचरण किया। आगे की पीढ़ी उसपर किस तरह आचरण करता रहे — इसके लिए नियम बताया। सब प्राणियो से मैत्री हो। यह जैन धर्म का प्रधान लक्ष्य है। जैन धर्म कितना पुराना है — यह खोज करना अभी बाकी है। भगवान महावीर २४ वें तीर्थंकर थे। तीर्थंकरों की परिपाटी कब से चली? उसके पहले भी जैन धर्म था ऐसा प्रमाण है। वेद में ऐसे साधकों का जिक्र है जो वस्त्र धारण नहीं करते थे। आज भी जैनों में दिगम्बर पथ है जिसके साधु वस्त्र नहीं पहनते हैं। सब प्राणियों से मैत्री है — अर्थात् न मैं किसी से बड़ा हूँ और न छोटा। फिर बराबरी में भी इर्षा, द्वेषादि होने की सभावना है। लेकिन मैत्री का रिश्ता होते ही

दो एक बार वह उठा और मेमने को एकाध छडी लगाकर डाँट दिया। परन्तु मेमने का चिल्लाना बन्द नहीं हुआ। आखिर उसने तलवार से मेमने का सर काट दिया। पत्नी सब देख रही थी। वह घबरा गई। सोचने लगी जो मनुष्य मेमने का चिल्लाना सहन नहीं कर सकता है वह मेरा चिल्लाना कैसे सहन करेगा? आखिर उसने मन ही मन तय कर लिया कि अब जीवन भर नहीं चिल्लाऊँगी।

आचार्य श्री ने प्रथम भाषण में ही इस तरह मनुष्य के अंतर में उठने वाले दोषों को समाप्त कर दिया। चाहे वे श्रावक वर्ग में हो या साधु वर्ग में। इस में ऐसा नहीं मानना चाहिये कि आचार्य श्री ने अपने क्रोधी या कठोर होने का संकेत दिया है।

मनुष्य और समाज

प्यारे बच्चो! तुम यह किताब पढ़ रहे हो। पढ़ने के लिए देखने का काम आँख करता है। मानलो कि किसी की आँख निकाल कर किताब पर रख दें तो क्या होगा? वह आँख देख सकेगी? नहीं देख सकती। और जिसकी आँख निकाल ली गई वह भी नहीं देख सकता। इसका अर्थ क्या हुआ? आँख का संबन्ध शरीर से है तभी उसका सही उपयोग है। अलग अलग दोनों बेकार हैं। फिर आँख सहित मुर्दा शरीर अगर पढ़ना चाहे तो भी असंभव है। याने शरीर में जान भी होनी चाहिए। हर मनुष्य एक अवयव की तरह है। वह किसी, संस्था या संघ से जुड़ा है इसीलिए उसका

महत्व है। फिर वह जिस सघ का अग है, उस में प्रवाह है, चैतन्य है, तभी उसका सही महत्व है, वरणा मुर्दा ही समझना चाहिए। इसलिए हमें देखना होगा कि आचार्य तुलसी जिस सघ के सचालक हैं उसकी क्या स्थिति है? आचार्य तुलसी को जानने से इतना तो अनुमान होता है कि उनका सघ प्राणवान होगा। उसमें एक प्रवाह होगा। फिर भी जरा निकट से देखना ठीक होगा।

तेरा पंत का मूल :

"मित्ती मे सव्व भूएसु!" यह हैं जैन धर्म का मूल सिद्धात। भगवान महावीर ने आज से २४०० वर्ष पहले यह मंत्र दिया। उसपर आचरण किया। आगे की पीढ़ी उसपर किस तरह आचरण करता रहे — इसके लिए नियम बताया। सब प्राणियों से मैत्री हो। यह जैन धर्म का प्रधान लक्ष्य है। जैन धर्म कितना पुराना है — यह खोज करना अभी बाकी है। भगवान महावीर २४ वें तीर्थंकर थे। तीर्थंकरों की परिपाटी कब से चली? उसके पहले भी जैन धर्म था ऐसा प्रमाण है। वेद में ऐसे साधकों का जिक्र है जो वस्त्र धारण नहीं करते थे। आज भी जैनों में दिगम्बर पथ है जिसके साधु वस्त्र नहीं पहनते हैं। सब प्राणियों से मैत्री है — अर्थात् न मैं किसी से बड़ा हूँ और न छोटा। फिर बराबरी में भी ईर्षा, द्वेषादि होने की समावना है। लेकिन मैत्री का रिश्ता होते ही

ज्यों ज्यों बढ़ती जायगी स्वतन्त्रता भी बढ़ती जायगी। जैन धर्म में स्वतन्त्रता और समता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। परन्तु समता की साधना के बिना स्वतन्त्रता का महत्व नहीं है।

जैन धर्म में कुल मिलाकर अधिक से अधिक नौ तत्व माने जाते हैं,—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। जैन धर्म कर्म सिद्धान्त पर जोर दिया है। ऐसा माना जाता है कि संसार के प्राणी जो दुःख भोग रहे हैं उसका कारण उनका अपना अपना कर्म है। उस कर्म बन्धन से मुक्त होना ही मोक्ष है। कर्म के परिणाम स्वरूप परमाणुओं का निरंतर आत्मा की ओर खिंचते रहना ही बन्धन है।

आत्मनः सतसत् प्रवृत्त्या कृष्णास्तत्आयोग पुद्गलाः।

कर्म – अर्थात आत्मा के साथ सत् और असत् प्रवृत्तियों के कारण जो परमाणु आत्मा के साथ चिपकते हैं उसे कर्म कहते हैं। इस कर्म बन्धन से छुटकारा पाने के लिए पहले बताये गये नियमों को कठोरता से पालन करना आवश्यक माना गया है।

किसी भी धर्म के दो रूप होते हैं —विचार और आचार! अर्थात सिद्धान्त और कर्म। जैन धर्म के सिद्धान्तों का मूल है 'अनेकान्तवाद' अर्थात 'स्याद्वाद'। हम उसे 'भी' वाद कह सकते हैं। आचारों का मूल है अहिंसा और तपस्या। अहिंसा

के लिए पहले बताये गये नियमों का ठीक ठीक पालन ही तपस्या है। 'भी' वाद सारे झगडों को समाप्त करने के लिए रामबाण है। किसी वस्तु को विविध पहलुओं से देखने पर असत्य भी सत्य बन जाता है। इसका सीधा अर्थ है कि सत्य सीमित नहीं हो सकता। कोई भी पदार्थ किसी अन्य वस्तु के सबध के अनुसार दिखाई देता है। इसलिए सबध बदलने से पदार्थ के लिए मान्यतायें भी बदल जाती है। अत सत्य के लिए झगडने का अवसर ही नहीं आनी चाहिये। तुम विद्यार्थी हो – ऐसा शिक्षक कहते हैं। माँ कहती है तुम मेरा पुत्र हो। मित्र कहेगा तू तो मेरा मित्र है। अगर वे सब अपनी मान्यताओं में 'ही' लगा दें, अर्थात तुम मित्र ही है तो, वह सत्य भी असत्य हो जायगा। 'भी' का प्रयोग हो तो सबके सब सत्य हैं। ऐसा लगता है कि भगवान महावीर के समय तक हिन्दुस्तान के दार्शनिकों में आपसी झगडे बहुत बढ गये थे। सिद्धान्त के सघर्ष में आचरण का गौण होना स्वाभाविक है। इस झगडे से मुक्त होकर आचरण पर जोर डालने के लिए ही स्यादवाद की आवश्यकता महशूश हुई। इस में झगडों से बचकर आचरण करने के लिए, साधना करने के लिए समय मिलता है। आज दुनियाँ भर के झगडों का कारण यह "ही" है। अगर दुनियाँ के राजनीति में अनेकान्तवाद का प्रवेश हो जाय तो विज्ञान की मदद से पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है।

जैन धर्म, 'जिन' भगवान का धर्म है। जैन उन्हें कहते हैं,

जो जिन के अनुयायी हों। 'जिन' शब्द बना है 'जि' धातु से। 'जि' माने जीतना। 'जिन' माने जीतने वाला। जिन्होंने अपने मन, वाणी और काया को जीत लिया, वे हैं 'जिन'। जिन भगवान में तीर्थंकर कहाते है। तीर्थंकर का शब्दार्थ होता है – तीर्थ माने किनारा या घाट। घाट बनाने वाले को तीर्थंकर कहते हैं। अर्थात मोक्ष प्राप्ति के हेतु साधना करने वालों को, जिसने इस भव सागर से किनारा लगाने के लिए मार्ग दर्शन किया हो। वैसे तीर्थंकर का अनेक अर्थ होता है। साधु साध्वियों और श्रावक श्राविकाओं को मिलाकर संघ की स्थापना करने वाले को भी तीर्थंकर कहते हैं। साधना का स्वरूप निर्धारित करके जनता को मोक्ष का मार्ग बताने वाले पथ प्रदर्शक को भी तीर्थंकर कहते हैं। जैन धर्म के अनुसार चौबीस तीर्थंकर हो गये हैं। उनके अलग - अलग चिन्ह हैं। पहले तीर्थंकर वृषभनाथ का चिन्ह बैल था और अन्तिम तीर्थंकर महवीर का चिन्ह सिंह। हिन्दुस्तान में राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर को अवतार माना जाता है, यद्यपि जैन लोगों के मुताबिक ईश्वर का अवतार नहीं होता है।

वास्तव में जैन धर्म जनता का धर्म है। आज उसका व्याव-हारिक पक्ष चाहे कुछ भी हो सिद्धान्तत जैन धर्म जातिवाद, उपासना का खास स्वरूप आदि में नहीं मानता है। जैन धर्म जितना ही कठोर है उतना ही कोमल। भगवान महावीर की मान्यता थी कि अन्य धर्मों में मानने वाले, गृहस्थ और धर्म में नहीं मानने वाले

को भी मोक्ष मिल सकता है,—अगर व्यक्ति की साधना सही हो। धर्मात्मा की व्याख्या करते हुए बताया गया कि धर्म पर पूरा आचरण करने वाले, धर्म का थोडा बहुत आचरण करने वाले और धर्म की प्रससा करने वाले, सब को धर्म का फल मिलता है। जैन धर्म विवेक पर बहुत बल देता है। विवेक जाग्रत होने के बाद व्यवहार कैसा करना, इसका निर्णय स्वय करना पडता है। मोक्षाकाक्षी सामान्य बातों के लिए मौन रहेगा, मध्यस्थ रहेगा। कुँआ बनाना या नहीं बनाना, इस पर मोक्षाकाक्षी साधक निर्णय नहीं देगा। अगर वह कहे कि बनाना चाहिए तो कुँआ बनाने में होने वाले प्राणी वध का भागी बनेगा और अगर मना करेगा तो लोग प्यास से मरेंगे, उसका पाप लगता है। इसलिए व्यवहार करने वालो को स्वतत्रता है कि वे अनावश्यक हिंसा नहीं हो, इस बात को ध्यान में रखकर काम करें। वैसे मान्यताओं में अतर भी है।

जैन धर्म मानने वालों के मुख्यरूप से दो सप्रदाय हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर अर्थात दिशा ही अम्बर है जिसका। दिगम्बर के साधु आज भी नग्न रहते हैं। श्वेताम्बर अर्थात सफेद वस्त्र पहनने वाला। दोनों सप्रदाओं से समय - समय पर अन्य साखायें निकलती रही हैं। जिसमें स्थानकवासी, मंदिरमार्गी, डेरावासी, बायस-सप्रदाय, तेरापंथी आदि मुख्य हैं।

तेरापथ का जन्म

श्वेताम्बर सम्प्रदाय से करीब २०० साल पहले स्थानकवासी नामक एक शाखा निकली। स्थानकवासियों के साधुओं में से निकल कर आचार्य श्री भिक्षु स्वामी ने वि० स० १८१७ अषाढ पूर्णिमा के दिन तेरापथ की स्थापना की।

तेरापथ क्यों?

बच्चो! ऊपर जैन धर्म का संक्षिप्त परिचय तुम्हें दिया गया। यह भी पता चला कि कालांतर में इस में से कई शाखाएँ निकली। लेकिन ये सब सिद्धान्त भेद से अलग नहीं हुए। कपड़ा पहनना या नहीं पहनना, स्थान बनाकर रखन या नहीं रखना, मूर्ति पूजा करना कि नहीं करना आदि ऐसे छोटे मोटे आचार भेद पर ही लोग अलग अलग होते गये। ऐसे छोटे-मोटे मतभेदों से किसी संस्था का विभाजन होते नहीं देखा जाता है। उसका भी कारण है। और किसी भी धर्म में आचरण पर इतना जोर नहीं दिया गया है। उनमें विचारों की प्रधानता रही है। लेकिन जैन धर्म में विचार और आचार का संबध एक-सा रहा है। इसलिए ये छोटे दिखने वाले मतभेद गभीर थे। आचरण को ढील देकर विचारों का ढोलि पीटने से धर्म का सही रूप समाप्त हो जाता है। देखो न! आज ईसाइयों की संख्या दुनिया में सब धर्मावलम्बियों से अधिक है। बाइबिल कहता है 'दुश्मन से भी प्यार करो।' दूसरी ओर

आधुनिक दुनिया की दो बडी लडाईयाँ इसाइयों ने आपस मे ही लडीं। करोडों लोगों का जीवन इन लडाइयो ने समाप्त कर दिया। धर्म का सच्चा अर्थ तो उस पर आचरण करना है। उस समय आचरण में शिथिलता आने के आभास के कारण ही तेरा पथ शाखा निकली।

शाखा कहते हैं – डाल को। निकलने के दो अर्थ होते हैं—एक अलग हो जाना। जैसे घर से निकल जाना। दूसरा होता है मूल से सपर्क रखते हुए नव - निर्माण करना। जैसे सींग निकलना। किसी भी सस्था या सम्प्रदाय में दोनो तरह की शाखाएँ निकलती है। एक वह जो पुरानी सब बातें छोडकर नया सम्प्रदाय बनाता है। वह अच्छा हो या बुरा – मूल सस्था के लिए नुकसान देह होता है। जैसे पेड की एक डाल काट कर अलग करना पेड के लिए नुकसानदेह है। दूसरा होता है मूल से सबंध रखते हुए उसी के पोषणार्थ नये - नये विचारों, आचारों को प्रतिष्ठित करना। जैसे पेड की नई डाली। पेड का मूल धरती से रस खींचकर डाल को देती है। परन्तु मूल को जिन्दा रखने के लिए नये - नये पत्तों की आवश्यकता होती है। पत्तों का काम है अधिक पानी को बाहर फेंकना और सूर्य से पोषण प्राप्त कर मूल को पहुँचाना। नई - नई डालिया, नये - नये पत्ते ही पेड को जीवन प्रदान करते हैं। इसके बिना मूल सड जायगा। सारा वृक्ष ही धाराशायी हो जायगा। इस दृष्टि

से तेरापथ जैन धर्म की एक ऐसी शाखा है जो पूरे पेड को मजबूत कर रही है।

उस समय स्थानक वासियों में जो शिथिलता का आभास दिख रहा था, उसके लिए तेरापथ का प्रादुर्भाव आवश्यक था। इससे मूल की सुरक्षा दृढ़ हुई। पुराने सम्प्रदायवादी मनोवृत्तिवालों ने पहले इस पथ के खिलाफ़ काफ़ी प्रचार किया। परन्तु वह तो स्वाभाविक ही था। यहाँ रामायण की एक कथा बताऊँगा—कहते हैं, परशुराम विष्णु के अवतार थे। परशुराम के जीवन-काल में ही राम का जन्म हुआ। उन्हें भी विष्णु का अवतार कहते हैं। परशुराम के रूप में एक काम हुआ। परशुराम बूढ़े हो चले। नये रूप की आवश्यकता महसूस हुई। राम के रूप में भगवान आये। दोनों भगवान के अवतारों की प्रथम मुलाकात जनकपुर में हुई। धनुष भग को लेकर दोनों में झगडा हो गया। उस समय तक लोग केवल परशुराम को ही विष्णु का अवतार मानते थे। राम ने नम्रता पूर्वक अपना पुरुषार्थ दिखाकर लोगों की आँखें खोल दी। लोगों ने राम को भी अवतार मानलिया। इससे परशुराम की प्रतिष्ठा घटने के बजाय बढ़ गई। यहाँ सोचने की बात है कि भगवान ने ही भगवान को पहचाने में भूल कैसे की? क्योंकि पुराने भगवान को अपने कामों पर संतोष था। उन्हें यह उम्मीद नहीं थी कि अब और आगे कुछ करने को बचा है, जो हम से नहीं हो सका है। और उस के लिए नये रूप की आवश्यकता है। पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी

को कभी पहचान नहीं पायी। आगे भी नहीं पहचानेगी। घर में तुम्हें बडों की उलाहना सुनने को मिलता होगा। तुम भी बडा होकर नई पीढ़ी के साथ वैसा ही वर्ताव करने वाले हो। इसलिए तेरापंथ के खिलाफ जो आवाज उस समय उठी थी, उसमें किसी को दोष देना नहीं है। यह सब स्वभावगत था। चूँकि जैन धर्म को और फलना - फूलना था, इसलिए तेरापथ का निर्माण आवश्यक था। रोशनी से रोशनी का विरोध हो ही नहीं सकता।

तेरापंथ का अर्थ :

आचार्य श्री भीखन जी इस पथ के आदि प्रवर्तक हैं। अब लोग उन्हें आचार्य भिक्षु के नाम से जानते हैं। कहते हैं उस समय इस पंथ में तेरह श्रावक शामिल हुए थे। इसलिए इसका नाम तेरा पंथ पडा। परंतु आचार्य भिक्षु ने इस का अर्थ किया है 'हे प्रभो! तेरा पथ।" आचार्य तुलसी ने उस का अर्थ किया, मानव-मानव का यह पंथ।" कई लोग इन दो अर्थों मे भेद मान सकते हैं। हम इस पर अपनी ओर से विचार करेंगे।

आचार्य भिक्षु ने कहा, हे प्रभो! तेरा पंथ! प्रभु का पंथ माने क्या? ईश्वर के चलने - फिरने का रास्ता मानेंगे! ईश्वर के लिए रास्ता क्या हो सकता है? इसका अर्थ होगा— "प्रभु की ओर ले जाने वाला मार्ग" तब फिर उस मार्ग से कौन चलेगा? गदहे को इसका ज्ञान कहाँ है? उस मार्ग पर चलेगा तो मनुष्य

ही। फिर ईश्वर की ओर जाने वाले मार्ग पर भेद-भाव कैसा ? जो चाहे चले। जो चाहे आगे बढ़े। लेकिन आचार्य भिक्षु जिस समय स्थानकवासी समाज से निकले थे उस समय संख्या में बहुत कम थे। मूल संगठन के बहुसंख्यक लोग इनके विरोधी थे। इस विरोध से बचने के लिए प्रभु के मार्ग पर स्वयं चलना शुरू किया। लेकिन लोगों को चलने में मनाही नहीं थी। परंतु लोगों को इनके नये मार्ग के लिए श्रद्धा नहीं थी। इसलिए सब को कहने की आवश्यकता नहीं हुई कि, ' मानव मानव का यह पथ।" प्रभु के मार्ग पर चलने के लिए जो नियम बने थे उसका पालन उनके समझ से नहीं हो रहा था। आपस में कहने सुनने का क्रम समाप्त हो चुका था। अत ' अकेला चलो रे " की धुन में कदम बढ़ाया और घोषणा कर दी कि यह प्रभु का मार्ग है। दो सौ साल बाद आचार्य श्री तुलसी के समय आज परिस्थिति बदल गई। लोगों का विरोध समाप्त हुआ। आम जनता की श्रद्धा आचार्य तुलसी के लिए बढ़ी। लोगों ने आचार्य पर अपना विश्वास प्रकट किया। उनसे परमात्मा की ओर ले जाने का मार्ग पूछा। साधना का रास्ता पूछा। आचार्य श्री ने जनता की जिज्ञासा समझी तब उसका अर्थ किया—" ऐ मानव! यह, तेरा पथ।" यह तेरा पथ से ग्राण्ड ट्रंक रोड नहीं हो सकता है। मार्ग तो ईश्वर की ओर, मोक्ष की ओर ले जाने वाला ही है। अर्थात् वही है। चलने को उस समय भी मनाही नहीं थी। परंतु उस समय लोग आचार्य भीक्षु से पूछा नहीं, इसलिए प्रभु का

पंथ रहा। आज पूछने वाले लोग हैं। मार्ग दर्शन चाहने वाले श्रावकों की जमात है। तब आचार्य तुलसी ने बताया— "प्रभु की ओर जाने का यह मार्ग तेरे लिए भी है।" आचार्य भिक्षु को प्रभु का मार्ग का पता चला और उस समय अपने चंद साथियों के साथ बढ़ गये। आचार्य तुलसी ने वहाँ एक सूचना पट्ट लगा दिया है। "मनुष्यों! अगर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हो तो तेरे लिए भी यह रास्ता खुला है" और उस ओर संकेत बता दिया। संकेत तो हमें पहुँचा नहीं सकता है। हमें खुद उस रास्ते पर चलने का प्रयत्न करना होगा। लेकिन उस संकेत के कारण हम भटकने से बच सकते हैं। आचार्य श्री तुलसी के शब्दों में इसका अर्थ है.—

हे प्रभो! यह तेरा पंथ, मानव मानव का यह पंथ।
जो बने इसके पथिक, सच्चे पथिक कहलायेंगे।

स्त्री शक्ति का विकास :

तेरा पंथ के सभी आचार्य विद्वान हुए। परंतु सभी साधु-साध्वियों के लिए विद्वत्ता हासिल करने की व्यवस्था नहीं बनी। श्री कालूगणी ने साधुओं के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया। उनके समय में कई साधु सच्चे विद्वान बन गये थे। परन्तु साध्वियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं थी। साध्वियों में कोई ऐसी नहीं थी जो दूसरों को सिखा सकें और फिर एक परम्परा शुरू हो सके।

आचार्य श्री ने इस परम्परा को पूरा करने का काम प्रथम हाथ में लिया ।

बहनों की हालत तो सदा से सोचनीय रही है । समाज का आधा हिस्सा उपेक्षित समझा गया । आज भी दुनियाँ भर में महिलाओं के शिक्षण पर पुरुषों की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है । भारत में शुरू से ही महिलाओं को देवी माना गया या दासी । देवी के स्थान पर तो दो चार पहुँच पायी हैं । वह पुरुषों के लिए ढाल बन गईं, और इधर लाखों, करोड़ों को दासी का जीवन बिताना पड़ा । महिलाओं को पति से अलग स्वतन्त्र अध्यात्मिक प्रवृत्ति करने की छूट शास्त्रों ने नहीं दी । श्री कृष्ण ने अपने ढंग से महिलाओं को समान स्तर पर लाने का प्रयास किया । फिर हजारों वर्षों तक मामला दब-सा गया । भगवान महावीर ने अपने संघ में श्रमणियों और साध्वियों को स्थान देकर एक क्रांतिकारी काम किया । इस जमाने में गाँधी जी ने बहनों के विकास के लिए अथक प्रयत्न किया । आज तो कानून भी मदद करने आयी है, फिर भी आचार्य विनोबा और दूसरे सर्वोदय के नेताओं ने महिलाओं को आगे बढ़ाने का प्रयत्न जारी रखा है । आचार्य तुलसी जिस पंथ के आचार्य बने उस में तो परम्परा से ही साध्वियों का

समान स्थान था ही। परन्तु शिक्षण के क्षेत्र में वह पीछे थी। उस क्षेत्र में भी उन्होने क्राति पैदा कर दी। एक नवीन आचार्य के लिए काम की उलझने बहुत रहती हैं। उन कामों की कुछ सूची पढ़ो जो आचार्य को खुद करना पडता है।

१. साधु सघों का अगला चातुर्मास कहाँ - कहाँ करना है, इसकी सूची तैयार करना।

२ एक सिघारे में लगभग पाँच - पाँच साधु या साध्वियाँ होती हैं। इन सबों के स्वभाव आदि का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ता है। विपरीत स्वभाव के सदस्यों को साथ रखने से अनिष्ट की आशंका रहती है।

३ वर्ष भर के कामों का लेखा - जोखा करना होता है। उनमें से कहाँ क्या फेर - बदल करना, यह सोचना पड़ता है।

४. अनुकूल - प्रतिकूल वातावरण का निवारण करने का काम भी जटिल है।

५ वृद्ध साधु - साध्वियों के लिए व्यवस्था करना होता है।

६. वृद्धों की सेवा आदि के लिए उचित व्यवस्था को प्रथम ध्यान में रखना होता है।

७. सिंघारों के लेखन, पाठन के लिए मार्ग दर्शन का काम आचार्य पर ही है।

ये सब काम गिन्ती में चद है। देखने में भी बहुत अधिक नहीं लगता है,— परंतु है बडा जटिल। वहाँ तो कोई मशीन का उपयोग है नहीं। मर्यादा पालन के साथ साथ यह सब काम पूरा करना पडता है।

बावजूद इतनी उलझनों के रहते – आचार्य श्री ने साध्वियों के शिक्षण को पहला स्थान दिया। कुछ साध्वियों को स्व पढाना शुरू किया। पहले संस्कृत व्याकरण और बाल कौमुदी से शुरु किया। फिर तो धीरे धीरे उनके लिए शिक्षण के सभी दरवाजे खुल गये। सं० १९९३ से ही यह कार्य शुरू किया गया था। इस कार्य में कठिनाइयाँ बहुत थीं। अध्ययन के लिए एक अटूट सिलसिला चाहिए। लगातार अध्ययन नहीं हुआ तो, श्रम बेकार चला जाता है।

आचार्य श्री व्यस्त रहते थे। बीच बीच में कार्य व्यस्तता के कारण अध्ययन स्थगित करना पडता था। फिर भी ध्यान तो था ही। आखिर सफलता मिली। (आज तो साध्वियाँ दर्शन शास्त्र का भी काफी अध्ययन कर रही हैं। मैंने जो यह सब लिखना शुरू किया वह साध्वी श्री सोहँना जी के समर्क का ही असर है। अब तो साध्वियों में अध्ययन की भूख भी अधिक जगी है। आचार्य श्री के साथ जो रहती है, उनके लिए तो कोई बात ही नहीं है, अन्य साध्वियों के लिए भी अध्ययन की सुविधा पर ध्यान रख कर सिंघारे बनाये जाते हैं।)

एक शिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई।

करने वाली साध्वियों को उस केन्द्र में रखा गया। उनके व्यवस्थित अध्ययन की व्यवस्था की गई। चार साल तक लगातार केन्द्र चलता रहा। इस केन्द्र में करीब-करीब ५० साध्वियों को उत्तम शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिला। फिर केन्द्र की आवश्यकता नही रही। अब ये विदुषी बहने अलग-अलग जत्थों में शामिल हैं। अपने साथियों को सिखाने का काम चालू है। एक परंपरा लग गयी। वैसे आचार्य श्री के पास आज भी जो साध्वियाँ रहती हैं उनका व्यवस्थित वर्ग चलता ही है। ज्ञान की कोई सीमा तो है नहीं। जितना चाहो ले लो। जितना ही लेते जाओ बढ़ता ही जायगा। एक बात कहना भूल ही गया। बताता हूँ।

पंथ निर्माण :

अध्ययन की परम्परा तो संघ में डाली जा चुकी थी। बहुत से साधु-साध्वियाँ इस क्षेत्र में बहुत आगे निकल चुके थे। परन्तु शिक्षण का कोई व्यवस्थित पाठ्य क्रम नहीं था। जो जहाँ से चाहें पढ़ाई शुरू करें। चंद लोगो के लिए खास व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु जब संख्या बढ़ जाती है तो व्यवस्थित पाठ्य क्रम के बिना परेशानी होती है। संस्कृत पढ़ने का अर्थ केवल आगम को समझने के लिए था। इस भाषा में न कोई टीका लिखने की सोच सकते थे और न भाषण देने की हिम्मत कर सकते थे। ऊँचे लक्ष्य के आभाव में लोग अल्प संतोषी बन जाते थे। आचार्य श्री के जमाने में शिक्षा का लक्ष्य ऊँचा किया गया। संस्कृत में

छिटफुट रचनाएँ होने लगी। परन्तु अध्ययन में क्रम नहीं होने के कारण परेशानी होती थी। साध्वियों के शिक्षण से विकास की गति तेज हो गई। आखिर आचार्य श्री ने पाठ्य-क्रम बनाने का तय किया। तय किया याने कार्यक्रम शुरू हो गया। ऐसे लोग सोचने से पहले मन में काम पूरा कर डालते हैं। बाद में स्थूल कार्य प्रारंभ करने में क्यों देर लग सकती है।

एक बार बापू के पास कुछ आश्रम वासी बैठे थे। चर्चा चली कुँआ खोदने की। सब ने मिलकर तय किया कि एक कुँआ बनाया जाय। परन्तु कब से शुरू करना यह तय करना अभी बाकी था। सुबह उठते ही लोगों ने देखा कि विनोबा कुँआ खोद रहे हैं। फिर तो सब लोग गये और कुँआ पूरा हुआ।

इसका प्रमाण है कि २००५ में जिस बात को सोचा उसके फल स्वरूप २००६ में ३० लोग पाठ्य - क्रम के आधार से परीक्षा में बैठे ।

इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण ने शिक्षण के क्षेत्र मे एक क्राति पैदा कर दी । वास्तव में विचारों का विकास ही जीवन का विकास है । इस पाठ्यक्रम का नाम दिया, " आध्यात्मिक शिक्षा क्रम " । इसके तीन विभाग किये गये । योग्य, योग्यतर और योग्यतम । सामान्य मनुष्यों के लिए दूसरी पाठ्य प्रणाली बनाई गयी । इसका नाम रखा सैद्धान्तिक शिक्षाक्रम । इन शिक्षा क्रमों में आवश्यकताा अनुसार परिवर्तन होते रहे है । होते रहेंगे । यह आवश्यक भी है । शिक्षण विकास के कारण सघ में और समाज में बहुत बढी जागृति पैदा हो गयी है । आज यह पंथ युग धर्म को समझने की क्षमता रखता है । जो युग धर्म को समझ लेगा वह उसे टालेगा नहीं । युग धर्म टालने का अर्थ तो पतन होता है । अतः अब यह पंथ युग के अनुसार जब भी चाहेगा, अपने को बदल सकता है । युग का नेतृत्व कर सकता है ।

धर्म प्रचारकों की योग्यता :

सघ के हरेक साधु साध्वियों का अध्ययन गहरा होना चाहिए । साधु साध्वी ही सघ के प्राण हैं । ये लोग हजारों मील का विहार करते हैं । लाखो - लोगों से इनका सम्पर्क होता है ।

अगर इनका विकास नहीं होता है तो जनता पर क्या असर होगा? लोगों को सही के स्थान पर गलत बातें भी बताई जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। इसका परिणाम आखिर कार आचार्य और संघ को ही भुगतना पड़ेगा। इस तरह का एक चुटकुला सुनाऊँगा। बहुत देर से नीरस विषय में तुम उलझे हुए हो।

महादेव जी ने एक बार अपने नंदी को बुलाकर एक महत्वपूर्ण काम सौंपा। काम था पृथ्वी पर के मनुष्यों के नाम महादेव जी का आदेश पहुँचाने का। नंदी (बैल) महाराज पत्र लेकर शान से पूछ उठाते, सींग हिलाते पृथ्वी पर पहुँचे। लोगों को इकट्ठा किया। आज भला नंदी महाराज का क्या पूछना जिसे महादेव जी ने अपना विशेष दूत बनाकर भेजा है। वह भी भूत प्रेतों के बीच नहीं मनुष्यों के बीच। सभा के बीच खड़े होकर उन्होंने एक नेता के हाथ महादेव जी का फरमान दिया। महादेव जी की भाषा बेचारे मानव के लिए उतना ही जटिल था जितना आज की आम जनता के लिए अंग्रेजी। आखिर फरमान पढ़कर सुनाने का काम भी नंदी महाशय पर ही पड़ा। पूछ उठाकर नंदी महाशय ने फरमान पढ़कर सुनाया और फिर उसका अर्थ मनुष्य की भाषा में बताया। लोगों ने उसे इस प्रकार सुना—

"मनुष्यों! मेरा आदेश है कि तुम लोग हर रोज एक बार स्नान किया करो और दो बार खाना खाया करो। जो कोई आदेश का पालन नहीं करेगा उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जायेगी।

सही :—महादेव जी, आहार अधिकारी, प्रधान कार्यालय न० १. कैलास।

लोग आदेश को सुनकर खुशी से नाच उठे। नदी महाराज को शानदार भोजन कराकर विदा किया। महादेव जी के पास जाकर नदी ने सब बातें ज्यों की त्यों बता दिया। महादेव जी बेचारे सुनकर दंग रह गये। बात ऐसी थी कि महादेव जी ने लिखा था कि स्नान दो बार करें और खाना एक बार खायें। अब जो घोषणा नंदी महाराज ने कर दी थी उसके हिसाब से छः महीने में ही ससार का भोजन समाप्त होने वाला था। आज का जमाना तो था नहीं कि कर्मचारियों की गलती पर पर्दा डालने के लिए आदेश में परिवर्तन कर दिया जाता। आखिर महादेव जी ने नदी को फिर से पृथ्वी पर भेज दिया। अब उन्हें भोजन की कमी पूरा करने के लिए हल खींचने का काम दिया गया। बेचारे पीढ़ी दर पीढ़ी से हल खींचते हैं। फिर भी अन्न की कमी दूर नहीं हो रही है। उधर महादेव जी बिना वाहन के भटक रहे हैं।

प्रचारकों का ज्ञान, उनके विषय में जिनका वे प्रचार करते हैं, परिपक्व होना ही चाहिए। बुद्धिमान दूतों से ही काम लेना चाहिए, ऐसा शास्त्र वचन है। आचार्य श्री ने सभी साधु - साध्वियों के लिए, जो धर्म प्रचारक भी हैं, ज्ञान के दरवाजे खोल दिये। इसलिए संघ दिन - दिन विकासित होता जा रहा है।

भाषा का महत्त्व :

तेरा पथ का परिचय क्षेत्र बहुत दिनों तक राजस्थान तक ही सीमित था। राजस्थान में भी बहुत अधिक लोगों के बीच इसकी पहुँच नहीं थी। आचार्य श्री अपनी योग्यता विस्तार के साथ ही क्षेत्र विस्तार के लिए भी सोचने लगे। " धर्म किसी सीमा में बाँधकर रखने की चीज नहीं है। चाहे वह सीमा जाति का हो या और किसी तरह का। धर्म उन सब व्यक्तियों के लिए है, जो उसका आचरण करते हैं "। उपरोक्त विचार आचार्य श्री तुलसी के हैं। इस विचार को व्यवहारिक रूप देना आसान काम नहीं था। साम्प्रदायिक ईर्षा–द्वेष के वातावरण में आगे बढ़ना कैसे हो सकता है ? इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने संघ में शिक्षा पर अधिक जोर दिया। संघ के सदस्य शास्त्र के मर्मज्ञ हो गये। समस्या फिर भी सामने थी। अधिकांश शास्त्र संस्कृत, प्राकृत या छिट फुट राजस्थानी भाष में थे। जिस जिस समय उन उन शास्त्रों की रचना हुई, उस उस समय उन उन क्षेत्रों के लिए उन - उन भाषाओं का उपयोग किया गया था। अब राजस्थान के बाहर देश भर में अपनी बात कहनी थी। अत सुनने वालों की समझ में आनेवाली भाषा का ज्ञान होना जरूरी था। इसके बिना शास्त्र अलमारी में रक्खी पुस्तक के समान था। रामायण में एक रोचक रूपक आया है—

लंका युद्ध में गरुड़ ने भगवान राम की मदद की। राम

नाग - पाश में बधे थे। गरुड नाग को खा गया। इस तरह राम मुक्त हुए। गरुड को बताया गया था कि राम विष्णु के अवतार हैं। इस घटना के बाद गरुड को सदेह हो गया। सोचने लगा भगवान होते तो मेरी मदद के बिना भी नाग - पाश से मुक्त हो सकते थे। लेकिन अनेक देवताओ ने भगवान का अवतार बताया है, इसलिए सबको झूठा भी नहीं कहा जा सकता। आखिर वह राम के विषय में सर्व श्रेष्ट ज्ञाता महादेव जी के पास गये। उन्होंने अपना सदेह महादेव जी से कह सुनाया। फिर उसे दूर करने को कहा। महादेव जी बोले—" यहाँ से आगे नीलगिरी पर एक कौआ रहता है। आप वहाँ जाकर उन से मिलिये। वे आपकी शका दूर कर देंगे "। गरुड़ महाराज काग के पास जा कर अपने सदेह को दूर किया। गरुड के जाने के बाद पार्वती जी के मन में एक शका उठी। महादेव जी से बोली—" सब कहते हैं कि राम के विषय में आपसे अधिक जानकारी किसी को नहीं है। फिर यह कौआ कहाँ से आया ? जिसके पास आपने गरुड़ को भेजा है। क्या यह काक राम के विषय में आपसे अधिक जानता है ? " महादेव जी ने कहा—" जानता तो वह कौआ कम है, परतु गरुड ठहरा पक्षी, और मैं हूँ पंडित। पंडित की भाषा पक्षी समझ ही नहीं सकेगा। फिर शास्त्र दुहराने से क्या लाभ होगा ? कौआ भी चूँकि पक्षी है इसलिए थोडा बहुत जो भी वह कहेगा – गरुड की समझ में आ जायगा।

कछु तेहिते पुनि मैं नहि राख ।
समुझ खगहि खगही के भाषा ॥

सचमुच अगर कहने सुनने वालों के बीच भाषा की समानता नहीं हो तो विद्वता किसी काम में नहीं आती है। हमारी सरकार जनता के लिए योजनायें बनाती हैं। परंतु जनता की भाषा में जनता को उसका महत्व समझा नहीं पाती है। परिणाम यह है कि योजनाओं के साथ गरीबी का भी विस्तार होता जा रहा है। मुझे हिन्दुस्तान के पहाडी क्षेत्रों को देखने का मौका मिला है। वहाँ के आदिवासियों के लिए बोली तो है, परन्तु लिपि नहीं। वहाँ भी पवित्र ईशु खीस्त के शिष्यों की पहुँच है। उस में कुछ सेवाभावी साधु हैं तो कुछ ईसाइयों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता से पीडित लोग भी। परन्तु साहस दोनों ने किया है। उन बोली जाने वाली सैकड़ों भाषाओं को रोमन लिपि में लिखा है। कम से कम बाईबल तो अवश्य ही लिखा है। इसलिए तो आज ईसाइयों की संख्या बढ़ती जाती है। और लोग उनके प्रति वफादार होते जा रहे हैं। देश के कट्टर कहे जाने वाले हिन्दू चिल्ला रहे हैं। चिल्लाने से होता क्या है? सहस करने का तैयार होना चाहिए। हम आलसी लोगों से वह काम होता नहीं है। फिर गाली देकर फर्ज पूरा कर लेते हैं। बच्चो! मुझे कहना था कि आचार्य श्री ने जरूरत का अदाज किया और फिर संघ में हिन्दी सिखाने की व्यवस्था हुई। लिखना, पढ़ना, बोलना, कविता करना, कथा कहानी आदि सभी क्षेत्रों में

सघ के सदस्य आगे बढ़ने लगे। इन सब कामो मे समय तो लगा परन्तु यह सब युद्ध की पूर्व तैयारी थी। लडाई के पहले सब तरह की तैयारी की आवश्यकता होती है। यह लडाई हिंसक नही था! इस में तो जडता पर गति का आक्रमण होने वाला था। आडम्बर पर सच्चाई का डंका बजने वाला था। करोडो जनता के बीच एक नयी बात पहुँचाना आसान काम नही होता है। कोई कानून हो तो बात दूसरी। यहाँ तो अपने विचारों के लिए दूसरों के हृदय परिवर्तन की बात थी। इस देश में दर्शनों और विचारों का जगल-सा है। उन सबके विरोध से बचते हुए आगे बढ़ना था। अगर झगडा करें तो उसके लिए समय कहाँ था। इसलिए लम्बे समय तक तैयारी की आवश्यकता थी। महाभारत की कहानी है। भीम और जरासघ की कुश्ती थी। भीम खाना खा रहा था और जरासघ उसपर मुक्का मार रहा था। लोगों ने भीम को सावधान किया। भीम बोला—"खाने के बाद देख लूँगा।" सचमुच खाने के बाद वह पूर्ण बली हो गया। फिर जरासद का काम तमाम किया। पूर्व तैयारी का अपना महत्व है। इस तैयारी के बाद आचार्य श्री ने धर्म प्रचार का क्षेत्र विस्तार शुरू किया। आज तक उसका विस्तार होता ही जा रहा है।

समय की पुकार

आचार्य श्री तुलसी तेरा पथ के सिद्धान्तों को लेकर गाँव गाँव घूम रहे थे। मूल सिद्धान्त पर समय का जंग लगा था। उन्होंने चमकाना शुरू किया। शब्दों के नये नये अर्थ होने लगे। परन्तु इस बात के लिए अपने संघ के श्रावक भी तैयार नहीं थे। इस में उनको दोष क्यों दिया जाय। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह आदत छोड़कर आगे बढ़ने से इन्कार कर देता है। विनोबाजी पाँच साल तक जेल में रह चुके हैं। उस समय स्वतन्त्रता संग्राम चल रहा था। वे वहाँ के कई अनुभव सुनाते हैं। एक यहाँ पेश है।

एक बार एक चोर कैद की सज़ा भोगकर बाहर जा रहा था। जेल में बहुत दिनों तक रहने के कारण उसकी मित्रता कई कैदियों से हो गयी थी। जाते समय अन्य कैदी, दोस्तों की आँखों में आँसू आ गये। चोर कैदी, जो बाहर जा रहा था, सबको धैर्य बधाते हुए बोला—"तुम लोग चिन्ता मत करो। मैं एक हफ्ते के अंदर अंदर फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।" और सचमुच वह एक हफ्ते में फिर जेल में आ गया। उसे फिर से जेल में आने के लिए अपराध करना पड़ा। लेकिन वह जेल में रहने का आदी हो चुका था। उसे बाहर की दुनिया पसंद नहीं थी। आचार्य श्री को भी इन्हीं परपरा प्रेमियों से पाला पड़ा। मेरे ख्याल से अब भी कठिनाइयाँ बनी हैं। संघ में अब विरोध नही है। लोगों की श्रद्धा बनी है।

आचार्य श्री का विचार पसद है। परन्तु स्वयं को उस हद तक ले जाने में असमर्थ हैं। यद्यपि आज तेरा पंथ से बाहर के अनेक लोगों ने आचार्य श्री के मार्ग दर्शन में चल कर दिखा दिया है कि यह साध्य है। जो भी हो आचार्य श्री शुरू से ही पंथ के श्रावक-श्रविकाओं के विकास के लिए प्रयत्न शील हैं। प्रयत्न करने वाला तो सफल हो ही जाता है। परिणाम चाहे जो कुछ भी हो। शिवाजी, झासी की रानी, सुवाषचन्द्र बोस, गाँधी, नेहरू आदि सभी नेता सफल हैं। सब पूज्य हैं, क्योंकि उन सवों ने आजादी के लिए प्रयास किया। तेरा पंथी समुदाय के डब्बे को आगे बढ़ाकर युग धर्म के इंजन में जोडने का प्रयत्न जारी है। इसके कारण आचार्य श्री पर सम्प्रदाय वादी होने का भी आक्षेप है। मुझे भी पहले यही शंका थी। परन्तु एक बार मुलाकात हो जाने के बाद उसका निराकरण हुआ। आज का मानस जिस स्तर पर सोचता है उस पर से आचार्य श्री को साम्प्रदाय वादी कहना सामान्य बात है। वेप, भूषा, रहन-सहन ही युगों तक साधुओं का माप-दण्ड रहा। हिन्दुस्थान की भोली-भाली जनता भेष का शिकार युगों से होती रही। कबीर, तुल्सी आदि ने तो इस पर काफी प्रहार भी किया है। अब विज्ञान के युग में हर छोटी बड़ी चीजों को लोग विज्ञान की कसौटी पर कसते हैं। खरा-खोटा बताने वाला साधन एक मात्र विज्ञान ही है। विचार और व्यवहार की भिन्नता का ही नाम ढोंग है। आम लोगों के सामने आखिर जाता क्या है? आचार्य

श्री या उनके शिष्यों का बाह्य रूप, जो लगभग एक समान होता है। एक समान होना भी,चाहे वह वस्तु, पूजा विधि, या कोई चिन्ह हो – सम्प्रदाय का लक्षण माना जाता है। दूसरी ओर है उनका व्यापक विचार। व्यापक विचार और सीमित आचार संदेह पैदा करने के लिए काफी है। इस आचार विचार के दार्शनिक पहलुओं को जानना सबके लिए सरल काम नहीं है। आज लोग व्रतों में नहीं मुक्ति में मानना सुविधा जनक समझते हैं। ईसाई धर्म का फैलाव इसी लचीले पन के कारण हुआ। यह सही है कि आचार के बिना विचार प्राय मृत हो जाता है। परन्तु यह भी सही है कि युग प्रवाह के अनुकूल हमारे नेताओं को सोचना होगा। आचार्य श्री ने भी इसे महसूस किया और इस चिन्तन में से अणुव्रत आंदोलन निकाला।

अणुव्रत आन्दोलन क्यों?

प्यारे बच्चो! अणुव्रत आन्दोलन की चर्चा करें, उससे पहले उस समय की परिस्थिति को जरा समझे, जिस समय इसका जन्म हुआ। ऊपर जो कारण बताये गये हैं वे भी सही हैं। परन्तु अणुव्रत आन्दोलन के पीछे और भी कई प्रेरणायें हैं। विज्ञान ने मनुष्यों के हाथ में भयानक हथियार थमा दिया। एक के बाद एक विश्व युद्ध से धरती का रंग लाल हो गया। युद्ध के समय की परिसिति भयानक होते हुए भी सह्य होता है। उस में जिन्दगी

और मौत का सवाल सीधा - सीधा सामने रहता है। लेकिन युद्ध के बाद समाज में अनाचार, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि का बोल - बाला हो जाता है। इन के परिणामों को पीढी दर पीढी को भोगना पडता है। वे सारे हथियार जो युद्ध के लिये काम के थे, इन बुराइयों के आगे बेकार साबित होते हैं। नई परिस्थितियों मे लडने के लिये नये - नये हथियारों की आवश्यकता होती है। कारखानों में ये हथियार नहीं बनाये जा सकते। समाज सुधारक नेताओं के दिमाग में ये हथियार तैयार होते हैं। फिर चद लोग इन हथियार को लेकर निकल पडते हैं। इस से किसी का नुकसान नहीं होता। इस हथियार का प्रयोग उसका प्रचार है। जितने लोगों के हाथ में हथियार पहुँचा, उन सब की विजय हो गयी। साथ ही वे ही लोग सैनिक बने। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। कुछ हद तक भारत उस से बचा रह गया। लेकिन विधि की विडम्बना कहें, देश में जातीय दगे शुरू हो गये। आजादी मिलने के पहले भाई, भाई के खून से प्यास बुझाने के लिए निकल पडे। हजारों माँ के लाल छिन गये। कितने का सिन्दूर मिट गया। बच्चे बे सहारे हो गये। युवतियाँ भगाई गई। लाखो लोग घरबार छोड कर भागने पर मजबूर हो गये। यह स्थिति विश्वयुद्ध से भी भयकर थी। देश आजाद हुआ। गाँधीजी के खून से उस खूनी यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। देश के शासनाध्यक्ष बदल गये। परन्तु वास्तव में तत्र वही पुराना रहा। कर्मचारी वर्ग वही पुराने थे। नये नेताओं के सामने

कई काम थे। सब से अधिक समय तो बेचारों का भाषण देने में समाप्त होने लगा। नौकरों का बन आया। अब उनके ऊपर कोई विलायती साहब नहीं था। सब अपने परिचित ही थे। सिपाही का चाचा दारोगा था। दारोगा का भाई सुपरिटेन्डेन्ट और मामा मंत्री बना था। शासन समाप्त होने लगा। अब फिर से उसको लौटने की उम्मीद नहीं थी। अनुशासन आया नहीं था। दृष्टि संकुचित थी। धर्म से रिश्ता टूट रहा था। ज्यों ज्यों समय बिताता भ्रष्टाचार का प्रवाह बढ़ता जाता था। इसे रोकने के लिए शायद बड़े बड़े विचारकों के मन में चिन्ता थी। आज भी है। परन्तु उपाय क्या है? दण्ड से इसे रोकना संभव नहीं। क्योंकि दण्ड कौन देगा? जब दण्डदाता, न्यायकर्ता सब अपने रिश्तेदार ही हैं। इस परिस्थिति में क्या किया जाय? जैसे सब के मन में चिन्तन चल रहा था। वैसे आचार्य श्री के मन में भी चिन्तन चल रहा था। इसी सक्रान्ती काल में आचार्य विनोबा भावे ने नैतिक जागृति लाने के लिए आर्थिक विषमता मिटाने का शंख फूँका। भूदान यज्ञ शुरू किया। भूदान, सर्वोदय पात्र, शांति सेना, ग्रामदान, पंचायत दान, प्रखंडदान और अब जिलादान तक आ गया है। इधर आचार्य तुलसी ने आर्थिक विषमता मिटाने के लिए नैतिक जागरण का मंत्र दिया। अणुव्रत आन्दोलन का जन्म हुआ। २५ लोगों से शुरू होने वाले इस आन्दोलन से आज हजारों, लाखों लोग प्रभावित हुए हैं और होते जा रहे हैं। इसकी अनिवार्यता सबने महसूस की है।

उधर विनोबाजी खादी, कांचन मुक्ति आदि के प्रयोग से अर्थ की प्रधानता मिटाने में लगे ही थे। इधर आचार्य तुलसी तेरा पथ के महाव्रतो का प्रचार कर ही रहे थे। फिर भी दोनो को यह अनुभव हुआ कि जो कुछ वे कर रहे हैं उसे समाज तुरत कबूल नहीं करेगा। अर्थात् समाज की ताकत से यह बोझ अधिक वजनदार है। दस सेर वजन ढोने वाले के सर पर बीस सेर वजन देने से क्या लाभ? वह या तो उठायगा ही नहीं अथवा मंजिल में ही रह जायगा। उसे तो दस-दस सेर का बोझ ही बारी-बारी से ढोने को तैयार करना उचित होगा। अथवा अभ्यास कराते-कराते बीस सेर वजन ढोने लायक बनाना होगा। इसलिए परिस्थिति के अनुकूल ही महाव्रतों को मुकाम मानकर मंजिल (ठहराव) बनाया गया। अणुव्रत एक ठहराव है मुकाम तक जाने का।

अणुव्रत आन्दोलन क्या :

प्यारे बच्चो! अणुव्रत है प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई। क्या प्राइमरी में पढ़े बिना तुम कोई डिग्री प्राप्त कर सकते हो? यह ठीक है कि मात्र प्राइमरी पाठ से एम० ए० पास नहीं कर सकोगे। महाव्रत है लक्ष्यऔर अणुव्रत पडाव। लम्बे रास्ते को तय करने के लिए पडाव की आवश्यकता है ही। फिर भी पहुँचेगा वही जो चलेगा। अणुव्रत से अभ्यास शुरू करके हम महाव्रत तक आसानी से पहुँच सकते हैं।

एक लोक कथा प्रसिद्ध है। एक ग्वाले की भैस ने एक

बचा दिया। ग्वाले का एक स्वास्थ्य सुन्दर लडका था। नौजवान लडका भैंस के बच्चे को कधे पर लेकर हर रोज दस मिनट तक घूमता। बच्चा रोज रोज बढ़ता गया। परतु युवक ने कधे पर उठाने में एक रोज भी नागा नहीं किया। आखिर समय पर वह बच्चा जबर्दस्त भैंस बन गया। परतु तब भी वह युवक उसे कधे पर उठाकर दस मिनट घूम जाता था। शुरू में वह एक छोटा काम था। परतु सतत् सातत्य परिश्रम के बाद वह आश्चर्य जनक काम हो गया। अभ्यास के कारण यह काम संभव हो सका। अणुव्रत भी महाव्रत रूपी भविष्य के भैंसे का बचपन है।

अभ्यासी इसके माध्यम से मुकाम तक आसानी से पहुँच जाएँगे।

अणुव्रत शब्द जैन आगमों से लिया गया है। शब्द चाहे जहाँ से लिया गया हो, इस से हमें कुछ लेना देना नहीं है। वास्तव में अणुव्रत जैन धर्म के आदिकाल से शुरू हुआ और आज तक चलता रहा है। परन्तु उसका अलग कोई नाम नहीं था। किसी ने घर पर अध्ययन करके एकाएक हाइस्कूल की परीक्षा दे दी। याने उसने प्राइमरी में कभी नाम नहीं लिखाया। इसका यह अर्थ कैसे करें कि उस लड़के ने वर्णमाला सीखी ही नहीं।

आज तक जैन सम्प्रदाय में जिन साधु साध्वियों ने महाव्रतों का पालन किया है वे सब अणुव्रत से होकर ही गुजरे होंगे। इसकी अपेक्षा ऐसे लोग होंगे ही जो महाव्रत तक नहीं पहुँच सके परन्तु

अणुव्रत का पालन किया होगा। जैन ही क्यो? जैनेतर भी। दुनिया भर में जितने भी अहिंसा आदि गुणो को ग्रहण किया होगा वे सब अणुव्रत के रास्ते से ही आगे बढ़े होगे। आचार्य तुलसी ने साधारणता पर्क किया। उन्होंने अणुव्रत को भी एक ठहराव बना दीया। यानी इसका एक स्वतंत्र मूल्य स्थापित कर दिया। इस से सफर करने वाले लोगों को हिम्मत आई है। रास्ता निर्जन था, जिस के दोनों छोरे पर केवल दो ठहराव थे। एक ओर था यात्रा शुरू करने का स्थान तो दूसरी ओर था महाव्रतों का मुकाम। लोग सफर करने से पहले मुकाम की दूरी देखते थे। अपनी शक्ति का अनुमान लगाते थे। रास्ते में ठहराव नहीं था। इसलिए मुकाम पर पहुँचने का पक्का विश्वास होने के बाद ही सफर शुरू करते थे। इस से स्पष्ट है कि उस हालत में बहुत सारे लोग यात्रा शुरू ही नहीं करते थे। दोनो छोरो पर दो वर्ग चलते रहे। दोनों को जोडने, निकट लाने का कोई साधन नहीं था। आचार्य श्री ने अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा इस कमी को समाप्त कर दिया। मजिल दो भागो में बट गया। दूरी घट गयी। अब लोगो में आगे बढने की हिम्मत आ गई। एक मजिल तक चलने की हिम्मत कर आगे बढते है। पहला मंजिल पूरा होता है तो दूसरा नजदीक दिखाई देता है? परतु जो एक मंजिल तक ही पहुँच कर रह जाते हैं वे भी अपने और समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते है।

वैसे तो धर्म मात्र में जाति भेद आदि के लिए स्थान नहीं

बच्चा दिया । ग्वाले का एक स्वास्थ्य सुन्दर लडका था । नौजवान लड़का भैंस के बच्चे को कंधे पर लेकर हर रोज दस मिनट तक घूमता । बच्चा रोज रोज बढ़ता गया । परन्तु युवक ने कंधे पर उठाने में एक रोज भी नागा नहीं किया । आखिर समय पर वह बच्चा जबर्दस्त भैंस बन गया । परंतु तब भी वह युवक उसे कंधे पर उठाकर दस मिनट घूम जाता था । शुरू में वह एक छोटा काम था । परंतु सतत् सातत्य परिश्रम के बाद वह आश्चर्य जनक काम हो गया । अभ्यास के कारण यह काम संभव हो सका । अणुव्रत भी महाव्रत रूपी भविष्य के भैंसे का बचपन है ।

अभ्यासी इसके माध्यम से मुकाम तक आसानी से पहुँच जायेंगे ।

अणुव्रत शब्द जैन आगमों से लिया गया है । शब्द चाहे जहाँ से लिया गया हो, इस से हमें कुछ लेना देना नहीं है । वास्तव में अणुव्रत जैन धर्म के आदिकाल से शुरू हुआ और आज तक चलता रहा है । परन्तु उसका अलग कोई नाम नहीं था । किसी ने घर पर अध्ययन करके एकाएक हाइस्कूल की परीक्षा दे दी । याने उसने प्राइमरी में कभी नाम नहीं लिखाया । इसका यह अर्थ कैसे करें कि उस लड़के ने वर्णमाला सीखी ही नहीं ।

आज तक जैन सम्प्रदाय में जिन साधु साध्वियों ने महाव्रतों का पालन किया है वे सब अणुव्रत से होकर ही गुजरे होंगे । इसकी अपेक्षा ऐसे लोग होंगे ही जो महाव्रत तक नहीं पहुँच सके परन्तु

अणुव्रत का पालन किया होगा। जैन ही क्यों? जैनेतर भी। दुनिया भर में जिसने भी अहिंसा आदि गुणों को ग्रहण किया होगा वे सब अणुव्रत के रास्ते से ही आगे बढ़े होंगे। आचार्य तुलसी ने साधारण-सा फ़र्क किया। उन्होंने अणुव्रत को भी एक ठहराव बना दीया। यानी इसका एक स्वतंत्र मूल्य स्थापित कर दिया। इस से सफर करने वाले लोगों को हिम्मत आई है। रास्ता निर्जन था, जिस के दोनों छोरों पर केवल दो ठहराव थे। एक ओर था यात्रा शुरू करने का स्थान तो दूसरी ओर था महाव्रतों का मुकाम। लोग सफर करने से पहले मुकाम की दूरी देखते थे। अपनी शक्ति का अनुमान लगाते थे। रास्ते में ठहराव नहीं था। इसलिए मुकाम पर पहुँचने का पक्का विश्वास होने के बाद ही सफर शुरू करते थे। इस से स्पष्ट है कि उस हालत में बहुत सारे लोग यात्रा शुरू ही नहीं करते थे। दोनों छोरों पर दो वर्ग चलते रहे। दोनों को जोडने, निकट लाने का कोई साधन नहीं था। आचार्य श्री ने अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा इस कमी को समाप्त कर दिया। मंजिल दो भागों में बंट गया। दूरी घट गयी। अब लोगों में आगे बढ़ने की हिम्मत आ गई। एक मंजिल तक चलने की हिम्मत कर आगे बढ़ते हैं। पहला मंजिल पूरा होता है तो दूसरा नजदीक दिखाई देता है? परंतु जो एक मंजिल तक ही पहुँच कर रह जाते हैं वे भी अपने और समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं।

वैसे तो धर्म मात्र में जाति भेद आदि के लिए स्थान नहीं

है, फिर भी हर धर्म एक सम्प्रदाय का रूप बन गया है। इस के पालन करने वाले लोग आचरण गत कम, वंशगत अधिक हैं। जमाने से चले आ रहे इन लोगों के व्यवहार के कारण नये लोगों के दिल में घृणा पैदा हो गयी है। आज पढ़े लिखे लोगों की हालत अजीब है। वे किसी भी धर्म को ढोंगियों का जमात मानते हैं। जिस सम्प्रदाय में वे खुद पैदा हुए हैं उस के प्रति भी सद्भावना नहीं है। दूसरी ओर मध्यम वर्ग खुद का आचरण चाहे जैसा करें, अपने संप्रदाय की ध्वजा थामे हैं। उस ध्वज की रक्षा के लिए वह तलवार का भी उपयोग करता है। ऐसे समय में कोई सच्चा सुधारक आता है। वह किसी सम्प्रदाय का असली रूप सामने रखता है। लोगों का आह्वान करता है। परन्तु लोगों को विश्वास ही नहीं होता है। फिर वह हार कर व्यक्तिगत मुक्ति का प्रयास करता है। आज समाज में नयी चिन्तन धारा फूट रही है। नये नये लोग सामने आ रहे हैं। विज्ञान नवीनता की ओर आकर्षित कर रहा है। ऐसे समय में कोई भी अक्ल वाला नेता अपने युगानुकूल सिद्धान्त को पुरानी परम्परा में जोड़कर श्रम करने की कोशिश नहीं करेगा। वह जो कुछ कहना चाहेगा उस के लिए नया प्लेटफार्म बनाना ही होगा। आज की हालत में नये प्लेटफार्म से पुरानी बातें सुनने को हजारों लोग मिलेंगे। पुराने प्लेटफार्म से नयी बातें सुनने को शायद ही कोई मिले। ऐसे कई पहलू थे जिनको देखते हुए आचार्य श्री को अणुव्रत को जन्म देना पड़ा। तेरा पथ के ही कई लोगों

ने अणुव्रत आन्दोलन को तेरा पथ से भिन्न बताया। अणुव्रत आन्दोलन से तेरा पथ को नुकसान होने की सभावना भी प्रकट की। इस कल्पना का आधार भावना का अविवेक या चिन्तन का अभाव ही कहा जायगा। मैं या मुझ जैसे और भी हजारो लोगो का विचार तो सब को ग्राह्य नहीं होगा। फिर भी मेरी दृष्टि मे अणुव्रत के विकास में अगर तेरा पंथ का विसर्जन भी हो जाता तो उसमें कुछ नुकसान होने को नहीं था। नाम बदल जाता लेकिन काम और प्रतिष्ठा बढ़ जाती। लेकिन खैर, वह सोचने की आवश्यकता नहीं है, जो कुछ हुआ उस पर ही विचार करना है। तेरा पंथ का सिद्धान्त भी बहुत उदार है। उसका भी अपना महत्व तो है ही।

वैचारिक दृष्टि से तेरा पथ सतत प्रवाहिनी नदी है। पानी जब अधिक होता है तो नदी दोनों किनारों में फैल जाती है। इसके फैलाव से किनारा उपजाऊ बनता है। ताल तलैये जल से पूर्ण हो जाते हैं। परन्तु इस फैलाव से मूल प्रवाह का कुछ नुकसान नहीं होता है। समय पर नदी अपने किनारो को सीचती है। यह उसकी विशेष उपयोगिता है। ऐसा नहीं होता है तो भी नदी का उपयोग तो होता ही है, परंतु वह उपयोग सीमित रहता है। अणुव्रत नदी का फैलाव है। किनारे को उपजाऊ बनाने का साधन है। तेरा पथ और अणुव्रत को ठीक से समझ लेने के बाद कोई शका का स्थान ही नहीं रहता है।

अणुव्रत कब ?

बच्चो ! अणुव्रत आन्दोलन का प्रारंभ तो एक छोटी सी घटना से होता है। परंतु पूर्व भूमिका रखने पर ध्यान में आता है कि घटना चाहे छोटी हो चिन्तन सूत्र लम्बा है।

छापर (राजस्थान का एक छोटा सा कस्बा) में आचार्य श्री का मुकाम था। आपसी चर्चा में एक सज्जन बोल रहे थे—"आज के जमाने में नैतिकता कोई रख ही नहीं सकता"। आचार्य श्री ने सुना और चिंतन किया। व्याख्यान में घोषणा की कि—"ऐसे २५ आदमी चाहिए जो अनैतिकता के विरुद्ध अपनी ताकत लगा सकें। इस में आनेवाले खतरों को झेलने की तैयारी रखें।" सोच विचार के बाद एक एक कर २५ लोगों ने अपना नाम दिया। वातावरण में एक नया उत्साह आ गया। विचार विमर्श शुरू हुआ। काम की रूप रेखा बनी। नियम संहिता बने। मुनि श्री नागराज जी ने नियमों की संहिता तैयार की। नाम रक्खा गया "आदर्श श्रावक संघ"। नाम से ही स्पष्ट है कि यह योजना पहले केवल तेरा पंथी श्रावक वर्ग तक सीमित था। लेकिन सारे समाज को छोड़कर अगर कुछ श्रावकों का नैतिक उत्थान हो जाता है तो इसे एयर कंडिशन रूम ही कहना पड़ेगा। सर्व साधारण को क्या लाभ? चिंतन चला। सर्व साधारण के लिए रूप-रेखा बनायी गयी। सं० २००५ में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को अणुव्रत संघ का जन्म हुआ। सरदार

[illegible] में [illegible] दिन आ[illegible] ने [illegible]

कुछ दिनों में अनुभव आया कि आम जनता ने इसका स्वागत किया। फिर ऐसे आम लोगों के आन्दोलन के लिए संघ शब्द छोटा पड़ता था। आखिर संघ की जगह आन्दोलन शब्द को प्रतिष्ठित किया।

प्यारे बच्चो! अब इस भाग को समाप्त करना चाहूँगा। आचार्य श्री के विषय में अन्य बातें अगले चरण में पढ़ने वाले हो। उसमें विशेष जानकारी मिलेगी ही। फिर भी यहाँ मोटे तौर पर आचार्य श्री के विशेष कामों की जानकारी देता हूँ।

वर्षांत में चातुर्मास के सिवा सतत् पद-यात्रा चालू रहती है। तीस वर्षों के आचार्य काल का आनुमानिक हिसाब हम देखेंगे। वैसे आचार्य श्री २५००० मील की यात्रा तय कर ली है, यह एक आम अंदाज है। यह अंदाज एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी का योग है। लेकिन हर पड़ाव पर भी आचार्य श्री को मीलों का चक्कर लगाना होता है। उस हिसाब से देखें तो, हर वर्ष कम से कम ६ महीने यात्रा का मानें और हर रोज का औसत १० मील हो तो कुल ५४००० मील की पद-यात्रा हुई। हर रोज अगर २०० नये लोग व्याख्यान सुनी हो तो इसका आंकड़ा ४३२०००० आता है। (चूँकि व्याख्यान वर्ष भर चलता है) दर्शनार्थियों की संख्या अगर पाँच गुणा माने तो २१६००००० होता है। यह आंकड़ा कुछ छोटी नहीं है। दुनियाँ के पचासों देश इस से कम

आबादी वाले हैं। इसामसीह, हजरत मोहम्मद पैगम्बर, बुद्ध या भगवान महावीर का जन सपर्क इस से शतास से अधिक नही हुआ होगा। आज उनके अनुयाइयों की सख्या व्यापक हो गयी है।

साहित्य के क्षेत्र में भी आचार्य श्री ने क्राति कर दी है। स्वयं आचार्य श्री ने राजस्थानी, सस्कृत और हिन्दी में अनेक पुस्तके लिखी हैं। विषय की भिन्नता इतनी कि लगभग सभी क्षेत्रो मे प्रवेश हो गया है। अन्य साधु-साध्वियों ने भी काफी लिखा है। यहाँ आचार्य श्री की कुछ रचनाओं की सूची देता हूँ, जिसमें गद्य और पद्य दोनों हैं।

राजस्थानी	हिन्दी
श्री कालू यशोविलास	आषाढ़ भूति
माणक महिमा	भरत मुक्ति
श्री कालू उपदेश वाटिका	अग्नि परीक्षा
गज सुकुमाल	श्रद्धेय के प्रति
सुकुमालिका आदि	अणुव्रत गीत आदि

सस्कृत

जैन सिद्धात दीपिका

भिक्षु न्याय कर्णिका

कालू कल्याण मंदिर स्तोत्रम

कर्त्तव्य षड्विंशिक

शिक्षा पण्णवति आदि

उनके अनेक प्रवचनों को भी सकलित करके साहित्य का अंग बना दिया गया है। इस समय आगम ग्रन्थों का शोध कर रहे हैं। उसमें से दस ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

अपने विहार काल में वे पंडित नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद, जय प्रकाश नारायण आदि राजनैतिक नेताओं से लेकर श्री विनोबाजी, दादा धर्माधिकारी, काका कालेलकर आदि अनेकों अध्यात्मिक नेताओं से मिले हैं। उन से विचार विमर्श किया है। अपनी बात बताई और उनका दृष्टिकोण समझा है। साधु साध्वियों की संख्या लगभग डेढ गुनी हो गई हैं। परन्तु मुख्य बात संख्या की नहीं योग्यता की है। इस मामले में वर्तमान संघ सदस्य बहुत आगे हैं।

प्यारे बच्चो! यह भाग तुम्हें कुछ कम रुचिकर लगा होगा। लेकिन कई बातों की जानकारी इससे मिली होगी। मन लगने के साथ साथ ज्ञान वृद्धि भी आवश्यक है। अब जो लिखने जा रहा हूँ उसमें घटनाओं का आधार लेना पड़ेगा। इसलिए सरस होगा। इस के पहले कि मैं इसे समाप्त करूँ, —हम चाचा नेहरू को याद कर लेंगे। आज उनकी तीसरी पुण्यतिथि है।

"अणुव्रत आन्दोलन की गतिविधियों को मैं जानता रहूँ, ऐसा हो तो बहुत अच्छा रहे। आप नन्दा जी से चर्चा करते रहिए। मुझे उनके द्वारा जानकारी मिलती रहेगी। मेरी उस में दिलचस्पी है।" ये शब्द हैं करोड़ों बच्चों के चाचा के। आज वे हमारे बीच नहीं रहे, परंतु जिस चाचा ने अपनी अस्थि भस्म भी

अपने लाड़ले भतीजों के कल्याय में लगा दीया, उन्हें कौन भुला सकता है। इस देश के बच्चों ने उस पानी को पिया है, उस अन्न को खाया है जिस में चाचा की पवित्र भस्मी मिली थी। यहाँ का बच्चा-बच्चा शान से कह सकता है कि मैंने भी चाचा का भस्म पिया हूँ। लेकिन क्या हम चाचा के रास्ते चल रहे हैं? आज छोटी-छोटी बातो पर हिंसक उपद्रव हो रहे हैं। माना कि विद्यार्थियों के साथ भी ज्यादतियाँ हो रही हैं। परंतु अपने प्यारे चाचा के नाम पर क्या हम इतना भी सहन नहीं कर सकते? क्या चाचा के सपनों का भारत बनाने के लिए हमें कुर्बानी नहीं करनी चाहिए? आज से ठीक तीन साल पहले उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच से उठ गया। अब हमारा दायित्व है कि हम माँ की दूध की तरह उनकी भस्मी की लाज रखें।

तो प्यारे बच्चो! आओ हम सब मिलकर चाचा का प्रिय आन्दोलन अणुव्रत के छोटे-छोटे नियमों का सकल्प लें इस के माध्यम से आत्म-शक्ति जागृत 'करके नये भारत का, नये विश्व का, जिस के लिए नेहरू जी जीवन भर संघर्ष करते रहे,— निर्माण करें।

मात्र तीन दिन में यह भाग समास हुआ। पण्डित जी के पुण्यतिथि पर उनका ही प्रिय विषय अणुव्रत चर्चा से युक्त यह किताब तुम्हारी ओर सेउन्हीं को समर्पण करता हुआ इस भाग से विदा।



डायरी के पन्ने

28 मई 1967 ---- : तो क्या मैं भी वैसा ही करूँ ?

वैसा करने से परिणाम बहुत बुरा आयेगा। फिर मैंने जो जीवन स्वीकारा है, उसकी जिम्मेदारी भी तो है। सेवक बनना बहुत कठिन है। सेवक के लिए हनुमान का उदाहरण रखना चाहिए। विद्या, बल, बुद्धि, सब में निपुण। लेकिन सब कुछ राम के लिए समर्पित। इस समर्पण के लिए कठिन साधना चाहिए।

साधक के लिए कौन दोस्त और कौन दुश्मन! मुझे भी अभ्यास करना चाहिए कि मन में सब के लिए प्रेम ही प्रेम भर जाय। हमारे लिए अगर किसी के मन में नफरत है तो वह भी किसी परिस्थिति के कारण है। उनके लिए अगर मेरे मन में प्रेम उमडता रहेगा तो एक न एक दिन उनका हृदय बदल जायगा। मेरे लिए हर मनुष्य, हर वक्त पूज्य ही होना चाहिए। संत तुलसीदास की निम्न चौपाई मेरे जैसो का सबल है —

परहित हानि लाभ जिन्ह केरे ।
उजरे हरष विषाद बसेरे ।
जे पर दोष लखहि सहसाखी ।
परहित घृत जिन्हके मन माखी ।

पर अकाजु लगि तनु परिहरही ।
जिमि हिम उपल कृषी दल गिरही ।
बचन बज्र सम सदा पिआरा ।
सहस नयन परदोष निहारा ।
सिया राम मय सब जगजानी ।
करौं प्रणाम जोरि युग पानी ।

अर्थात्—दूसरों को हानि पहुँचाने में ही जिन्हें लाभ दिखता है। जिन्हें दूसरों के नुकसान से खुशी और फायदे से दुःख है। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों की भलाई रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान ललचाता है। जैसे ओले खेती को नुकसान पहुँचाकर खुद भी गल कर समाप्त हो जाते हैं, वैसे ही जो जान देकर भी दूसरो को नुकसान पहुँचाते हैं, जो दूसरों के अवगुणों को बढ़ा चढ़ा कर कठोर भाषा में बखान करने में ही आनन्द अनुभव करते हैं, मैं उन लोगों को भी तथा संसार के प्राणी मात्र की वन्दना भगवत् भाव से करता हूँ। मुझे सारा विश्व सीता राम मय लगता है।

मेरे दोस्तों ! पिछली किताब में "जीवमात्र से मेरी मैत्री है—" ऐसा वाक्य आया है। इसलिए मुझे लगा कि तुम बच्चे क्यों रहो ? क्यों न हम मित्र बन जायें। सो अब मैं तुम्हें दोस्त ही कहूँगा।

हाँ तो दोस्तो! " इस भाग में पढ़ना है —" आचार्य श्री जब व्यापक बने।" अर्थात् उनका कार्य - क्षेत्र और विचार - क्षेत्र व्यापक बना। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए देखना होगा कि आचार्य श्री क्या करते हैं? कर्म की विविधता ही उनके व्यापकता का बोध करा सकती है। करने का अर्थ सामान्यतः शरीर से करने वाले कर्म से लिया जाता है। लेकिन हम यहाँ मन, वाणी और शरीर से होने वाले कर्म को करना मानेंगे। अब यह विषय जटिल हो जाता है। वाणी और काया से होने वाले कर्म को हम देख सकते हैं। अत लिखना भी आसान है। परन्तु मन का मामला टेढ़ा है। मन से कौन क्या कर रहा है, कैसे समझा जाय? हम वाणी और शरीर के काम पर से ही अनुमान लगा सकते हैं। लेकिन अनुमान आखिर अनुमान ही होगा। एक मिसाल दे दूँ।

बिहार में भूदान पदयात्रा कर रहा था। एक खेत में मजदूर तेजी से हल चला रहा था। वह कील लगा हुआ डंडा बैलों को चुभाता जाता और गाली बकता जाता। बैलों के पुट्ठे से खून निकल रहा था। खेत में एक तरफ चिंटियों की पांती जा रही थी। सब के मुँह में सफेद - सफेद दाने जैसे अण्डे थे। हल उस जगह को भी चीरता हुआ निकल गया। बैल के खुरों, मज़दूर के पैरों और हल से उमडने वाली मिट्टी ने मिलकर हजारों चींटियों को कुचल दिया। बैलों और चींटियों की दशा देखकर मैं काँप गया। मैंने हलवाहे से कहा—" भाई, जरा धीरे चलाओ और जहाँ तक हो

सके वहाँ तक इन चींटियों को बचाओ।" हलवाहे ने उत्तर दिया—"बाबूजी मुझे भी दया आती है। मैं भी ऐसा करना नहीं चाहता हूँ। परन्तु महाराज जी (मठाधीश, जमीन मालिक) ने जो काम बता दिया है, उसे पूरा नहीं करूँ तो रोटी के बदले गाली खानी पड़ेगी।" मैं सुनकर चुप हो गया।

हलवाहा वाणी और शरीर से क्रूर कर्म कर रहा था। परतु उसका मन इसकर्म में शरीक नहीं था। अब अगर उस के बाहरी आचरण पर से अनुमान लगायें तो यह निर्णय गलत ही होगा कि हलवाहा निर्दयी था। इसलिए किसी के कर्म का लेखा जोखा करना न तो संभव है और न उचित ही। फिर आचार्य श्री जैसे महापुरुषों के विषय में तो और भी मुश्किल है। लेकिन लिखने के दुरूह कार्य को करने का तय कर ही लिया है, तो समझ के अनुसार लिखूँगा ही। संतों को गुस्सा तो आता नहीं, सो डरने की बात मन से जाती रही है।

जो बालक कछु अनुचित करही।
गुरू पितु मातु मोद मन भरही।

मेरे दोस्तो! 'क्या करते हैं'—जानने का आसान तरीका है घटनाओं का वर्णन। उस पर से अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अनुमान लगाने की भी छूट रहती है। मेरी जिम्मेदारी भी कम हो जायगी। तो अब उन कुछ घटनाओं का जिक्र सुनो,

आचार्य श्री जब व्यापक बने

परनिन्दा से रहना दूर :—दूसरे सम्प्रदाय के एक साधु आचार्य श्री से मिलने आये। निश्चित समय पर बात-चीत शुरू हुई। साधु अपने गुरू से असंतुष्ट थे, अतः उनकी निन्दा करना शुरू कर दी। वक्ता का अनुमान था कि विरोधी सम्प्रदाय की शिकायत सुनने में आचार्य श्री रुचि लेंगे। सामान्यतः ऐसा होता भी है। लेकिन आचार्य श्री परनिंदा में रस कैसे लेते? सो बोले—"मेरा अनुमान था कि आप दार्शनिक चर्चा करेंगे। किसी की शिकायत सुनने को मेरे पास समय नहीं है।" बात-चीत वहीं खत्म हो गई। यानी परनिन्दा सुनना पसंद नहीं करते – आचार्य श्री।

उदार हो तो ऐसा :—आचार्य श्री का दिल-दिमाग व्यापक है। किसी भी सम्प्रदाय के लोगों से बातें करना पसंद करते हैं। मंदिर, मस्जिद कहीं भी जाने में एतराज नहीं है। आचार्य श्री पदयात्रा कर रहे थे। आगरा आ गया। वहाँ स्थानक वासियों की संख्या अधिक है। उन लोगोंने आचार्य श्री को स्थानक (साधुओं के रहने आदि के निमित्त बना मकान) में पधारने की प्रार्थना की। उन लोगों के गुरू श्री अमरचंद जी महाराज पहले से ही वहीं थे।

आचार्य श्री तुरत अन्दर चले गये। उपाध्याय श्री अमरचंद जी बहुत खुश हुए। बोले— "मैं समझता था, आप अन्दर नहीं आयेंगे। आपकी उदारता सराहनीय है। पहले मैंने आप के विषय में तो सुना था, देख कर प्रसन्नता हुई।" फिर बात चीत शुरू हुई। उपाध्याय जी ने कुछ दिन पहले 'अहिंसा दर्शन' नामक पुस्तक लिखी थी। उस में एकाध स्थान पर तेरा पथ की आलोचना थी। आचार्य श्री उनका ध्यान उस तरफ खींचना चाहते थे। परन्तु पता चला कि दूसरे संस्करण में वह अंश निकाल दिया गया है।

दोस्तो! क्या ख्याल है तुम्हारा? आचार्य श्री अन्य संप्रदाय के लोगों से मिलकर बातें करने में प्रसन्नता ही अनुभव करते हैं। वास्तव में धर्म में ईर्षा को स्थान ही नहीं है। उदारता अपने आप में एक धर्म है। आचार्य श्री की इस उदारता के कारण विरोधी भी प्रशंसक बन गये हैं।

उदारता का असर —आचार्य श्री बंबई पहुँचे। वहाँ मूर्ति पूजक संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य विजयवल्लभ सूरिजी से मिलने गये। उस मिलन से बंबई के मूर्ति पूजक समाज पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। अन्य लोगों की प्रतिक्रिया भी अच्छी रही।

खोदने वाले खुद गिरे —नवलगढ़ में यात्रा चल रही थी। रात में बाजार में व्याख्यान हुआ। शयन के लिए दिगम्बर मंदिर में गये। अगले दिन भी वहाँ व्याख्यान देने के

का आग्रह था, सो स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन समय पर सभा-स्थान पर पहुँचे। वहाँ जाने पर पता चला कि उसी स्थान पर एक वैष्णव पंडित का व्याख्यान होने वाला है। "यद्यपि एक मच से अनेक सप्रदाय के लोग व्याख्यान देते हैं, परन्तु यह सब गुप्त क्यों रक्खा गया? अवश्य ही उसके पीछे द्वेष बुद्धि काम कर रही है।" ऐसा सोचकर आचार्य श्री लौट गये। साधुओं से बोले—"चलो, मंदिर में ही स्वाध्याय करेंगे"।

उधर वैष्णव साधु को भी आचार्य श्री के व्याख्यान का पता नहीं था। बाद में सुने तो दंग रह गये। उन्होंने आचार्य श्री के पास अपने आदमी भेज कर परिस्थिति की जानकारी दी और वापस आकर वहाँ भाषण देने के लिए आग्रह किया। परंतु आचार्य श्री ने कहा—"मेरा व्याख्यान तो कल भी हुआ था। आज पंडितजी का सुने तो अच्छा हो।"

वैष्णव पंडित को समाधान नहीं हुआ। फिर से खबर भेजी—"मैंने अनजान में वहाँ जाना तय किया था। अब मैं वहाँ व्याख्यान नहीं दे सकता। जिन्हें मेरी सुनना होगा – वह कुटिया में आयेंगे। आप अवश्य वहाँ व्याख्यान करें।" बाजार के अन्य प्रतिष्ठित लोगों ने भी आग्रह किया। फिर आचार्य श्री व्याख्यान देने गये। जिन्होंने दो संतों को गिराने हेतु गढ़ा खोदा था, वे खुद गिरे।

प्यारे दोस्तो ! राम भरत के बीच सत्ता का आकर्षण और माँ का षड्यन्त्र भी निष्फल रहा था । फिर यहाँ तो मात्र एक व्याख्यान की बात थी । दो साधु भला कैसे झगड़ा करते ? और झगड़ा करते तो दोनों साधु कैसे रहते ?

दोस्तो ! ऐसी घटनाओं का जिक्र करें तो केवल आचार्य श्री की उदारता का उदाहरण ही किताब की सीमा तोड़ देगी । उदारता एक ऐसा गुण है जो सामान्य मनुष्य को भी ऊँचा उठा देती है । सामने वाले के दिल को ही जीत लेती है । फिर विरोध कौन करें ? यहाँ एक दो उदाहरण पेश करता हूँ ।

बापू और डोनाल्डग्रम —देश में आजादी की लड़ाई जवानी पर थी । सेवाग्राम में कॉंग्रेस कमिटी की बैठक चल रही थी । उसी समय इग्लैंड का एक पढ़ा लिखा नौजवान बापू से मिलने पहुँचा । उस समय बापू बैठक में भाग लेने जा रहे थे । नौजवान को भी साथ कर लिया । बैठक में अनेक विषयों पर चर्चा चली । आखिर एक प्रस्ताव आया कि 'अंग्रेजों से भारत छोड़ कर चले जाने को कहेंगे ।' इस प्रस्ताव के साथ ही बापू ने नौजवान से कहा—"अब आप का यहाँ से चला जाना ही ठीक रहेगा ।" नौजवान उठकर चलदिया । उस के दिमाग में अनेक शकायें घूमने लगी । 'लोग कहते हैं कि गाँधीजी के मन में किसी के प्रति नफरत नहीं है । वे कोई बात किसी से छिपाकर नहीं करते । उनके दिल में

अंग्रेजों के लिए भी प्रेम है। परन्तु व्यवहार में तो उल्टा दिख रहा है! सब झूठ ...। इतने में उसका कमरा आ गया। वहाँ टेबल पर नास्ता रक्खा था। साथ ही एक पुर्जा भी रक्खा था। लिखा था—'आप दूर से आये हैं। भूख लगी होगी। खाना खाकर फिर से काँग्रेस की बैठक में आ जाइये।'

"म० क० गाँधी"

इस व्यवहार से नौजवान के सारे संदेह हवा हो गये। वह इतना प्रभावित हुआ कि आजीवन बापू का भक्त बन गया। उनका नाम है मि० डोनाल्डग्रूम। वे इस समय इंग्लैंड में क्वेकर सम्प्रदाय के सेक्रेटरी हैं। आज भी वे विनोबा जी के कामों में बहुत मदद करते हैं। विनोबा जी ने उनका नाम रक्खा है 'लोक बन्धु'। इस आश्रम में भी (बेंगलूर में) बहुत दिनों तक रह चुके हैं। हम आज भी उनको आश्रम का एक सदस्य मानते हैं।

भगवान पर पदाघात :—कहते हैं एक बार भृगु ऋषि को विष्णु भगवान पर गुस्सा आ गया। सीधे वैकुण्ठ पहुँचे। क्रोध में जल रहे थे। सो भगवान की छाती पर एक लात जमा दी। भगवान शांति से उनका पैर दबाने लगे। बोले—"आप के चरण कितने कोमल हैं। इस कठोर हृदय पर आघात करने से बहुत पीड़ा हो रही होगी।" बेचारे भृगुजी के क्रोध का भूत पल भर में भाग गया। भगवान से क्षमा माँगने लगे। लात खाकर भी उदार बनने

वाला ही भगवान हो सकता है। हम जितना उदार बनेंगे उतना ही आगे बढ़ेंगे।

निष्ठा :

मेरे प्यारे दोस्तो! उदारता बरतने में भी निष्ठा बनाये रखना चाहिए। भावना के अतिरेक में बहना ठीक नहीं होता है। मैं अपने एक दोस्त को जानता हूँ। समाज सेवा ही उनके जीवन का धर्म है। वे बापू के भक्त हैं और अहिंसा में पूर्ण निष्ठा है। हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए वे जान है की बाजी लगा देते हैं। इस एकता की आवश्यकता से भला इन्कार किसे है? परन्तु अपनी उदारता दिखाने के लिए मेरे वे मित्र मुस्लिम भाईयों के साथ मांसाहार भी कर लेते हैं। (यह उचित है या अनुचित, सो मैं नहीं समझता) उनका अपना विचार है। मेरा मानना है कि यह भावना का अतिरेक है। आचार्य श्री तुलसी ने उदारता और निष्ठा में ताल मेल बनाये रक्खा है। महापुरुषों के जीवन में हम ऐसा ही पाते हैं। यही उनकी खूबी है।

खुला सर दरगाह में —एक बार यात्रा करते करते आचार्य श्री अजमेर पहुँचे। अजमेर का दरगाह शरीफ दुनिया भर में प्रसिद्ध है। हर साल दूसरे देशों से मुसलमान भाई वहाँ तीर्थ करने आते हैं। आचार्य श्री दरगाह देखने चल पड़े। अन्दर जाने के पहले अधिकारी ने वहाँ का नियम बताया। नियम के मुताबिक

खुला सर दरगाह में नहीं जा सकते थे। इधर जैन साधु सरपर कपड़ा नहीं रखते हैं। आचार्य श्री बिना कुछ कहे लौट चले। उनके इस तरह मौन लौटने का प्रभाव अधिकारियों पर हुआ। वे तत्काल सामने आ गये। बोले—"आप तो स्वयं पहुँचे हुए फकीर हैं। अतः आप पर नियमों को लागू करना आवश्यक नहीं है। आप मजे में अन्दर जा सकते हैं।" आचार्य श्री लौटकर श्रद्धा पूर्वक अन्दर चले गये। पू० विनोबा जी जब वहाँ गये थे तब भी कुछ ऐसी ही घटना घटी। वहाँ स्त्रियों का जाना भी निषेध है। परन्तु विनोबा जी के साथ बहनो को जाने दिया गया। आचार्य श्री मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा कहीं भी श्रद्धा से जाते हैं। लेकिन अपनी मर्यादाओं की रक्षा अवश्य करते है। मर्यादा लाघकर उदारता दिखाने में खतरे भी हैं। रामायण की एक घटना सुनो .—

मर्यादा तोड़ने का फल :—राम, सीता और लक्ष्मण जंगल में रह रहे थे। एक दिन राम शिकार के पीछे दूर निकल गये। आशका के कारण सीता ने लक्ष्मण को भाई की मदद करने के लिए जाने का आग्रह किया। लक्ष्मण ने जाते समय सीता जी के चारों ओर एक रेखा खीच दी। रेखा से वाहर नहीं आने की चेतावनी देकर वे चले गये। इधर रावण साधु वेष में सीता से भिक्षा माँगने पहुँचा। "घेरे के अन्दर का भिक्षा अपवित्र होता है"—ऐसा कहकर भिक्षा लेने में इन्कार कर दिया। सीता स्वभाव

वाला ही भगवान हो सकता है। हम जितना उदार बनेंगे उतना ही आगे बढ़ेंगे।

निष्ठा

मेरे प्यारे दोस्तो! उदारता बरतने में भी निष्ठा बनाये रखना चाहिए। भावना के अतिरेक में बहना ठीक नहीं होता है। मैं अपने एक दोस्त को जानता हूँ। समाज सेवा ही उनके जीवन का धर्म है। वे बापू के भक्त हैं और अहिंसा में पूर्ण निष्ठा है। हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए वे जान है की बाजी लगा देते हैं। इस एकता की आवश्यकता से भला इन्कार किसे है? परन्तु अपनी उदारता दिखाने के लिए मेरे वे मित्र मुस्लिम भाईयों के साथ मांसाहार भी कर लेते हैं। (यह उचित है या अनुचित, सो मैं नहीं समझता) उनका अपना विचार है। मेरा मानना है कि यह भावना का अतिरेक है। आचार्य श्री तुलसी ने उदारता और निष्ठा में ताल मेल बनाये रक्खा है। महापुरुषों के जीवन में हम ऐसा ही पाते हैं। यही उनकी खूबी है।

खुला सर दरगाह में —एक बार यात्रा करते करते आचार्य श्री अजमेर पहुँचे। अजमेर का दरगाह शरीफ दुनिया भर में प्रसिद्ध है। हर साल दूसरे देशों से मुसलमान भाई वहाँ तीर्थ करने आते हैं। आचार्य श्री दरगाह देखने चल पड़े। अन्दर जाने के पहले अधिकारी ने वहाँ का नियम बताया। नियम के मुताबिक

खुला सर दरगाह में नहीं जा सकते थे। इधर जैन साधु सरपर कपड़ा नहीं रखते हैं। आचार्य श्री बिना कुछ कहे लौट चले। उनके इस तरह मौन लौटने का प्रभाव अधिकारियों पर हुआ। वे तत्काल सामने आ गये। बोले—"आप तो स्वयं पहुँचे हुए फकीर हैं। अतः आप पर नियमों को लागू करना आवश्यक नहीं है। आप मजे में अन्दर जा सकते हैं।" आचार्य श्री लौटकर श्रद्धा पूर्वक अन्दर चले गये। पू० विनोबा जी जब वहाँ गये थे तब भी कुछ ऐसी ही घटना घटी। वहाँ स्त्रियों का जाना भी निषेध है। परंतु विनोबा जी के साथ बहनो को जाने दिया गया। आचार्य श्री मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा कहीं भी श्रद्धा से जाते हैं। लेकिन अपनी मर्यादाओं की रक्षा अवश्य करते है। मर्यादा लाघकर उदारता दिखाने में खतरे भी हैं। रामायण की एक घटना सुनो :—

मर्यादा तोडने का फल :—राम, सीता और लक्ष्मण जंगल में रह रहे थे। एक दिन राम शिकार के पीछे दूर निकल गये। आशंका के कारण सीता ने लक्ष्मण को भाई की मदद करने के लिए जाने का आग्रह किया। लक्ष्मण ने जाते समय सीता जी के चारों ओर एक रेखा खीच दी। रेखा से बाहर नहीं आने की चेतावनी देकर वे चले गये। इधर रावण साधु वेष में सीता से भिक्षा माँगने पहुँचा। "घेरे के अन्दर का भिक्षा अपवित्र होता है"—ऐसा कहकर भिक्षा लेने में इन्कार कर दिया। सीता स्वभाव

से ही धर्म निष्ठ और उदार थी,—रेखा पार करके भिक्षा देने आ गई। फिर तो रावण सीता को जबर्दस्ती लेकर लंका चला गया। इसका परिणाम भयंकर युद्ध में सामने आया।

दोस्तो! अगर सीता उदारता के अतिरेक में मर्यादा रेखा को पार नहीं करती तो रावण के हाथ जाने से बच जाती।

फादर विलियम – एक संयोग : —बम्बई का विहार था। स्थान के निकट ही चर्च था। कुछ साधु चर्च जाकर व्याख्यान सुने। चर्चायें की। चर्च जाकर चर्चा करने से पादरी फादर विलियम बड़ा प्रभावित हुए। भावना उठी—"ये लोग इतने उदार है तो इनके आचार्य से मिलना चाहिए।" इसके पहले फादर के नजरों में चंद बदनाम महंत, मठाधीश ही आये थे। उन्हीं को वे भारतीय संत मानते थे। और ऐसे लोगों से मिलने की उत्सुकता नहीं उठती थी। आचार्य श्री से मिलकर जो कुछ देखा, सुना उससे फादर बहुत खुश हुए। फादर को लगा कि वास्तव में यहाँ ईशा के उपदेशों का पालन होता है। उन्होंने अणुव्रत को स्वीकार किया। वे अणुव्रत सम्मेलन में भाग लेते रहे हैं। आज तक अणुव्रत के लिए उनकी निष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

निश्चय हो चुका —उस समय उ० न० ढेबर सौराष्ट्र के मुख्य मंत्री थे। आचार्य श्री भी अहमदाबाद पहुँचे थे। वहाँ प्रथम बार एक दूसरे से मिले। ढेबर भाई प्रभावित हुए। उन्होंने

आचार्य श्री को सौराष्ट्र यात्रा का निमंत्रण दिया । अगर उस समय आचार्य श्री का सौराष्ट्र भ्रमण होता तो ढेवर भाई के सहयोग से काफी काम हो सकता था ।

लेकिन आचार्य श्री का कार्य क्रम तय हो चुका था । उसे बदला नहीं जा सकता था । अतः वह निमंत्रण अस्वीकार करना पड़ा । आचार्य श्री एक बार जो तय कर लेते हैं उस से किसी कारण भी मुकरते नहीं ।

दोस्तो ! बहुत साल पहले की बात है आचार्य श्री ने दक्षिण भारत यात्रा करने की स्वीकृति दे दी थी । उसके बाद प्रतिकूल परिस्थिति के कारण वादा पूरा नहीं हो सका । परिस्थिति अनुकूल कब होगी, यह कोई नहीं जानता है । अत. इस साल दक्षिण भारत भ्रमण का निश्चय करके आचार्य श्री यात्रा पर आगये हैं । निश्चय पर अटल रहने का एक उदाहरण देखो :—

दोस्त से बड़ा वादा :—प्रसिद्ध अमरीकी सैनिक अधिकारी और इतिहासज्ञ विलियम नेपियर की बात है । एक दिन रास्ते में उसने एक गरीब लड़की को रोता देखा । पूछने पर पता चला कि घडा फूट गया है । माँ पीटेगी, इस डर से रोती है । उस दिन नेपियर के पास पैसे नहीं थे । उसने लड़की से कहा—"कल इसी समय यहीं मिलना । घडे का पैसा तुझे मिल जायगा । माँ से कह देना, कल नया घडा जरूर मिलेगा ।" घर जाने पर नेपियर को

एक तार मिला। उसका एक विशेष मित्र अगले दिन आने वाला था। गाडी के आने का समय वही था जो लड़की से मिलने का। नेपिअर सोच में पड गया। आखिर नौकर को दोस्त को लाने स्टेशन भेज दिया और खुद लड़की को पैसा देने पहुँच गया। खैर!

ढेबर भाई के निमत्रण की बात अखबारों में छप गई थी। इसके बाद ढेबर भाई के पास आचार्य श्री के विरोधी साहित्यों का ढेर लग गया। इस बात पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए ढेबर भाई ने कहा —मैं समझता हूँ कि हर काम के आरम में पैसा होता ही है। पैसा हुए बिना कर्म में चमक नहीं आती।"

आलोचना से लाभ —शुरू शुरू में अखबार से लेकर व्यक्तिगत पत्रों तक के माध्यम से आचार्य श्री की आलोचना की गई। विरोधी संप्रदाय से लेकर तेरा पथी भाईयों तक का इस में हाथ रहा। परन्तु आचार्य श्री चुप चाप अपना काम करते गये। किसी भी आलोचना का उत्तर नीचे स्तर पर आकर नहीं दिया। वे कहते रहे—"हमारा काम ही उनके आलोचना का उत्तर है। आलोचना का जवाब प्रत्यालोचना के द्वारा देने के लिए वक्त ही कहाँ है? कई बार इन आलोचनाओं से बड़ा लाभ हुआ। कई लोग अलोचना पढ़कर ही संपर्क में आये। मध्यप्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल श्री मगल दास पकवास, श्री काका कालेलकर आदि का संपर्क में आने का कारण आलोचना ही है। "मुझे जिज्ञासा हुई

कि जहाँ विरोध है वहाँ जरूर चैतन्य है। मृत का कभी कोई विरोध नहीं करता है।" ये शब्द हैं काका साहब के।

दोस्तो! देखा तुमने, आलोचना से भी कितना लाभ होता है। इसलिए कबीर ने तो कहा—

निंदक नियरे राखिये, आगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

आज के आलोचकों को पास बसाने में तो खैर नहीं है। कबीर के जमाने में शायद आलोचकों के मन में द्वेष-ईर्षा नहीं रहता होगा। तभी तो आगन में बसाने की बात बताया। आज के आलोचक तो जान लेने के घात में भी रहते हैं। यह ठीक है कि स्वस्थ्य आलोचना से विकास करने में सहायता मिलती है। एक दत कथा सुनाता हूँ।

मानव कैसे बना? — ब्रह्मा ने ससार के लिए प्राणी निर्माण करने का तय किया। प्राणी बनाने के बाद परीक्षण का यंत्र तो था नही। कोई गुरू भी नहीं था। सो उन्होंने पहले एक आलोचक बनाया। आलोचक को पास बैठाकर सृष्टि रचना आरभ कर दी। कीडे-मकोडे, मछली, मगर, चिडियाँ, छोटे-मोटे जानवर,—एक के बाद एक रचना होती गई। आलोचक सब में दोष निकालता गया। ब्रह्मा भी हर आलोचना के बाद सृष्टि में

सोच समझ कर सुधार करते गये। घोड़ा बनाया तो उसे अप. रक्षा के लिए सींग नहीं है। गाय तेज दौड़ नहीं सकती। हाथं की आँखें छोटी थी, तो सिंह को शाकाहारी होना चाहिए था।— ——। आखिर ब्रह्मा ने अपनीअ तिम बुद्धि लगाकर मनुष्य बनाया आलोचक इस में कोई कमी नहीं देख रहा था। मनुष्य को चूँ. भाषा और बुद्धि का भण्डार मिला था, इसलिए वह किसी भी क. को स्वय पूरा कर सकता था। उधर आलोचक अपनी आदत लाचार था। आखिर उसने एक दोष निकाल ही दिया। ब्रह्मा बोला—" इस के दिल के सामने एक खिड़की होनी चाहिए थी। य दिल में एक बात रखता है और जबान पर दूसरी। इसलिए भविष्य में अविश्वास फैलेगा। यह प्राणी एक दूसरे का दुश्मन हो जायगा और आपस में लड़कर मिट भी जा सकता है।" ब्रह्मा ठहरे बू बेचारे प्रयोग करते करते थक गये थे। झुंझलाकर गुस्से में आलोचव को ही शकर के हवाले कर दिया।

वृद्ध ब्रह्मा अगर थोड़ा धैर्य रखते तो शायद मनुष्य की एव बड़ी कमी दूर हो जाती। याने हमारे दिल के सामने एक खिड़क होती।

मतलब यह है कि आलोचना से साधक को विकास का मौक मिलता है। इसलिए तो साधक आलोचना से घबराते नहीं हैं।

आलोचना होती क्यों है ?

मेरे दोस्तो! मनुष्य उम्र के साथ - साथ अपनी आदतों का गुलाम होता जाता है। उस हालत में वह अपनी परिस्थिति से, चाहे वह जैसा भी हो, निकलना नहीं चाहता है। नौजवान हर पुरानी बात को नापसद करता है। वह हर चीज में अपने जैसी तरुणाई देखना चाहता है। समाज सुधारकों का सर आसमान में और पाँव धरती पर जमा रहता है। वह पुराने से सपर्क बनाये रखता है। उसकी अच्छाई में अपने नये - नये विचारों को जोडते जाता है। पुराने लोगों को इस जोड - तोड से नफरत है, तो जवानों के लिए पुराने आधार पर से निकली बातों को ग्रहण करना असह्य होता है। इसलिए दोनों ओर से सुधारकों की आलोचना होना स्वाभाविक ही है। इस से आचार्य श्री बच कैसे सकते थे! एक रूपक बताता हूँ।

नेताओं का नृसिंहावतार :—हिन्दु धर्म में भगवान के अनेक अवतारों का जिक्र है। उस अवतार क्रम में विकास का सकेत है। पहले मछली, फिर कछुआ, सुअर, नृसिंह, वामन, परसुराम, राम, कृष्ण आदि के रूप में क्रमश: भगवान का अवतार हुआ है। पहले मछली, याने केवल जल में रहने वाला जीव। फिर कछुआ जो जल और जमीन दोनों पर रह सकता है। फिर सूअर जो जमीन पर रहकर भी कीचर से प्यार करता है। इस तरह

भगवान जलचर से जानवार तक आ गये। अब मनुष्य बनने में देर नहीं थी। परन्तु अवतार में एक संधि अवस्था है। तो मनुष्य और जानवार में कैसे कुछ समानता लाई जाय। आखिर वह नृसिंह का रूप हुआ। याने आधा शरीर जानवार का और आधा मनुष्य का। यह इस बात का संकेत था, या पूर्व सूचना कहें कि अब जानवार का वह रूप जाने वाला है जो अब तक था और उस के साथ जुड़ा है वह आने वाला रूप। अर्थात् भविष्य में मनुष्य अवतार की सूचना थी। हुआ भी वही। अगला अवतार वामन का हुआ, जो छोटा मनुष्य था।

पहले के सभी अवतारों और बाद के सभी अवतारों ने अपने वर्तमान काल में ही प्रतिष्ठा प्राप्त की। परन्तु नृसिंहावतार की भयंकरता के आगे कोई टिका ही नहीं। जानवर देव की पूजा करने वालों को मनुष्य का नया चेहरा बुरा लगा तो विकास के उतावले इच्छुकों को जानवर का मिश्रण पसंद नहीं आया। जो इस अवतार के सामने ठहर सका वह था बालक प्रह्लाद। प्रह्लाद न जवान था न बूढ़ा। उसमें न रूढ़ी थी न झूठी आकांक्षा। जो कुछ थी वह थी श्रद्धा।

समाज सुधारक नेताओं को वही पहचानता है जो बालक की तरह निर्विकार हो। जो श्रद्धा से ओत प्रोत हो।

आज जैसे नृसिंह भगवान की पूजा चलती है — वैसे ही

सच्चे धार्मिक नेताओं की पूजा पीछे चलकर होती है। लेकिन शुरू में उन्हें आलोचना का शिकार होना ही पडेगा। होते रहे हैं। आचार्य श्री भी इसका अपवाद नही हैं।

मानव - मानव एक समान

दोस्तो! जैन धर्म का मूल-मंत्र तो मालूम ही है। "प्राणी मात्र से मेरी दोस्ती है"—ऐसा कहने के बाद किसी प्रकार के भेद-भाव को स्थान नहीं रहता है। फिर मनुष्य से मनुष्य घृणा करे यह कैसे सभव हो सकता है। लेकिन दु:ख के साथ लिखना पडता है कि जैन समाज भी वातावरण के प्रभाव से अछूता नही रहा। उस में भी जातिवाद छूआछूत आदि ने जड़ जमा लिया है। अब इस रूढ़ीवाद के पुराने वृक्ष को एक झटके में तो नहीं उखाडा जा सकता! उस पर धीरे धीरे प्रहार करना होगा। विना विचारे वृक्ष काटने वालों का प्राण सकट में पड जाता है। वृक्ष अपने साथ काटने वाले को भी समाप्त कर देता है। आचार्य श्री ने इन सामाजिक बुराइयों के खिलाफ अपनी ताकत लगाई ही है। काम हुआ भी है। विरोध बहुत हुआ है, यह इस बात का प्रमाण है कि काम बहुत हुआ है। आज भी खतरा है, जो बाहर से नहीं दिखता है। बाहर वालों की ओर से विरोध कम है। वास्तव में अब जो खतरा है वह उन निकटस्थ लोगों से जो आचार्य श्री को मानते हैं परंतु जानते नहीं हैं। हम अणुव्रत का प्रचार करने वाले अणुव्रत

मानने से इन्कार नहीं करते और स्वीकार भी नहीं करते। इसे में एक गभीर खतरा मानता हूँ। आचार्य श्री अपनी कुशलता से सबको समाल रहे है।

हरिजनों को हरिशरण:—'छापर' है तो छोटा सा कस्बा, लेकिन तेरा पंथियों का गढ है। आचार्य श्री वहीं ठहरे थे। एक साधु को हरिजन बस्ती में व्याख्यान देने भेज दिया। हरिजन बस्ती में साधु को भेजने का यह पहला अवसर था। साधु के मन में भी शका हो रही थी। गुरू आज्ञा का पालन तो हुआ, परंतु बुद्धि साथ नहीं दे रही थी। व्याख्यान हुआ। हरिजनों ने माँस, मदिरा आदि त्यागने का व्रत लिया। व्याख्यान के बाद साधु के साथ सैकड़ों हरिजन भाई भी आचार्य श्री के दर्शन को पहुँच गये। पहले दिन हरिजनों का इस प्रकार आना था कि सवर्ण लोग भौंचक्के हो गये। आचार्य श्री के सामने सभी हरिजन भाई हाथ जोड़े खड़े थे। किसी तमाशगीर ने व्यग से बोला—"देखते क्या हो, आचार्य श्री का पैर स्पर्श करो।" जन समूह से उठे उस वाक्य से लोग आँखें मलकर उधर देखने लगे। देखते देखते हरिजन भाइयों के हाथ आचार्य श्री के पैरों पर पहुँच गये। आचार्य श्री ने भी मुस्कुराकर उन लोगों को बढ़ावा दिया। लोग देखते ही रह गये। हरिजनों को तो जैसे साक्षात हरिचरण ही मिल गये थे।

यह घटना बाद में कुछ दिनों तक चर्चा का विषय बनी रही।

साधुओं में भी कुछ समय तक काना - फूसी चलती रही। अवश्य ही ऐसे साधु आ० श्री को पहचाने नही होंगे, जिन्हें यह सब बुरा लगा। धीरे - धीरे ये सब बातें सामान्य हो गई।

गाँधीजी को ऐसी मुसीबतों से खूब पाला पडा था। गाँधीजी के कारण ही आज छूत - छात का भाव मृत प्राय हो गया है। अगर राजनैतिक पार्टी वाले जातिवाद के मुर्दे को जिन्दा समझकर उस से लिपटे नहीं होते तो शायद जातिवाद का जनाजा भी निकल गया होता।

महापुरुष ऐसे ही होते हैं:—श्री राम का महत्व धनुष भंग या लंका विजय से नहीं है। वह तो कोई भी बहादुर राजा कर सकता था। राम के जीवन का महत्वपूर्ण पहलू दूसरा ही है। वह पहलू है—अहिल्या उद्धार, केवट से समानता, सबरी का जूठा बे र, बन्दरों से मित्रता, लोकमत के आगे पत्नी का त्याग आदि। इसी पहलू के कारण राम जन - जन में रम रहे हैं।

कृष्ण का जीवन भी देखने योग्य है। गोकुल में रहकर बचपन में रोज ग्वाल वालों के साथ गाय चराना और भोजन करना, स्त्री - पुरुष का भेद किये बिना खेल - कूद में भाग लेना, कुब्जा का उद्धार, अर्जुन का सारथी बनना, यज्ञ में जूठा पत्तल उठाना आदि कृष्ण के जीवन का सार है। इसी के कारण कृष्ण के लिए आज

भी लोगों में आश्चर्य है। महापुरुषों की कसौटी यही है कि उन्होंने सब से नीचे वालों के साथ कैसा व्यवहार किया है।

विचित्र किन्तु सत्य ।

दोस्तो ! चाहे तुम कितनी भी अक्ल की बात करो, आज का कानून तुम्हारे बातों को मान्यता नहीं देगी। क्यों ? क्योंकि उम्र कम है। ऐसा होगा कि एक रात के बारह बजे तक तुम बच्चे रहोगे। लेकिन उस के अगले मिनट तुम जवान बन जाओगे। उस एक मिनट में तुम्हें वे सब कानूनी अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जो पिछले मिनट तक नहीं थे। यह है तो जादू जैसी बात, परन्तु होता ऐसा ही है।

अक्ल का थर्मामीटर —बात वि० स० २००६ की है। उस साल जयपुर में चातुर्मास था। कुछ लोगों की दीक्षा की घोषणा कर दी गई। दीक्षार्थियों में कानून की नजर में कुछ बच्चे भी थे। विरोधियों को मौका मिला। 'बाल दीक्षा विरोधी समीति' बनाई गई। इस दीक्षा विरोध के पीछे आचार्य श्री का विरोध हो रहा था। आचार्य श्री के बढ़ते चरण बहुतों को अखर रहा था। वे उसे रोकना चाहते थे। वास्तव म गति को स्थिरता रोक कर रखना चाहती थी। युग युग से ऐसा संघर्ष चलता आया है। लेकिन हर बार गति विजयी होती आयी है। अगर स्थिरता इतनी सहजता से क्रांति को कुंठित कर सकती तो दुनिया की प्रगति होती ही नहीं। जो भी हो

विरोधी लोग कमर कस कर आगे बढ़े। विज्ञप्ति, पैम्फलेट, प्रचार, सभा आदि के द्वारा जनमत को भ्रमित करने का काम शुरू हुआ। इस विषय पर आचार्य श्री ने सार्वजनिक सभा बुलाई। सभा में बोलते हुए आचार्य श्री ने कहा—"दीक्षा के विषय में उम्र को बीच में लाना अनुचित है। न तो सभी बालक दीक्षा के योग्य हैं और न सबके सब अयोग्य ही। हर उम्रवालों के साथ यही न्याय लागू होता है। दीक्षा में उम्र नहीं, संस्कार, श्रद्धा, बुद्धिमत्ता आदि का महत्व है। बालक को दीक्षित करने का मेरा आग्रह नहीं है। अयोग्य दीक्षा नहीं हो – यह मेरा कहना है। भले ही वह व्यक्ति युवा हो या वृद्ध।" उन्होंने विरोधियों को सामने आकर चर्चा करने का निमंत्रण दिया।

दृढ़ता का असर

विरोधी लोगों से बात करते हुए आचार्य श्री ने कहा—"अगर आप विचार समझा दें तो मैं अपना विचार छोड सकता हूँ। लेकिन केवल वातावरण के बहाव में मैं बह जाने वाला नहीं हूँ।"

इस आपसी मिलन का असर नहीं हुआ। लोग सिद्धान्त का नहीं मनुष्य का विरोध कर रहे थे। इस के लिए बाहर से भाडे के पंडितों को बुलाया गया था। फिर तो सभा आदि में और तेजी आ गई। परन्तु आचार्य श्री की दृढ़ता से वे लोग टूटते जा रहे थे।

मनुष्य का ज्ञान अधकचरा रहता है तो वह प्रवल दलीलों के प्रवाह में बह जाता है। आचार्य श्री को दलील करके अथवा विरोधी प्रदर्शनों आदि से झुकाना मुश्किल था।

हर दूसरे के विचारों पर संदेह करना अज्ञान है तो हरेक का विचार मान लेना महा अज्ञान। औरों के योग्यविचारोंका स्वागत करके अपने विचारों में परिवर्तन करते रहना ही ज्ञानियों का मुख्य लक्षण है। हरेक अवस्था में अपना विवेक जागृत रहना चाहिए। भावना के आवेग में अपनी बात को सही मानना गलत है और गलत मानना भी गलत है। ऐसे अर्धज्ञानियों के विषय में कई लोक-कथायें तुमने सुनी होगी। एक मैं भी बताता हूँ।

मूर्ख पंडित

एक था पंडित। एक दिन उसने दूर के एक गाँव में बछड़ा खरीदा। उसे कंधे पर लेकर गाँव की ओर चलने लगा। रास्ता जंगली था। तीन ठग पंडित के रास्ते पर थोड़ी थोड़ी दूर पर बैठ गये। जब पंडित नजदीक आये तो पहला ठग बोला—"अरे राम! कैसा ज़माना आ गया? ब्राह्मण कंधे पर कुत्ता लिये जा रहा है।" पंडित उसकी बातों को अनसुनी करके आगे बढ़ा। कुछ दूर आगे जाने पर दूसरा ठग बैठा मिला। देखते ही बोला—"भैया, माथे पर तिलक, पवित्र जनेऊ, और कंधे पर कुत्ता लादे [illegible] हो? हरि! हरि!!"

इस बार ब्राह्मण को कुछ शङ्का हुई। उसने बछड़े को नीचे उतार कर देखा। बछड़ा ही है, इस विश्वास से आगे बढ़ा। अब तीसरा ठग सामने था। देखते ही बोला—"घोर कलियुग आ गया है, नहीं तो यह होता कैसे? ब्राह्मण होकर कुत्ते को कंधे पर लिये घूमता कैसे? शिव! शिव!! देखना भी पाप है।" और उसने मुँह फेर लिया।

अब ब्राह्मण सोचने लगा, अवश्य ही मेरी आँखें मुझे धोखा दे रही हैं। जो भी मिलता है वह सब इसे कुत्ता ही कहता है। अवश्य ही यह कुत्ता है। ऐसा समझ कर बछडे को वहीं छोडकर चला गया। बाद में ठगों ने बछडे को उठा लिया।

कोई झूठी बातें भी समूह द्वारा बार-बार दुहराने से लोगो में संदेह पैदा कर देता है। विरोध का वातवरण गर्म करने के लिए भी गलत बातों को बार-बार दुहराने की आवश्यकता होती है।

हाँ। तो, इधर तेरा पंथ के श्रावकों को जब इस विरोध का पता चला तो वे दूर-दूर से आकर जयपुर में जमा होने लगे। उन लोगों के सामने यह प्रतिष्ठा की लडाई थी। वातावरण हिंसक होने जा रहा था। आचार्य श्री ने अपने लोगों को समझाया—"अहिंसा से हिंसा को जीतना हमारा ध्येय रहा है। साधन शुद्धि पर हमारी निष्ठा है। उत्तेजित होने से सुधार नहीं हो सकता। विरोध से झुकने को मैं नहीं कहता हूँ। परन्तु हिंसा के सामने अगर

आपने भी हिंसा को ही हथियार बनाया तो यह हमारी पराजय होगी। हमारा मार्ग सदा शांति का रहा है। इसी में हमारी सफलता का बीज है।" इस उपदेश से लोग शांत हो गये। यहाँ परमहंस रामकृष्ण के विषय में एक घटना सुनो।

परमहंस को लात :—एक बार श्री रामकृष्ण, मंदिर में ध्यान कर रहे थे। एक दुष्ट बुद्धि विरोधी ब्राह्मण अकेला देख कर मंदिर में घुस गया। वहाँ उसने रामकृष्ण को गालियाँ दी और लात मारा। रामकृष्ण ने इस बात को किसी पर प्रगट नहीं होने दिया। क्योंकि इस से ब्राह्मण को लोग परेशान करते। ऐसे ही होते हैं संत। खैर!

धर्मसंघट्ट

दीक्षा के विषय में आचार्य श्री ने बताया—"दीक्षार्थी अगर दृढ़ होंगे तो दीक्षा रुक नहीं सकती। विरोधियों का अंतिम अस्त्र होगा, दीक्षार्थी को रोक रखना। उस स्थिति में दीक्षार्थी को स्वयं दीक्षा ग्रहण कर लेना चाहिए। दीक्षा एक आत्म-भाव है। वह तो दीक्षार्थी की आत्मा से ही प्रकट होता है। गुरू तो केवल साक्षी मात्र होता है। आयोजन आदि व्यवहार हैं। आत्मबल को न तो पशुबल रोक सकता है न सत्याग्रह।" इस व्याख्यान से विरोधियों की आशा पर पानी फिर गया। दूसरे दिन यथा समय दीक्षा सम्पन्न हुई। वातावरण शांत रहा।

दोस्तो! हम आगे बढ़ें, इस से पहले अब जरा इस व्याख्यान की गहराई में चलेंगे। कुरान का एक वाक्य है— अल्लाह ताला कहते हैं —"भगवान का भक्त वह है जो भूमि पर नम्रता से चलता है और जब नासमझ लोग उनका विरोध करते हैं, तो कहता है—'भाई सलाम'। अर्थात् विरोधियों का भी भला चाहते हैं।" विरोधियों का भी भला चाहना ही धर्मों का सार है। आचार्य श्री विरोधियो का भला चाहने वालों में से हैं, यह निर्विवाद सिद्ध हो गया है।

इस व्याख्यान में आचार्य श्री ने धर्म की बड़ी सूक्ष्म व्याख्या की है। 'धर्म' वाणी, शरीर और मन से आचरण करने की चीज है। काया और वाणी परिस्थिति के अधीन है। परिस्थिति के दबाव के कारण आचरण में दोष आ सकता है। परन्तु मन पूर्ण स्वतंत्र है। उसपर किसी भी परिस्थिति में किसी का नियत्रण हो ही नहीं सकता है। इसलिए यह बात समझ में आते ही धर्मपालन में बाधाओं का स्थान गौण हो जाता है। मनुष्य का मनोबल बढ़जाता है। उपनिषद् ने भी भावना को ही प्रधान माना है। "न कर्म लिप्यते नरे"—कर्म (अगर भावना के विपरीत किया गया है।) चिपटता ही नहीं। अर्थात् कर्म का फल भावना पर आधारित है। आचार्य श्री ने एक गूढ़ सिद्धान्त को सामान्य व्यवहार में उपस्थित करके आम जनता का आत्मबल ऊँचा

उठा दिया। बाधाओं में आगे बढने का मार्ग प्रसस्त कर दिया। आम जनता जो कुछ धर्मविपरीत कर्म करती है वह परिस्थिति के अधीन होकर करती है। भावना उसकी निर्मल रहतीहै। उसके कर्म का आधार है 'श्रद्धा' और परिस्थिति। ज्ञान में पहुँच का दायरा सीमित है। उसे अपने दायरे में समाधान है। समाधान होना चाहिए। धर्म ग्रंथ उसके पुष्टि में खडा है। अब सोचने की बात है कि समाधान के बावजूद झगड़ा क्यों होता है? कौन झगडे का सूत्रपात करता है?

आम जनता को श्रद्धा से समाधान है यह तो जान लिया। जो आत्मज्ञानी हैं वे ज्ञान पूर्वक आचरण करते हैं। ज्ञान औ र ईर्षा द्वेष का दूर का भी संबंध नहीं हो सकता। बीच वालों की, जो अपने आप को ज्ञानी मानते हैं, परंतु उनके पल्ले मात्र अहंकार पडा है,—हालत ऐसी है कि वे न घर के हैं न घाट के। धर्म का अहंकार ओढे झगडते रहना ही उनका धंधा है। उन के कारण आम लोगों की श्रद्धा भी खंडित होती जा रही है। एक पुरानी कहानी बताता हूँ।

धर्मएक कहानी में

समुद्र तट पर एक धर्मशाला थी। वहाँ देश देश के व्यापारी आकर ठहरते थे। एक ऐसी ही रात की घटना है—जब दुनियाँ भर के व्यापारी वहाँ रात बिताने ठहरे थे। पारसी व्यापारी ने

दरवाजे पर बैठा अपने नौकर से पूछा—"क्यों रे ! तेरा क्या ख्याल है ? खुदा है या नहीं ?"

"वह तो है"—गुलाम ने कहा और अपनी पेटी से लकडी की एक मूरत निकाली। बोला—"जी ! देखिये, यह रहा। इसी खुदा ने हमें पैदा किया और पाल रहा है। इसीलिए मैं इसे बराबर पेटी में रखता हूँ।" वहाँ बैठा एक पंडित से नहीं रहा गया। बोला—"अरे मूर्ख ! ईश्वर को क्या समझ रखा है ? क्या वह इस तरह नीच जाति के पेटी में रहता है ? वह तो ब्राह्मणों के वश में है। उसके पूजन आदि का अधिकार एक मात्र ब्राह्मनों को है। ब्राह्मण भक्त ही उसे सब से प्यारा है। तुमने...... .....। यहूदी दलाल बीच में बोल उठा—"क्यों सेखी मारते हो पण्डतजी। खुदा का सब से प्यारा और सब से नजदीक यहूदी के सिवा कोई नहीं है। आज हमारी परीक्षा है। हम बिखर गये हैं। परंतु एक दिन हम फिर से येरूशलम में आबाद होंगे और हमारा प्राचीन मंदिर फिर चमक उठेगा। (लिखने के बाद और छपने के पहले जेरूशलम यहूदियों के कब्जे में चला गया है।) रोमन पादरी को बात बुरी लगी। बोला—"पुरानी बातों को दुहराने से क्या लाभ ? १९०० साल से भगवान तुम से दुखी है। तभी तो भटक रहे हो। भगवान का रोमन चर्च पर विशेष कृपा है यह कौन नहीं जानता है ?

उस चर्च के सिवा दूसरे स्थानों में मुक्ति का और साधन

नहीं है।" प्रोटेस्टेन्ट भी वहाँ थे। सो वे बोल उठे—" चर्च-फर्च बकवास है। ईसु के उपदेशों को मानने वाले खुदा के सब से प्यारे हैं।" एक मुसलमान व्यापारी जो अब तक हुक्का पी रहा था, बोला—" अब इस्लाम के सिवा किसी धर्म में ईमान रखना फिजूल है। तेरह चौदह सौ साल पहले खुदा ने हजरत मुहम्मद के द्वारा इस्लाम धर्म का संदेश दिया है। पहले क्या था इस झमेले में क्यों पड़ते हैं – कुराने पाक पर ईमान लाइये तभी खुदा के प्यारे होंगे।" इस तरह तिब्बत के लामा, चीन के कन्फ्यूसियस आदि जितने लोग थे उतनी बातें चल पड़ी। वहाँ एक खासा विवाद खड़ा हो गया। इस झगड़े से अलग एक आदमी दूर बैठा था। किसी ने उस से पूछा — " दोस्त, तुम्हारा क्या ख्याल है?" दूसरे ने कहा —" अरे यार! देखते नहीं हो कि इनके मुँह पर पट्टी बंधी है। बेचारे बोलेंगे कैसे? कई और लोगों ने भी व्यंग किया। आखिर उस आदमी ने मुँह खोला। बोला—" कुछ कहना तो चाहता हूँ, परंतु सब शांति से सुने तो कहूँ। सब ने स्वीकृति दे दी। फिर उसने कहना शुरू किया, " एक बार जहाज से उतर कर हम लोग समुद्र किनारे पेड़ की छाया में बैठे थे। उधर से एक अंधा अपने नौकर के सहारे आया और वह भी नारियल की छाया में बैठ गया। पूछने पर पता चला कि सूरज को एक-टक देखते रहने के कारण उसकी आँखों की ज्योति समाप्त हो गई है। सूरज और उस के प्रकाश का भेद जानने के लिए वह रोज घंटों सूरज की

ओर देखा करता था। उसने कुछ जान पाया था नहीं, परन्तु तेज प्रकाश से आँख की रोशनी चली गई। खैर!

नौकर पास पडा एक नारियल उठा लिया। उसे तोडा। छिलके की बत्ती बनाई और गिरि को कुचल कर तेल निकाला। खोपडे मे तेल बाती रखकर दीपक तैयार कर लिया। तब तक दिवाकर ने सामने की दुनियाँ से मुँह छिपा लिया। नौकर ने मालिक से कहा—"अंधकार हो गया, अब घर चलना चाहिए"।

मालिक ने कहा—"चलना तो है ही। सूरज की बिखरी माया समाप्त हो गई न? देखो न! मैं आँख खोकर भी नहीं समझ पाया कि ये सूर्य किरण क्या है? अगर यह तरल पदार्थ होता तो बर्तन मे आ सकता था। ठोस होता तो पकडा जा सकता था और आग होता तो पानी से बुझाया जा सकता था। अगर यह आत्म-तत्व होता तो दिखता नहीं। और अगर यह सब नही है तो सिद्ध होता है कि यह भ्रम के सिवा कुछ है ही नहीं। परतु लोग मेरी बात मानते ही नही। अब अगर वह कुछ है, तो क्या है?"

नौकर बोला—"इस भ्रम ने आपकी आँखें तो ले ही ली, अब भला मैं क्या कहूँ? मैं यह तो नहीं जानता कि सूर्य-किरण क्या है? सो जानने की मुझे जरूरत भी क्या? हाँ रोशनी का उपयोग मैं जानता हूँ। मैं ने अभी तेल बाती का प्रबन्ध कर लिया है। इस के सहारे राह देखता चला जाऊँगा। घर का काम भी

इसी की सहायते से कर लूँगा।" इतना कह कर उसने बत्ती जला ली, और बोला—"मेरा सूरज तैयार हो गया।" फिर उसने एक हाथ में दीप और दूसरे हाथ में अंधे की लाठी पकड़कर चलने लगा।

अंधे का "सूरज और किरण है क्या," प्रश्न हवा में गूंज रही थी।

वहाँ बैठे हमारे साथियों में से एक ने कहा—', सूरज सात घोड़ों वाला रथ पर सवार है। यह बड़ा प्रखर देवता है।" दूसरे ने कहा ——। फिर तो वहाँ भी एक विवाद खड़ा हो गया। किसी ने सूरज को आग बताया तो किसी ने गैस। किसी ने समुद्र से निकलने की बात कही तो किसी ने पहाड़ से। किसी ने सूरज के चलने की बात कही तो किसी ने पृथ्वी की। सो भाई सूरज की उपमा ईश्वर से कर सकते हो। एक ही ईश्वर को सब अपना अपना ईश्वर अलग अलग बताना चाहते हैं। यही झगड़े का कारण है। क्या आदमी का बनाया मंदिर या गिरजा कुदरत के मंदिर का बराबरी कर सकता है? किस देवालय का आंगन समुद्र जैसा होगा? तारों से अधिक तेज दीपक कौन जलायेगा? परन्तु भाई, ईश्वर, जो है सो है, या नहीं है तो नहीं है। तुम्हें जो शरीर और दिमाग मिला है उसका सही उपयोग करो। नाहक झमेले में क्यों पड़ते हो। जैसा करोगे वैसा पाओगे। वक्त का सही

उपयोग करने वाला ही अगर ईश्वर है तो उसका मन मे प्यारा होगा। अगर ईश्वर नही है तो भी वह लोगों का प्यारा होगा।

कहानी के साथ ही वहाँ के झगडे भी खत्म हो गये।

प्यारे दोस्तो! हम नाहक ही ईश्वर और दर्शन के झमेले में जीवन समाप्त कर देते हैं। अपने साधन से पुरुषार्थ करने का ख्याल नही आता है। धर्म दिखावे की चीज नही है। वह तो मन से आचरण करने का है। इस बात को आचार्य श्री ने थोडे में साफ कर दिया है।

दोस्तो! इस कहानी में ही तुम्हारा बहुत समय ले लिया। यह विषय ही ऐसा है जिसे एक बार समझ लें तो जीवन की दिशा स्पष्ट हो जाती है। तो अब आगे बढ़ें।

हाजिर जबावी याने प्रत्युत्पन्न मति। यह मनुष्य का एक बडा गुण है। विद्वत्ता के साथ-साथ तर्क युक्त तुरत समाधान देना विज्ञान की माँग है। आचार्य श्री इस गुण में माहिर हैं।

पादरी बेचारा

एक पादरी आचार्य श्री से मिलने आया। बोला—"प्रभु ईशा ने शत्रु से प्यार करने का ऐसा उपदेश दिया है – जिसका मिसाल दुनियाँ में और नहीं मिलता है।" स्पष्ट ही उस के कहने में धर्म का अहकार था। वरना जवाब देने की आवश्यकता भी

नहीं थी। आचार्य श्री ने कहा—"महात्मा ईसा ने बहुत अच्छा कहा है। परन्तु इससे शत्रु का होना तो साबित होता है? भगवान महावीर ने तो सब प्राणियों को मित्र कहकर शत्रु का होना ही समाप्त कर दिया।" पादरी झेंप गया।

गुण दर्शन —गर्मी का मौसम था। पदयात्रा चल रही थी। सामने कहीं पेड़ दिखाई नहीं दे रहा था। एक साधु बोले—"धूप इतनी तेज है और पेड़ का कहीं नाम नहीं है। आज तो मुसीबत है।" आचार्य श्री ने कहा—"आज इतनी तो सुविधा है कि सूरज पीठ की ओर है। यदि सामने होता तो कार्य और कठिन हो जाता।" गुण दर्शन की यहाँ एक छोटी मिसाल दूँ —

मुर्दे का दाँत —पाण्डवों के साथ कृष्ण चले जा रहे थे। रास्ते में कई दिनों का मरा कुत्ता पड़ा था। किसी ने कहा, कितनी बदबू। किसी ने कहा कैसा अमगल। किसी ने कहा कितना भयकर। कृष्ण बोले—"कितना चमकदार दाँत।" हाजिर जवाबी के साथ गुण दर्शन की यह उच्चतम भूमिका है।

धन की कीमत —दिल्ली में अमेरिकन भाईयों ने आचार्य श्री से पूछा —"शांति कैसे मिल सकती है?" "इतनी छोटी सी बात का पता आप को नहीं चला?"—आचार्य श्री ने पूछा। "नहीं तो"—अमेरिकन भाईयों का उत्तर था। आचार्य श्री ने कहा—"आप एक धनी देश के धनी नागरीक हैं। सवाल पूछ रहे

हैं फकीर से, जिसके पास कपडे भी पूरे नहीं हैं। इसका सीधा अर्थ हुआ कि धन से शाति मिलना असभव है। उसका (शाति का) मार्ग, जरूरतों और इच्छाओं को कम करना है।" सुनते ही अमेरिकन भाई को बात जँच गई। वह बहुत खुश हुआ।

श्रद्धा सबसे पवित्र :—एक ब्राह्मण आचार्य श्री को गगा-जल भेंट करने आया। साधुओं के लिए बिना उबाले पानी का उपयोग वर्जित है। सो आचार्य श्री ने उन से अपनी स्थिति बताई। ब्राह्मण ने कहा—"गंगाजल इतना पवित्र है कि इसे उबालने का सवाल ही नहीं उठता।" उनकी श्रद्धा और अपनी मर्यादा के बीच का रास्ता निकालते हुए आचार्य श्री ने कहा—"गंगाजल से भी पवित्र है आपकी श्रद्धा। मैं श्रद्धा को सादर ग्रहण करता हूँ। ब्राह्मण खुश हो कर लौट गया।

सरदार पटेल के विषय में एक घटना है।

सरदार पटेल, कालेज में व्याख्यान देने गये। सभा में हो हल्ला मचा था। विद्यार्थी जहाँ-तहाँ खडे थे। सरदार ने कहा—"जगत में चार हठ विख्यात है—राज हठ, बाल हठ, स्त्रीहठ और अंग्रेजों का पीछे हट। आप लोग खडे रह कर पाँचवा हठ इजाद कर रहे हैं।" सुनते ही सभा में शाति आ गई। परिस्थिति को अनुकूल बना लेना एक कला है। आचार्य श्री तुलसी को यह कला सध गई थी।

किया जाय, युग की रीति ही विपरीत है। अब तो नलों के द्वारा कुँआ प्यासे के घर घर जाने लगा है"। (यह विनोद युग धर्म के साथ चलने का संकेत है।)

पाँव तले पोस्टर्स

उस साल जोधपुर में चातुर्मास था। विरोधी लोग जगह-जगह पोस्टर्स लगा देते। यहाँ तक कि आचार्य श्री के मार्ग पर भी पोस्टर्स चिपकाये जाते। आचार्य श्री कहते—"तारकोल की सड़क पर पैर काले हो जाते हैं परन्तु पोस्टर्स लगाने से कुछ बचाव हो जाता है। (गुण दर्शन का अद्वितीय मिसाल है—यह।)

जेब नहीं धन कहाँ ?

एक बार एक आदिवासी युवक ने आचार्य श्री के पास आकर मद्य मांस त्यागने का व्रत लिया। बाद में वह वहीं लोगों के बीच बैठ गया। थोड़ी देर बाद आचार्य श्री ने देखा कि आसन पर चौवन्नी पड़ी है। पूछने पर बालक ने बताया कि "इस बालक का तुच्छ भेंट है"। आचार्य श्री ने अपने वस्त्र की ओर इशारा करते हुए कहा—"भाई ! मेरे कपड़ों को देखो, पैसे रखने का जेब कहाँ है ?" लोग हँसने लगे। (सीधे साधे लोगों का मन ऐसे ही रखा जाता है।)

अंधेरे का उपयोग

रात में छत पर अणुव्रत गोष्ठी चल रही थी। चाँदनी फैली थी। एक पाल बधा था इसलिए आधे छत पर चाँदनी नही पड रही थी। कुछ लोग प्रकाश में थे तो कुछ लोग छाया में। आगे प्रकाश वाला भाग कुछ खाली था। पीछेवाले भाइयों को आगे आने के लिए कहा गया। परंतु कोई उठा नहीं। तब आचार्य श्री ने विनोद करते हुए कहा—" प्रकाश में आने के बाद हर चीज में सवधानी बरतनी पडती है। अधकार में सब चल जाता है। शायद यही सुविधा अधेरे के प्रति आकर्षण का कारण है। नही तो प्रकाश को छोडकर अधकार में बैठना कौन ससद करता ? " वातावरण मे हँसी की हिलोंडें उठी और लोग सहज आगे आ गये। (रूढ़िवादियो पर प्रहार किया गया है – इस व्यग है।)

बालक की आज्ञा :—आचार्य श्री का धारा-प्रवाह प्रवचन चल रहा था। एक बालक आया। आचार्य श्री के पैर की ओर हाथ बढ़ाते हुए बोला—" पैर दो "। आचार्य ने पैर बालक की ओर बढ़ाते हुए बोले—" जो आज्ञा "। बालक चरण स्पर्श करके मस्ती से चलता बना। (बालक चूँकी विकार मुक्त है, इसलिए उसकी आज्ञा का पालन गुण दर्शन का इशारा है।)

उल्टी समझ :—अलीगढ़ के एक वृद्ध एडवोकेट आचार्य श्री से मिलने आये। बात - चीत में उन्होंने बताया—' मैं यदि बुराई

भी करता हूँ तो उसे अच्छा समझ कर ही करता हूँ।" आचार्य श्री ने कहा—"जब आच्छाई करते हैं तो शायद बुरा समझ कर करते होंगे।" वकील साहब झेंप गये। (इस विनोद में सत्य दर्शन की ओर संकेत है।)

दोस्तो! केवल विनोद प्रियता को ही विषय बनाकर किताब लिखना हो तो बात दूसरी है। परन्तु वैसा कुछ ख्याल नहीं है। अत अब इसे समाप्त करता हूँ। अब कुछ स्पष्ट वादिता का मिशाल पेश कर रहा हूँ।

मंदिर में चाण्डाल

एक बार आचार्य श्री मंदिर में ठहराये गये। उनके साथ हरिजन भाई भी मंदिर में चला आया। पुजारिन हरिजनों को गाली देने लगी। आचार्य श्री ने साथियों से कहा—"चलो भाई! अपना सामान समेट लो। इस मंदिर में भगवान नहीं क्रोध (चाण्डाल) रहता है।" पुजारिन ने कहा—"आप क्यो जा रहे हैं? मैं तो इन हरिजनों को डाँट रही हूँ।" आचार्य श्री ने कहा—"आप जब मुझे ठहरा रही हैं, तो हमारे पास आने वाले लोगों को कैसे रोक सकती हैं।" पुजारिन ने इस दो टुक जवाब को सुनकर हट जाने में ही खैर समझा।

सिद्धांत का विरोध

एक बार आचार्य श्री ने अपने व्याख्यान में साधुओं के लिए स्थान बनाने का विरोध किया। बोले—"साधुओं को उनके निमित्त बने मकान में रहने से दोष लगता है। सेठ साहुकार निवास के लिए हवेलियाँ बनाते हैं। साधुओं के लिए भी ऐसा मकान बनने लगेगा तो क्या होगा? सिर्फ नाम का फर्क रह जायगा।" इस भाषण से कुछ लोगों को क्रोध आ गया। उन लोगों ने आचार्य श्री से मिलकर व्याख्यान वापस लेने के लिए दबाव डाला। आचार्य श्री ने कहा—"यह किसी व्यक्ति या धर्म की आलोचना नहीं है। यह प्रश्न मुनिचर्या से सबन्ध रखता है। इस पर विचार होते रहना चाहिए। मैं किसी की आलोचना करता ही नहीं। फिर इस व्याख्यान को वापस लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है।" आचार्य श्री की इस राय से साफ हो गया है कि आलोचना करना बुरी बात है, परन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों में जहाँ त्रुटि दिखे वहाँ चुप रहना भी अनुचित है।

विधवा की मजबूरी :—एक बार एक भाई ने आचार्य श्री से प्रार्थना की —"एक विधवा बहन बाहर नहीं आ सकती है। आपका दर्शन चाहती है।" आचार्य श्री ने कहा—"बहुत दिनों तक घर में बैठना किसी को पसंद नहीं होगा। उस से पूछो, वह चाहे तो साथ ले आओ।" भाई गया और लौटकर बोला—

"बहन नहीं आती है।" आचार्य श्री ने कहा—"कोई रोगी या अशक्त होता तो मैं अवश्य जाता। इस बहन के यहाँ जाना कुप्रथा को बढ़ावा देना है। मैं नहीं जाता।" आखिर वह बहन दर्शन करने आई।

श्मशान में डेरा—उन दिनों सौराष्ट्र में तेरा पंथी विरोधियों का बड़ा जोर था। उस क्षेत्र में साधुओं के तीन जत्थे भेजे गये। उधर ही जगह जगह चातुर्मास करना था। जोरावर नगर के जत्थे को चातुर्मास के लिए जगह ही नहीं मिल रहा था। दूसरी जगह जाने के लिए समय नहीं रहा था। आचार्य श्री को लोगों ने इसकी सूचना दी। आचार्य श्री ने कहा—"मैं वहाँ के कठिनाइयों का अंदाज कर रहा हूँ। खाने पीने की भी कठिनाई हो रही है। फिर भी उन्हें, भागना नहीं चाहिए। जैन अजैन जहाँ भी स्थान मिले रह जायें। अगर कोई स्थान नहीं मिले तो श्मशान में रहना चाहिए। आचार्य श्री भिक्षुस्वामी ने कितने कष्ट झेले हैं। वही आदर्श सामने रख कर काम करना है।" साधुओं ने जब ये बातें सुनी तो उनका आत्मबल बढ़ गया। वे दृढ़ता से काम करते रहे। आखिर परिस्थिति भी अनुकूल होता गया।

मनुष्य और जाजन:—एक साधु मंच पर व्याख्यान देने पहुँचे। आचार्य श्री भीतर अध्ययन में लगे थे। व्याख्यान प्रारंभ हुआ। लोग आकर बैठने लगे। कुछ हरिजन भाई भी आकर बैठ

गये। सवर्ण लोगों को यह बात बुरी लगी। उन्होंने हरिजनों को जाजम पर से उठा दिया। उनकी जगह से जाजम खींच ली। आचार्य श्री भीतर से सब देख रहे थे। वे तुरंत सभा स्थल पर पहुँचे। बोले—"साधुओं की सभा में हर किसी को आने का हक है। यहाँ जातीयता के आधार पर किसी का अपमान करना अच्छा नहीं। वह तो साधुओं का ही अपमान है। आपकी जाजम इतनी पवित्र है कि मनुष्य के बैठने से अपवित्र हो जाती है, तो उसे बिछाने की आवश्यकता क्या थी?" फिर सरपच से पूछा—"क्या आपकी पंचायत में सभी सवर्ण ही हैं?"

"नहीं, उस में हरिजन भी हैं"—सरपंच का उत्तर था।

आचार्य श्री—"वहाँ पंचायत करते समय उन्हें अलग बैठाते हैं क्या?"

सरपच—"नहीं महाराज, वहाँ सब साथ बैठते हैं।"

आचार्य श्री—"तो फिर यहाँ क्या हो गया? वहाँ की जाजम से यहाँ की जाजम शायद अधिक पवित्र और अधिक नाजुक होगी।"

सरपच सहित सभी को अपनी भूल समझ में आई। उन्हें जाजम और मनुष्य का मूल्य समझ में आया। सबने क्षमा माँगकर फिर हरिजनों को साथ बैठा लिया।

दोस्तो ! कुछ और महापुरुषों का ऐसी ही मिसाल दे रहा हूँ, जिससे तुम जानोगे कि कटु सत्य भी महानता का गुण है।

दक्षिणेश्वर की काली मंदिर रानी रासमणि ने बनवाई थी। रानी का बडा रौब था। एक दिन वह मंदिर में आई। रानी के आने की खबर से वहाँ भीड़ जमा हो गई थी। रानी मंदिर में गई। रामकृष्ण परमहंस वहाँ के पुजारी थे। रानी ने उन्हें भजन सुनाने को कहा। भजन शुरू हुआ। एक दो भजन के बाद रामकृष्ण ने अचानक रानी के 'गाल पर दो थप्पर' यह कहते हुए मार दिया कि—"यहाँ भी संसारी बातें।" दर्शकों में खलबली मच गई। हर कोई पुजारी की खबर लेना चाहता था। परन्तु रानी ने सब को रोक दिया। बात वहीं समाप्त हो गई। बाद में रामकृष्ण पर रानी की श्रद्धा और बढ़ गई।

परमहंस और दुशाला

रानी के दामाद मथुरा बाबू रानी का मैनेजर भी थे। मथुरा बाबू ने उस सस्ती समय में एक हजार का एक दुशाला पुजारी रामकृष्ण को भेंट कर दी। रामकृष्ण ने ले तो लिया, परन्तु कुछ समय बाद उसे धरती पर फेंक कर उस पर थूक दिया और आग में जलाने लगे। किसी ने उसे छीन कर मथुरा बाबू को सब बातें बताई। लोगों का ख्याल था कि मथुरा बाबू को पुजारी पर क्रोध आ जायगा। लेकिन मथुराबाबू ने सिर्फ इतना कहा—"बाबा ने
"

वह नामर्द है :—बात १९२० की है। गाँधीजी आजादी की लडाई में लगे थे। हर वर्ग का सहयोग अपेक्षित था। फिर भी जन भावना की परवाह किये बिना जब भी कटु सत्य बोलने का अवसर आया, बोलने से नहीं चूके। उसी समय बापू ने कहा था—" मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तान का जो पिता अपने पुत्र के साथ, पति अपनी पत्नी के साथ अंग्रेजी में व्यवहार रखता है, वह नामर्द है।"

थोडी शैतानियत कर ली :— एक सभा में बापू ने कहा—" आज लोग ब्राह्मणों को अपूज्य मानते हैं, लेकिन उनकी तपस्या, ज्ञान, यज्ञ और पवित्रता के कारण उनकी पूजा करनी पड़ेगी। जिन ब्राह्मणों ने उपनिषद आदि की रचना की है, उनकी शिकायत करने में मैं डरता हूँ। फिर भी मैंने यह कहा है और कह रहा हूँ कि ब्राह्मणों ने अस्पृश्यता की अनुमति देकर थोडी शैतानियत कर ली है।"

माँ शारदा आती तो !

बगाल में विनोबा जी की भूदान यात्रा चल रही थी। एक पडाव नरेन्द्रपुर (स्वामी विवेकानंद का जन्म स्थान) में तय हुआ। दो चार दिन पहले एक भाई ने बाबा से बताया कि आश्रम के स्वामी जी ने अपने कुछ नियम बताये हैं। चूँकि वह रामकृष्ण मठ है, अत मुख्य हाल में बहनें नहीं रह सकती। आप या अन्य

पुरुष वहाँ टिक सकेंगे। बहनें अलग रहेंगी। वह स्थान भी बगल में ही है। विनोबा जी ने कहा—"हम आश्रम में ठहरे ही क्यों? लेकिन स्वामी जी से पूछें की अगर रामकृष्ण के साथ शारदा माता आ जाँय तो क्या अलग अलग ठहरायेंगे?" स्वामीजी को जब पता चला तो अपने नियम को स्थगित कर दिया। हम सब वहाँ एक साथ ठहरे। (मैं भी साथ था।)

नेताओं की नजर बंदी —कलकत्ता की विशाल सभा में विनोबा जी ने कहा— "हमारे सभी नेता गाँधी जी की दुहाई देते हैं, परन्तु सब का मत अलग अलग है। इस में चार मुख्य नेता हैं। पंडित नेहरू, राजाजी, आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश जी। जनता को चाहिए कि इन चारों को एक रूम में बन्द कर दें। खाना पीना बन्द रक्खें। जब तक चारों मिलकर गाँधी जी के बारे में एक राय नहीं हो जाते तब तक उन्हें इसी तरह बन्द रखना चाहिए।"

दृढ़ता भूषण और दूषण

ऊपर के घटनाओं से आचार्य श्री तथा कुछ अन्य नेताओं के दृढ़ स्वभाव का पता चला। दृढ़ता गुण भी है और दोष भी। अज्ञानी अगर दृढ़ होगा तो जिद्दी कहेंगे। ऐसे लोग अहंकार की रक्षा में दृढ़ रहते हैं। इन लोगों से समाज को नुकसान होता है। ज्ञानियों के लिए दृढ़ता भूषण है। वे लोग सचाई पर दृढ़ रहते हैं।

इससे समाज को प्रकाश मिलता है। ऐसे लोगो के पास आकर दोष भी गुण का दर्जा पा जाता है। देखो न' विषधर साँप भी शंकर के गले में आकर भूषण बना है। फिर सामान्य सतो से आचार्य श्री की स्थिति भिन्न है। आचार्य श्री को सघ में व्यवस्था कायम रखने के लिए दृढ रहना अत्यन्त जरूरी है। दृढताहीन उदारता या नम्रता का नाजायज लाभ लेने वाले लोगो की कमी तो है नहीं। दृढ़ता का अहिंसा से कोई विरोध नहीं है — जैसा कि कभी-कभी भास होता है। परमहस की एक प्रसिद्ध कहानी सुनो।

व्यावहारिक अहिंसा

चारों ओर छोटे-छोटे गाँव थे। बीच में एक चारागाह था। चारागाह में कुछ पुराने पेड और झाडियाँ थी। ग्वाले दिन भर वहाँ गाय चराया करते थे। कुछ दिनों से मैदान के एक सिरे पर एक भयंकर काला नाग रहता था। अगर उधर कोई पशु या मनुष्य निकल जाता तो वह नाग उसे काट खाता। उस के जहर से वह वहीं ढेर हो जाता।

एक दिन एक साधु उसी रास्ते जा रहा था। ग्वालों ने उन्हें साँप की बात बताई और जाने से मना किया। लेकिन साधु चुप-चाप बढ़ता रहा। बिल के पास पहुँचते ही साँप फुंफकार मारता आगे बढ़ा। लेकिन साधु के प्रभाव से साँप शात हो गया। साधु ने उसे हिंसा का दूरगामी परिणाम बताया और हिंसा न करने

पुरुष वहाँ टिक सकेंगे। बहनें अलग रहेंगी। वह स्थान भी बगल में ही है। विनोबा जी ने कहा—"हम आश्रम में ठहरे ही क्यों? लेकिन स्वामी जी से पूछें की अगर रामकृष्ण के साथ शारदा माता आ जाँय तो क्या अलग अलग ठहरायेंगे?" स्वामीजी को जब पता चला तो अपने नियम को स्थगित कर दिया। हम सब वहाँ एक साथ ठहरे। (मैं भी साथ था।)

नेताओं की नजर बंदी —कलकत्ता की विशाल सभा में विनोबा जी ने कहा— "हमारे सभी नेता गाँधी जी की दुहाई देते हैं, परन्तु सब का मत अलग अलग है। इस में चार मुख्य नेता हैं। पंडित नेहरू, राजाजी, आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश जी। जनता को चाहिए कि इन चारों को एक रूम में बन्द कर दें। खाना पीना बन्द रक्खें। जब तक चारों मिलकर गाँधी जी के बारे में एक राय नहीं हो जाते तब तक उन्हें इसी तरह बन्द रखना चाहिए।"

दृढ़ता भूषण और दूषण

ऊपर के घटनाओं से आचार्य श्री तथा कुछ अन्य नेताओं के दृढ़ स्वभाव का पता चला। दृढ़ता गुण भी है और दोष भी। अज्ञानी अगर दृढ़ होगा तो जिद्दी कहेंगे। ऐसे लोग अहंकार की रक्षा में दृढ़ रहते हैं। इन लोगों से समाज को नुकसान होता है। ज्ञानियों के लिए दृढ़ता भूषण है। ये लोग सचाई पर दृढ़ रहते हैं।

इससे समाज को प्रकाश मिलता है। ऐसे लोगो के पास आकर दोष भी गुण का दर्जा पा जाता है। देखो न! विषधर साँप भी शंकर के गले में आकर भूषण बना है। फिर सामान्य संतो से आचार्य श्री की स्थिति भिन्न है। आचार्य श्री को संघ में व्यवस्था कायम रखने के लिए दृढ़ रहना अत्यन्त जरूरी है। दृढ़ताहीन उदारता या नम्रता का नाजायज लाभ लेने वाले लोगो की कमी तो है नहीं। दृढ़ता का अहिंसा से कोई विरोध नही है – जैसा कि कभी - कभी भास होता है। परमहंस की एक प्रसिद्ध कहानी सुनो।

व्यावहारिक अहिंसा

चारों ओर छोटे - छोटे गाँव थे। बीच में एक चारागाह था। चारागाह में कुछ पुराने पेड और झाडियाँ थी। ग्वाले दिन भर वहाँ गाय चराया करते थे। कुछ दिनों से मैदान के एक सिरे पर एक भयंकर काला नाग रहता था। अगर उधर कोई पशु या मनुष्य निकल जाता तो वह नाग उसे काट खाता। उस के जहर से वह वहीं ढेर हो जाता।

एक दिन एक साधु उसी रास्ते जा रहा था। ग्वालों ने उन्हें साँप की बात बताई और जाने से मना किया। लेकिन साधु चुप - चाप बढ़ता रहा। बिल के पास पहुँचते ही साँप फुंफकार मारता आगे बढ़ा। लेकिन साधु के प्रभाव से साँप शांत हो गया। साधु ने उसे हिंसा का दूरगामी परिणाम बताया और हिंसा न करने

का उपदेश देकर आगे बढ़ गया। ग्वाले दूर से ही यह सब देख कर कि-साँप साधु को काटे बिना लौट गया, आश्चर्य कर रहे थे।

उस दिन के बाद पशु उधर चला भी जाय तो साँप कोई नुकसान नहीं पहुँचाता था। धीरे धीरे मनुष्य भी पास जाने लगा। लोगों ने एक दिन साँप को मार मार कर कुचल दिया। मरा समझ कर उसे फेंक कर लोग वापस चले गये। साँप को धीरे धीरे होश आया। अब वह दिन भर बिल के अन्दर छिपा रहता था। कुछ दिन बाद वही साधु फिर वहाँ आये। ग्वालों ने उन्हें साँप मारने की कहानी सुनाई। उनके प्रभाव से ही ऐसा संभव हो सका था, इसलिए लोगों ने साधु के प्रति आदर भक्ति दिखाई।

साधु ने बिल के पास जाकर आवाज लगाई तो साँप बाहर आया। उसकी दशा देख कर साधु को दुःख हुआ। उसने साँप को समझाया कि, "भाई काटने में हिंसा होती है इसलिए मना किया था। परन्तु फुफकारने से तो मना नहीं किया था। मनुष्य दुनिया के सभी प्राणियों से अधिक हिंसक होता है। इन से अपनी रक्षार्थ फुफकार नहीं छोड़ना।" साधु चला गया। अब साँप फुफकार के बल पर स्वतन्त्र घूमने लगा। उस दिन से फिर किसी ने उसे मारने की हिम्मत नहीं की।

विविधता का महत्व

आचार्य श्री में विविध गुणों का मिश्रण दिखता है। यह सब उन्हें आगे बढ़ने में मददगार हुआ है और हो रहा है। नम्रता और दृढता, व्रत और मुक्ति, दया और कठोरता आदि विरोधी गुणों का साथ - साथ पालन साधारण बात नहीं है। मेरे लिखने का गलत अर्थ नहीं लगाना। अध्यापन में कठोर होना, व्रतों पर दृढ़ रहना, किसी भी स्थान पर जाने के लिए मुक्त रहना आदि, विरोधी गुणों के सहयोग से ही व्यक्तित्व बनता है। ऐसी विविधता ही विकास का आधार होता है। जिस जगल में तरह - तरह के पेड होते हैं उसकी हरियाली कायम रहती है। हिन्दुओं के प्रधान देवता महादेवजी की कल्पना कैसी विविधताओं से भरी है, इसको जरा देखो तो सही।

शिव के सर पर गगा और त्रिलोक को भस्म करनेवाली आँख है। कपालपर अमृत का भण्डार चाँद है तो कण्ठ में विष। अपना सवारी बैल है तो पार्वती की सवारी हिंसक सिंह। शिव के गले में साँप, कार्तिकेय की सवारी मोर और गणेश जी (जो सबसे मोटे हैं) की सवारी चूहा। सिंह बैल का दुश्मन, मोर साँप का शत्रु और साँप चूहे का भक्षक। सब एक दूसरे के विरोधी। परन्तु इस विरोध के सग्रह में ही महादेव का बडप्पन है।

गाँधी विनोबा आदि के जीवन में भी हम कुछ ऐसे विरोधों का संग्रह देखते हैं।

कर्म, माला का फूल

दोस्तो! इस अंक में घटनाओं का काफी जिक्र हो चुका है। इस पर से आचार्य श्री की व्यापकता ध्यान में आया होगा। पहले की तीनों किताबों पर से भी आचार्य श्री के काम का पता चलता है। उन किताबों में तुम पढ़ चुके हो कि वे अध्ययन-अध्यापन में कितना परिश्रम करते थे। साहित्य निर्माण के लिए कितनी मेहनत करते रहे हैं। भाषाओं के अध्ययन में वे कितने उदार रहे हैं। शासन को किस चतुराई से संभाला। विरोध के सामने किस तरह अडिग रहे। कितनी लम्बी लम्बी यात्रायें की। अन्य धर्मों के प्रति कितना उदार रहे। छोटे बड़ों के साथ कैसा आत्मीय व्यवहार किया। आदि आदि जो कुछ पढ़ा है, वह सब आचार्य श्री के कर्म रूपी माला के एक एक फूल हैं।

सब से बड़ी देन

आचार्य श्री ने समाज को अनेकों योग्य सेवक दिये हैं यह उनकी ओर से समाज को सब से बड़ी देन है। आज सैकड़ों सेवक ज्योति बनकर समाज में घूम रहे हैं। उनकी ज्योति से ज्योति जलती जायगी और एक दिन दिवाली ही दिवाली दिखेगी। दुनियाँ भर की भौतिक वस्तुयें एक योग्य मनुष्य के सामने ओछा पड़ जाता है।

मनुष्य का निर्माण, वह पूंजी है जिस से सचाई का व्यापार बढाया जा सकता है। मानव की शक्ति असीम है। एक घटना बताता हूँ।

एक रुपये से लाखपति

ईश्वरचंद विद्यासागर से एक लडका ने एक आना माँगा। विद्यासागर ने उसे एक रुपया दे दिया। बहुत दिनो के बाद एक बाजार में एक नौजवान ने विद्यासागर के चरण पकड लिये। पूछने पर पता चला कि वह वही लडका है जिसे कभी वे एक रुपया दिये थे। उसने उस रुपये से पहले खोंचा, फिर दुकान और फिर व्यापार बढ़ाया। अब वह लाखपति था। समाज में एक योग्य मनुष्य उस लडके के लिए एक रुपया के आधार जैसा साबित होता है। आज मानव भौतिक सुख के पीछे बिना सोचे दौडता चला जा रहा है। उसे यह सोचने को भी वक्त नहीं है कि आखिर सुख के लिए कितना दौडना पडेगा? यह भी नहीं देखता कि आगे - आगे दौडने वालों की क्या हालत है? इस दौड - धूप से कुछ समय मिलता भी है तो वह परनिंदा, स्व स्तुति, झगड़े आदि में समाप्त कर लेता है। यहाँ खुशी की तलाश में सब रोता फिर रहा है। अपने में सब दुखी है। जिस से पूछो वही कहेगा—"आज जीवन कठिन है। भ्रष्टाचार बढ गया है, लोगों में विचार रहा नहीं, मंत्री भी चोर हैं, अफसर घुसखोर हैं, लोग भगवान से नहीं डरते, आदि - आदि शिकायतों का ढेर लगा देगा। लेकिन वह खुद क्या कर रहा है –

यह सोचने का कभी कष्ट ही नहीं करता है। सारी दुनियाँ की बुराई गिनता रहेगा – अपने को छोड कर।

मूर्खों की जमात

दस मूर्ख सफर पर जा रहे थे। नदी स्नान के बाद अपने को गिन लेना उचित समझा। गिनना शुरू किया। एक एक करके सबने गिनती की, परन्तु दस की जगह नौ ही आता था। उन्हें एक के खोने की चिंता हो गई। सब रोने-पीटने लगे। पास खड़े एक मनुष्य ने उन्हें गिनकर बताया कि भाई तुम लोग पूरे दस हो। अपने को छोडकर गिनते हो तो कैसे दस पूरे होंगे? आज के समाज का यही हाल है। सेवा भावी ऐसा नहीं करते।

संतों का स्वभाव इस से भिन्न होता है। वे अपने से ही गिनती शुरू करते हैं। अपनी बुराइयों को समाप्त करने से ही सृष्टि में मगल होगा। बाकी सब बाद की बात है। संतों की भूमिका इतनी ऊँची होती है कि उन्हें समाज में सहज साम्य का दर्शन होता है। हवाई जहाज पर से बडे बडे वृक्ष और पौधों में अंतर नहीं दिखता है। संत हमारी सेवा में रात दिन लगे हैं -- परन्तु बदले में कुछ चाहते नहीं हैं। साधक की अवस्थ में सेवा करते रहने से अहकार आदि दोषों का क्षय होता है। सिद्धावस्था में उनके बिना किये भी समाज की सेवा होती रहती है। सूरज का उदय होना उसका सहज स्वभाव है। परन्तु उस से सृष्टि को सहज लाभ मिल जाती है। ऐसे लोग ही मार्ग दर्शक होते हैं।

ऐसे साधुओं को हम नहीं जानते जिन्होंने कहीं पहाड़ों पर बैठकर मोक्ष प्राप्त कर लिया हो। उन्हें जानकर लाभ भी क्या? समाज ने उन्हें जन्म दिया, चलना-बोलना सिखाया। बदले में खुद उन्होंने तो मोक्ष प्राप्त किया और समाज की तरफ उलट कर देखा भी नहीं। इस सामाजिक ऋण के साथ मरने वालों को मोक्ष मिलता होगा, इस में मुझे तो संदेह है। सच्चे संत तो वही हैं जो अपने अनुभवों को समाज के बीच खोल देते हैं। समाज उस से फायदा उठाये या नहीं यह दूसरी बात है। आचार्य श्री तुलसी को बचपन से ही समाज-सेवा की लगन थी। वे चाहते तो उन्हें भी सांसारिक सुविधायें प्राप्त हो सकती थीं। शादी, व्यापार, धर्म के लिए धर्मशाला, स्कूल आदि सब कुछ हो सकता था। लेकिन उन्हें इन सब चीजों की निस्सारता समझ में आ गई थी। इसलिए उन्होंने सेवा का मार्ग चुना। ईश्वर ने उन्हें उस पद पर पहुँचा दिया है जहाँ से सेवा का अच्छा अवसर है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि समाज को सद्बुद्धि दें कि आचार्य श्री के इस यज्ञ में हथियार बनकर काम आयें। आचार्य श्री के जीवन का उद्देश्य सफल हो और व्यापक होता जाय यही हमारी कामना है।

दोस्तो! आज जून की सात तारिख है। इसी तारीख को आज से 1335 वर्ष पहले (ई० 632) एक ऐसा पैगम्बर खुदा का प्यारा हो गया, जिसका नाम अनंत काल तक इतिहास में चमकता रहेगा और लोग उससे प्रेरणा लेते रहेंगे। उस समय अरब में धर्म

इतना रूढ़िग्रस्त हो गया था कि चारों ओर अंधविश्वास का साम्राज्य छा गया। क्रिया काण्ड में उलझा मानव आचरण की ओर से उदासीन हो रहा था। नैतिकता का नामोनिसान मिटता जा रहा था। हरेक जमात ने अपने अपने लिए अलग अलग कई कई भगवानों का निर्माण कर लिया था। अलग अलग तरह की पूजा विधियाँ थीं, परन्तु मनुष्य के साथ मनुष्य जैसा व्यवहार नहीं होता था। दुर्बल और गरीब इन्सान – बेचा जाता था। औरतें तो खरीद बिक्री की वस्तु आज भी किसी न किसी रूप में जहाँ तहाँ बनी ही है। सारा अरब लुटेरों के जमात में बटा हुआ था। अधिकांश झगड़े धन के नाम पर होते थे। ऐसे समय में मोहम्मद पैगम्बर का आगमन हुआ। उन्होंने हिम्मत से सारी बुराइयों के खिलाफ आवाज ऊँची की। एक ईश्वरी सत्ता को तथा मानवीय समता को प्रतिष्ठित किया। इस के लिए उन्हें सारी जिन्दगी संघर्ष करना पड़ा। आखिरी दिनों में वे खलीफा (राजा) होकर खुदा के प्यारे बने। फिर भी मृत्यु के समय उनके घर में थोड़ी सी खजूर के सिवा और कुछ नहीं था। इस समृद्ध अकिंचन की आवाज दुनियाँ को झकझोर दिया। उस समय रूढ़िवाद का सारा ढाँचा चरमरा गया। इस्लाम धर्म दूर दूर तक फैल गया।

हिन्दुस्तान में दुनिया के दो प्रमुख धर्मावलम्बियों के बीच धर्म के नाम पर आज भी झगड़े हो रहे हैं। उस समय न कोई हिन्दू रहता है न मुसलमान।

आज रूढ़िवाद और भ्रष्टाचार का बोल - बाला इस देश में बढ़ रहा है। उस जमाने से आज की तुलना तो नहीं हो सकती; परन्तु आज भी आचरण के प्रति उदासीनता बहुत बढ़ गई है। आज के लोग अधिक बुद्धिवादी हैं। इसलिए गल्ती पर पर्दा डालने में कामयाब हो रहे हैं। यह अधिक-खतरनाक बात है। इस खतरे से मानवता की रक्षा होनी चाहिए। क्या हम पैगम्बर की प्रतीक्षा करें ?

अणुव्रत एक ऐसा ही आन्दोलन है। समाज में सच्चे मनुष्य का निर्माण ही इसका लक्ष्य है। हमें चाहिए कि इस पर अमल करें और अणुव्रती समाज की प्रतिष्ठापना करें। हमारे आलस के कारण बार - बार भगवान को कष्ट करके स्वं अवतार लेना पड़े या अपना पैगम्बर भेजना पड़े, यह ईश्वर के साथ न्याय है क्या ? क्यों न हम अणुव्रत के निम्न नियमों को अपना कर प्रभु को छुट्टी दें ?

१. मैं चलने - फिरने वाले निरपराध प्राणी का संकल्प पूर्वक वध नहीं करूँगा।

२ मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूँगा और आक्रमक नीति का समर्थन भी नहीं करूँगा।

३ मैं हिंसात्मक उपद्रवों एवं तोड - फोड मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूँगा।

४ मैं मानवीय एकता में विश्वास रखूँगा—

क-मैं जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को अस्पृश्य या उच्च नीच नहीं मानूँगा।

ख-मैं संपत्ति, सत्ता आदि के आधार पर किसी को हीन-उच्च नहीं मानूँगा।

५ मैं सब धर्म सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखूँगा।

६. मैं व्यवसाय व व्यवहार में सत्य की साधना करूँगा।

७ मैं चोर वृत्ति से किसी की वस्तु नहीं लूँगा।

८ मैं स्वदार (या स्वपति) सन्तोषी रहता हुआ ब्रह्मचर्य की साधना करूँगा।

९. मैं रुपए व अन्य प्रलोभन से मत (वोट) न लूँगा और न दूँगा।

१० मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूँगा।

११ मैं मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा।

मैं सम्बन्धित वर्गीय अणुव्रतों का पालन करूँगा।



आचार्य श्री तुलसी

जैसा मैंने समझा

पंचम चरण

जनता की नजरों में !

डायरी के पन्ने से

16 जुलाई 1967, आज सुबह अहमदाबाद पहुँचा । श्री मोतीलाल राका, श्री धनराज सेठिया और श्रीमती सुसी फिसर (ईंगलैंड) हमारे साथ हैं । आचार्य श्री तुलसी का आज अहमदाबाद में पदार्पण हुआ । यहीं इस साल का चातुर्मास होगा । यद्यपि यह नगर उत्तर भारत के पश्चिमी छोड पर है , परतु हम दक्षिणी भाग में रहने वालों का मानना है कि आचार्य श्री के घोषित दक्षिण यात्रा का यह प्रथम विराम है । यहाँ से चलकर अगला चातुर्मास कहीं दक्षिणी भाग में ही होने वाला है। और मात्र इस कल्पना से हमारी जिम्मेदारी और उत्साह बढ गया है ।

आचार्य श्री के स्वागत में यहाँ के राज्यपाल तथा प्रमुख नेताओं के साथ ही जन -मेदनी उमड रही थी । साधारण जनता में इनके लिए अपार श्रद्धा है । सच्चे सतों के प्रति भारतियों के हृदय में जो श्रद्धा-भक्ति है, वह कोई नई चीज नहीं है । यही भारत की आत्मा है । इसी के कारण हजारों साल से, सैकडो उलट - फेर के बाद भी भारतीय आत्मा टूटी नहीं । सब कुछ झेल कर भी भारत अडिग खडा रहा । दुनियाँ में शायद चीन को छोड कर किसी देश की ऐसी अडिग परपरा इतिहास में नहीं मिलती ।

आचार्य श्री ने अपने व्याख्यान में संप्रदायवाद और इस प्रवृत्ति के धार्मिक नेताओं पर जोरदार प्रहार किया। इस महानगरी में इतनी निर्भीकता से ऐसी सिंह गर्जन करेंगे, इस बात की किसी को आशा नहीं थी। व्याख्यान के समय हॉल खचा खच भरा था, परंतु एकदम शान्त, जिसे अंग्रेजी में 'पीनड्रॉप साइलेन्स' कहते हैं। शाम में जब हम आचार्य श्री से मिलने गये तो श्रीमती लुसी फिसर ने अणुव्रत संबंधी कई प्रश्न पूछे। दुभाषियों के माध्यम से आचार्य श्री ने उन प्रश्नों का समाधान कारक उत्तर दिया। फिर भी यह लड़की बाद में मुझे पूछ पूछ कर हैरान करनेवाली है। यह 'अनार्किस्ट' सिद्धान्त में मानती है। 'अनार्किस्ट' एक विचार है, जो पूर्ण स्वतंत्रता में मानता है। हरेक मनुष्य मुक्त और स्वतन्त्र है। अपने अच्छे बुरे के लिए खुद जिम्मेदार है और इसीलिए किसी प्रकार की राज्य सत्ता, धर्म सत्ता या सामाजिक संगठन आदि में उनकी मान्यता नहीं है। लेकिन इन दोनों लड़कियों (एक लड़की अन्ना रावर्ट, बेंगलूर में ही है) में जिज्ञासा बहुत है। हर विषय को जानना चाहती हैं और सबकी बातें अत्यन्त श्रद्धा से सुनती हैं। जैन मुनियों का तपोमय जीवन और विचार से यह बहुत प्रभावित हुई है। फिर भी मुखपत्ती आदि की बातें इन्हें जंचती नहीं है।

आचार्य श्री के दर्शन से आज एक बार फिर मन प्रफुल्लित हो उठा है। धन्य हैं वे लोग, जिन्हें बराबर संतों की संगति

मिलती है। सत संगति की उपलब्धि बताते हुए तुलसीदास ने लिखा है :—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिय तुला एक अग।
तुलै न तुलसी सकल मिली, जो सुख लव सतसग॥

अर्थात .—"हे भाई! तराजू के एक पलडे पर स्वर्ग तथा स्वर्ग से भी ऊपर के लोकों का सुख रखो और दूसरे पलडे पर एक क्षण सत सगती में उपलब्ध सुख को रखो। मेरा (तुलसीदास का) मानना है कि सत सुख का पलडा भारी पडेगा।" तुलसीदास का कहना ठीक ही है। सुख या दुःख भोगने के लिए हमें इन्द्रियों को सजग और अनुभव में रखना पडता है। सत सगति के समय तो हम सुख-दुःख से परे इन्द्रियों से अलग, स्थितिप्रज्ञ की अवस्था में पहुँच जाते हैं। अपने आप को शून्य कर देना ही तो मोक्ष की अनुभूति है। सत सगति के समय वह अनुभूति सहज ही होती है। आम जनता को भी इस सुख की अनुभूति होती है।

आचार्य श्री तुलसी की जीवनी का अगला चरण प्रारंभ करना है तो उसका नाम होगा "जनता की नजरों में"।



बडप्पन की कसौटी



प्यारे दोस्तो! राजनीति आज समाज पर हर ओर से छावी होती जा रही है। आज शहरी जीवन में कहीं कोई सीधी तरह सच्चाई को प्रगट नहीं करता है। 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाली कहावत भी अब पुराना पड गया है। 'मुँह में राम'—तटस्थता का द्योतक है। अब भला तटस्थ लोगों को छुरी चलाने का मौका कहाँ मिलेगा? फिर छुरी छिपाने का काम भी कम कठिन नहीं है। अब तो लोगों ने वैज्ञानिक नुस्खा अपनाया है। मुँह पर आपके लिए प्रसशा की फूल बरसाते रहेंगे और आपके पीछे आपकी निन्दा का बाजार गर्म करके, बिना छुरी ही आपको समाप्त करने का प्रयास करेंगे। इस में वे सफल भी हो जाते हैं। और तो और, आज दो विरोधी देशों के नेता भी आपस में मिलकर जनता पर मत भेद प्रगट होने नहीं देते हैं। सत-प्रति-सत् विरोध के बावजूद भी संयुक्त विज्ञप्ति में लिखा जाता है—"बात चीत बहुत मधुर और मैत्री पूर्ण रही।" एक ही नेता शराब बन्दी आन्दोलन का नेतृत्व करके सीधे शराब की नई दुकान का उद्घाटन करते हैं। उनके बात करने का ढग ऐसा है कि दोनों जगह जय-

जयकार हो जाता है। आज सामान्य आदमी भी बहुत चालाक होता जा रहा है। वह भी "जिधर सूरज उधर नमस्कार" करना सीख लिया है। अब इस हालत में अगर किसी एक के लिए जनता की भावना का पता लगाना हो तो कितना कठिन काम है, इस का अदाज लगाया जा सकता है। कम से कम मेरे जैसे लोग तो पूरे फेल हो जायेंगे। फिर भी हमने इस किताब का विषय यही चुना और लेखनी बढा दी। इस हिम्मत के पीछे मेरा अपना अनुभव है। साधारण जनता कम से कम सतो के प्रति ईमानदार है। ऊपर लिखी बातें सतों के लिए लागू नहीं होता है। सच्चे सतों के प्रति जनता में जहाँ अपार श्रद्धा है, वहीं संत वेषधारी असतो को वह दो टूक बातें कहने में भी आगा - पीछा नही करती है। फिर आज जनतत्र में जनता को नजरंदाज करने का तो सवाल ही नही उठता है। इसलिए आचार्य श्री तुलसी के लिए सामान्य जनता कैसी श्रद्धा रखती है और उनके विचारों के प्रति उसकी कैसी आस्था है, यह जाने बिना आचार्य श्री को ठीक से समझ पाना कठिन है। अत· इस भाग में जनता की राय जानने की कोशिश करेंगे। पीछले भागों में कई घटनाओं का जिक्र आया है, जो जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। इस भाग में भी घटनाओं की प्रमुखता रहेगी। अनुमान लगाने के लिए पाठक स्वतत्र हैं।

अपनी कहानी

प्यारे दोस्तो ! 'जनता के नजरों में' आचार्य श्री तुलसी का क्या महत्व और स्थान है, इस विषयों में मैं अधिक नहीं लिख सकता। मुझे उनके साथ रहने का सौभाग्य नहीं मिला है। कुछ दिनों से संपर्क में आया हूँ। कुछ साहित्यों का अध्ययन किया है। फिर भी अपने को जनता के बीच का एक मनुष्य मानकर अपन विचार ही पहले रख रहा हूँ।

मैं यह किताब लिख रहा हूँ इस पर से यह नहीं समझना कि मैं कोई अन्ध श्रद्धालु हूँ। मुझ में अनेक गुण दोष हो सकते हैं, परंतु अन्धविश्वास का कहीं नमो निशान नहीं है। मेरी श्रद्धा आचार्य श्री तुलसी के प्रति नहीं उनके व्यवहार और विचार के प्रति है। मैं आचार्य श्री तुलसी के विषय में बहुत थोड़ा जानता था, परंतु उन्हें एक संप्रदायवादी मानता था इसलिए कोई खास उत्सुकता नहीं थी। अचानक सर्वोदय नेता श्री पारस जैन (हैदराबाद) बेंगलूर में दो तीन मित्रों के साथ मिलने आये। उन्होंने आचार्य श्री तुलसी के अनुयाइयों की एक शिविर आश्रम में लगाने की बात की। मैंने भी स्वीकृति दे दी।

चंद दिनों के बाद श्री धनराज सेठिया मुझे साध्वी श्री सोहना जी से मिलाने यशवंतपुरम् ले गये। साध्वी श्री से थोड़ी देर बात हुई। उन लोगों के त्याग, तपस्या की बात सुनकर उत्सुकता

चडी। फिर सपर्क बढ़ा। इसी दर्म्यान श्री मोतीलाल राका से मिलना हुआ। उनसे घटा - घटा भर तात्विक चर्चायें चलती रहती थीं। उन्होंने मुझे जैन धर्म, तेरा पथ और अणुव्रत की जानकारी कराई। समय पर शिविर लगाया गया। उस में श्री चदनमल मेहता (जोधपुर) के निकट सपर्क में आना हुआ। उन्होंने भी अपने व्यवहार से मुझे आकर्षित किया। शिविरार्थी भाई - बहनों की नम्रता और श्रद्धा भी कम आकर्षक नहीं थी। जिज्ञासा बढ़ती गई। स्थानीय तेरापथी बन्धुओं से निकटता भी बढ़ती गई।

जुलाई 1966 में भाई धनराज जी, मोतीलाल जी आदि के साथ बिदासार (राजस्थान) गया। आचार्य श्री वहाँ चातुर्मास बिता रहे थे। वहाँ आचार्य श्री की उपस्थिति में मैंने भी दक्षिण बासियों की ओर से उनसे दक्षिण यात्रा के लिए अर्ज की। आचार्य श्री से खुलकर बातें की। उसी समय मन में रही सही शंका भी कि— 'आचार्य श्री तुलसी एक सप्रदायवादी हैं,' समाप्त हो गई। सर्वोदय और अणुव्रत की निकटता की अनुभूति हुई। मन में सोचा कि इन दोनों आन्दोलनों को निकट लाया जाना चाहिए। मैं ईमानदारी से उसके लिए प्रयास भी करता हूँ। आचार्य श्री के प्रति जो श्रद्धा बनी वह और बढ़ती ही जा रही है। उसके बाद तो अनेक लोगों के सपर्क में आया और हर मुलाकात के बाद हमारी श्रद्धा बढ़ती ही गई है। मैं ऐसे महानुभावों में से कुछ का जिक्र करूँगा जिन से मैं प्रभावित हुआ हूँ। 'श्री प्रभूदयाल डाबरी वाल'

जी से मिलना हुआ। उन्होंने जब अपनी जीवनी का पूर्वांश सुनाया तो मैं रो पड़ा। लेकिन उनका वर्तमान जीवन सुनकर दंग रह गया। सोचता हूँ—एक रसोइये से करोड़पति बन जाने के बाद तो उन्हें अहंकारी होना चाहिए था। लेकिन हैं अत्यंत उदार और सरल। श्री हर्षचन्द्र जैन (सह-संपादक 'अणुव्रत') से मिला। दोस्ती बढ़ी। साधु जीवन से निकल कर सामान्य जीवन में आने के बाद उस जीवन की आलोचना करनी चाहिए थी, परंतु ये तो तन मन से साधुओं की सेवा में लगे हैं। श्री छगनलाल भाच्छा ('सह संपादक 'अणुव्रत') को जब देखता हूँ तो अणुव्रत की धुन में ही व्यस्त देखता हूँ। एक पढ़ा लिखा नौजवान और वह भी व्यापारी वर्ग में, इस तरह तन मन से सेवा का काम करे यह सामान्य बात नहीं है। बेंगलूर में जो भी तेरापंथी हमारे संपर्क में आये सबके सब आचार्य श्री की भक्ति से सराबोर। उदाहरण के लिए धनराज सेठिया। एक सीधे सादे व्यापारी। आचार्य श्री के नाम पर रात दिन का अन्तर मिटाकर काम में घूमते रहते हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो क्या हुआ? कोई साथ नहीं चल रहा तो परवाह क्या? 'एकला चलोरे' की धुन में मस्त सेठिया निरंतर चलते रहेंगे। उन्हें इतना सोचने समझने की भी फुरसत नहीं कि आज काम होगा संघ की शक्ति से, व्यक्ति आज गौण होता जा रहा है। वयोवृद्ध श्री अमोलक चन्द मुथा, जिनकी अंग्रेजी भाषा, वैद्यक का ज्ञान और सामान्य ज्ञान के सामने साधारण आदमी टिक नहीं पाता।

आचार्य श्री के नाम पर सब कुछ समर्पण को तैयार है। आचार्य श्री का नाम लेते ही श्रद्धा से उनके नेत्र सजल हो जाते हैं। ऐसे अनेक सज्जन मेरे आस-पास हैं जिन्होंने आचार्य श्री के कारण अपनी दृष्टि को व्यापक बना लिया है, संकुचित भावना से ऊपर उठचुके हैं। उनमें त्याग का अंकुर फूटा है, और तपस्या का महत्व आंका है। आचार्य श्री का पूरा प्रयत्न है कि अणुव्रत कार्यकर्त्ताओं की चिंतन की भवना और दृष्टि व्यापक हो। हमारे विकास के लिए उन्होंने पूरा प्रयत्न किया है। बावजूद इसके, अगर हम संकुचित भावना आदि से ऊपर नहीं उठ पाते तो इस में हमारा ही दोष है। अंधे को चश्मे से क्या लाभ? तुलसीदास की यह चौपाई ही हम पर लागू होगी कि—"ऊसर बरसै नहिं तृण जामा।" कार्यकर्ताओं की तो बात ही अलग है। दूसरे लोग भी आचार्य श्री के लिए अत्यन्त श्रद्धालु हैं। इन चंद महीनों के अन्दर ही मैं देख रहा हूँ कि दक्षिण यात्रा को सफल बनाने में कैसे-कैसे लोग कहाँ-कहाँ से आ गये। मैं श्री बी० बी० बालिगा (स्पीकर, मैसूर विधान परिषद, एवं दक्षिण प्रादेशिक अणुव्रत समिति के अध्यक्ष) श्री एम० वि० कृष्णराव (उपाध्यक्ष, द० प्रा० अ० समिति) आदि बड़े नेताओं की बात नहीं कर रहा हूँ। सामान्य कार्यकर्त्ताओं की भूमिका भी सराहनीय है। उदाहरण के लिए श्री एम० शान्तिलाल जैन (मद्रास) को देखता हूँ। आचार्य श्री के काम में तन-मन-धन से दीवाने हो गये हैं। ऐसे ही हैं श्री जी० सुब्रमण्यम् जी (द० प्रा० अ० समिति के मंत्री), श्रीमती

सविता बहन कामदार, श्री नानालाल भाई भट्ट (मद्रास) आदि इसी तरह बेंगलूर के श्री एस० आर० सुब्रमण्यम्, श्री सारंग मठ मन्त्री, क० हि० सभा), श्री पी० एस० चन्द्रशेखर (संवाद दाता' (नव भारत टाइम्स, बंबई), श्री सरेमल डोसी, श्री धनराज धारीवाल आदि। इस तरह सभी के नामों की गिनती कराना यहा संभव नहीं है।

दोस्तो! इन सबके बीच मेरे सामने 'श्री मोतीलाल राका' और 'श्री प्रभूदयाल डाबरीवाल' का जीवन चकमती ज्यौ नजर आती है। एक लाखों गवाकर दीन नहीं हैं तो दूसरे लखों कमाकर धनवान बनने के खतरे से मुक्त हैं। एक ज्ञान गगा में डुबकी लगाकर शान्त हैं तो दूसरे भक्ति में सराबोर होकर 'त्वदीय त्वदीय' की माला जपते रहते हैं। दोनों की मिली जुली मूर्ति हम जैसों के लिए प्रेरक-शक्ति बनी हुई है।

प्यारे दोस्तो! हम जो कुछ हैं वह अनेक संस्कारों का परिणाम हैं। मैं अपनी कहानी पर गौर करता हूँ तो अनेकों के प्रति श्रद्धा से मन भर आता है। बचपन में मैं माताजी के कहने पर व्रत, उपवास करता था। पिताजी रात में रोज रामायण पढ़ते, कीर्तन करते तो वहाँ बैठा रहता। हमारे पडोस में एक वृद्ध रहते थे। वे हमारे दादा होते थे। बहुत दिनों पहले उनकी आँखें जाती रही थी। उन्हें रामायण का बहुत ज्ञान था। साथ ही वे बिना कागज पेन्सिल की सहायता से बड़े बड़े गणित को सवाल हल

कर लेते थे। बचपन में मुझे हिसाब सिखाते और रामायण पढ़ने को कहते। रामायण का अर्थ समझाते। धार्मिक कहानियाँ सुनाते। श्रीमान दादा जी (बाबू साहब) तथा माता-पिता जी के कारण मेरे मन में धार्मिक सस्कारो का बीज पडा। सूरदास दादा को मैं अपना आदि गुरु मानता हूँ। समय के साथ परिस्थिति ने अनुकूलता दिखाई। मेरे एक विद्वान चाचा काशी में सस्कृत विद्यालय चलाते हैं। नाम है श्री रामलक्ष्मणाचार्य, लब्ध स्वर्ण पदक—दार्शनिक सार्व भौमेश, न० न्याय, न० व्याकरण, पूर्व मीमासा, उत्तर मीमासा (वेदान्त) साहित्य, आचार्य षड्दर्शन पोष्टाचार्य। नाम से ही पता चल गया होगा कि, कितने बड़े विद्वान हैं। उनके उपदेशो का भी जीवन पर असर है। इनके बाद समाज सेवी एव सर्वोदय नेता चाचा ब्रजमोहन शर्माजी का सहारा पाकर पू० विनोबा जी के पास पहुँचा। वर्षों पू० विनोबा जी के साथ रहा। वहाँ पू० श्रीमती महादेवी ताई के मातृ-स्नेह और उपदेश से तथा पू० बाबा के सान्निध्य में बहुत कुछ सीखा। फिर भी सीखने जानने को अनंत ज्ञान अछूता पडा है। उसकी कोई सीमा नहीं है। पू० विनोबा जी के सान्निध्य में सब से महत्वपूर्ण बात जो सीख पाया वह यह कि—ज्ञान पाने का एक भी मौका खोना नही चाहिए। और यह कि हर कहीं गुण पडा है। गुण ग्रहण की दृष्टि होनी चाहिए। उसी दृष्टि-कोण के कारण मैं जैन साधुओं के सपर्क में आया। इन साधुओं को तपस्या और संयम देखकर मैं एक बार आश्चर्य में पड गया। कहाँ,

हैं आधुनिक ज्ञानी डाक्टर जो दिन रात लोगों को विटामिन और केलोरीज़ का हिसाब बताते रहते हैं। रूखे सूखे अल्प भोजन, कम कपड़ा, बिना जूता छाता के और कठिन परिश्रम करने पर भी मनुष्य बिना दवा लम्बी आयु स्वस्थ रहकर जी सकता है, अगर उसकी निष्ठा दृढ़ हो। यह बात अगर वे देखना चाहें तो जैन साधुओं के जीवन का अध्ययन करें। मैंने पहली बार साध्वी श्री सोहना जी से मिलकर इस बात का अनुभव किया।

मैं वैसे सर्वोदय के काम में लगा हुआ था ही, फिर भी निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि साध्वी श्री सोहना जी का मातृ-स्नेह, मधुर व्यवहार, उदार विचार, विद्वत्ता और तपस्या ने मुझे साधन के पथ में और सक्रिय बनने को प्रेरित किया है। मैं ने आज तक कहीं कोई संकल्प नहीं लिया है। उस लायक अपने को बना नहीं पाया हूँ। परंतु अघोषित संकल्पों से जीवन का मार्ग कहाँ से कहाँ चला गया है, यह मेरे सिवा कौन जान सकता है।

मेरे प्यारे दोस्तो! मैं औरों के विषय में बताने चला था, लेकिन अपने विषय में ही बहुत देर तक उलझाता रहा। असल में औरों के विषय में मात्र एकाध घटना ही ली जा सकती है। अपने विषय में तो अनुभव अधिक होगा ही।

आचार्य श्री के जिन अनुयाइयों का हमने ऊपर जिक्र किया है, उन में से कुछ तो मेरे दिल की धड़कन बन गये हैं। और उन

सब में आचार्य श्री के गुण ही प्रतिबिंबित हो रहे हैं। अब लेखनी आगे बढ़ाने से पहले एक बार मन से साध्वी श्री सोहना जी की पुनः वन्दना करता हूँ। उन्हीं की प्रेरणा से यह किताब लिखनी शुरू की थी। और आज तक अपने आपको सबलित अनुभव करता हूँ।

साधु - साध्वियों का विकास :

आचार्य श्री के कारण तेरा पंथ में साधु - साध्वियों का जो उत्थान हुआ है उसका जिक्र पहले आ चुका है। उन्हें जनता और नेता से परे मानकर कुछ चर्चा फिर से कर रहा हूँ तो हर्ज क्या? आचार्य श्री के शासन काल में हम देखते हैं कि एक ओर मुनि श्री नथमल जी, बुद्धमल जी, नागराज जी आदि आगम और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हो गये, वहाँ मुनि श्री चन्दनमल जी, दुलीचन्द जी, रूपचन्द जी आदि ने कविता के क्षेत्र में क्रान्ति कर दी है। मुनि श्री चंपालाल जी (भाई जी) जिन्होंने आचार्य श्री को दीक्षा ग्रहण के समय मदद की थी—आज वृद्धावस्था में भी जवानों का जिस्म लिए घूम रहे हैं। वे अपने सहज स्वभाव के कारण हम सब के भाईजी बन गये हैं। संघ के सभी साधु - साध्वी ज्ञान गुण से ओत - प्रोत हैं, परन्तु मेरा सब से परिचय नहीं है। मैंने बहुतों को देखा है और उन सब के प्रति मुझे आकर्षण हुआ है। कला, साहित्य या शास्त्र, किसी भी क्षेत्र में साधुओं का गहन अध्ययन चलता रहता है। एक - एक

बैठक में सौ सौ श्लोकों की रचना करने वालों की कमी नहीं है। संघ के साधुओं ने अवधान विद्या का अभ्यास करके देश - विदेश को चकित कर दिया है।

दोस्तो! अवधान विद्या क्या है, यह प्रश्न तुम्हारे सामने आ गया है। अच्छा तो थोड़ी जानकारी देकर आगे बढ़ना ठीक रहेगा।

अवधान:—अवधान विद्या स्मरण शक्ति और मानसिक एकाग्रता का मिला जुला अभ्यास है। परन्तु इस के प्रयोग को देखकर कोई भी उसे दैवी चमत्कार के सिवा कुछ कह ही नहीं सकता है। जैन साहित्य देखने से पता चलता है कि बहुत पुराने समय से इस समाज में अवधान के अभ्यास की परंपरा चली आ रही है। इस के अभ्यासी के सामने सौ, हजार या उस से भी अधिक (जितने का अभ्यास हो) प्रश्न एक साथ किये जाते हैं। प्रश्न अलग अलग भाषाओं में हो सकते है और उसके विषय भी अलग अलग हो सकते हैं। प्रश्न कर्ता भी अलग अलग हो सकते हैं। सभी प्रश्न सुन लेने के बाद अवधानी अलग अलग सब प्रश्नों को दुहरा देते हैं। सचमुच यह एक चमत्कार ही है।

एक बार गुजरात के भाई धीरजलाल टोकरसी शाह जी ने आचार्य श्री के सामने शतावधान का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। आचार्य श्री ने इस विद्या को अपने संघ में दाखिल करने का निश्चय

किया । धीरज भाईने पहले इसे श्री मुनि धनराज जी और महेन्द्र कुमार जी को सिखाया । इसके बाद मुनि श्री श्रीचंद जी, राजकरम जी, रिद्धकरण जी आदि ने भी इसका अभ्यास किया । फिर तो एक स्पर्धा-सी चल पडी । सौ, हजार और डेढ हजार तक का अवधान करने वाले साधु आज सघ में मौजूद हैं। इस तरह सघ के सदस्यों का जो चहुमुँखी विकास हो पाया और हो रहा है, वह सब आचार्य श्री तुलसी के कारण ही हुआ है । इसलिए सघ के सभी साधु - साध्वियाँ एक आचार्य के निर्देशन में कन्याकुमारी से नैपाल तक घूम रहे हैं ।

दोस्तो ! अब कुछ पत्रिकाओं की तरफ चलें । आज तो हर रोज अणुव्रत और आचार्य श्री तुलसी से संबन्धित खबरें अखबार में देखी जा सकती है। देखना यह है कि शुरू- शुरू में अखबारों की क्या प्रतिक्रिया रही । अखबार प्रजातंत्र में जनता का प्रतिनिधि माना जाता है ।

पत्रों की प्रतिक्रिया —

प्रथम अणुव्रत सम्मेलन में दिल्ली जैसे शहर में जब सैकडों लोगों ने अणुव्रती बनने का सकल्प किया तो हिन्दुस्तान टाइम्स (नई दिल्ली) ने लिखा—"चमत्कार का युग अभी समाप्त नहीं हुआ है । दिल्ली में भी हमें चारों ओर फैले हुए अधकार में प्रकाश की एक किरण दीख पडी ।—— —जब अनुचित रूप से कमाये गये

पैसे पर फूलने फलने वाले व्यापारी एकत्रित होकर सच्चाई से जीवन बिताने का आन्दोलन शुरू करते हैं, तब कौन उससे प्रभावित नहीं होगा। -उन्होंने यह सत् प्रतिज्ञा आचार्य श्री तुलसी के सामने अणुव्रती संघ के पहले वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर ग्रहण की है।...... --आचार्य श्री तुलसी, जो कि इस संगठन या आन्दोलन के दिमाग हैं, राजपूताना के रेतीले मैदानों को पार कर दिल्ली की पक्की सड़कों पर आये हैं।"

2 मई, 1950 को अणुव्रती - संघ का स्वागत करते हुए कलकत्ता का प्रमुख अखबार 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' ने लिखा— " ——इस देश में व्यापारी, व्यवसाय में मिथ्याचार जोरों पर है। यह भय है कि कहीं उससे समाज के जीवन का सारा नैतिक ढाँचा ही नष्ट न हो जाये। इसलिए कुछ व्यापारियों का यह आन्दोलन कि वे व्यापार – व्यवसाय में मिथ्या आचार न करेंगे, देश में स्वस्थ व्यापार – व्यवसाय को जन्म दे सकेगा। इस दिशा में अणुव्रती संघ के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी ने जो पहल की है, उसके लिए वे बधाई के अधिकारी हैं।"

कलकत्ता के सुप्रसिद्ध बंगला दैनिक 'आनन्द बाजार पत्रिका' ने 'नूतन सतयुग' शीर्षक से लिखा था— "———तो क्या कलियुग का अवसान हो गया है? क्या सतयुग प्रकट होने को है? नई दिल्ली, 30 अप्रैल का एक समाचार है कि मारवाड़ी

समाज के कितने ही लखपति और करोड़पति लोगों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे कभी चोर बाजारी नहीं करेंगे।- - इसके प्रेरक हैं आचार्य श्री तुलसी, जिन्होंने मानव जाति की समस्त बुराइयो को दूर करने के लिए एक आन्दोलन प्रारभ किया है। उसीके समर्थन में ये प्रतिज्ञायें की गई हैं। हम आचार्य श्री तुलसी से सविनय अनुरोध करना चाहते हैं कि वे कलकत्ता नगरी में पधारने की कृपा करें।" (बाद में कलकत्ता भी जाना हुआ)

प्रसिद्ध गाँधी वादी श्री किशोरलाल भाई मश्रुवाला ने सघ के व्रतों की विवेचना करते हुए 'हरिजन – सेवक' के हिन्दी, अग्रेजी तथा गुजराती अकों में सम्पादकीय लेख लिखा—" अणुव्रत का अर्थ है—प्रत्येक व्रत का अणु से लेकर क्रमशः बढ़ता हुआ पालन। उदाहरण के लिए, कोई आदमी जो अहिंसा और अपरिग्रह में विश्वास रखता है, लेकिन उसके अनुसार चलने की ताकत अपने में नहीं पाता, वह इस पद्धति का आश्रय लेकर किसी विशेष हिंसा से दूर रहने या एक हद के बाहर और किसी खास ढंग से सग्रह न करने का सकल्प करेगा और धीरे धीरे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ेगा। ऐसे व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।"

न्यूयार्क के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'टाइम्स' में 15 मई, 1950 के अक में सवाद प्रकाशित किया, "अन्य अनेक स्थानों के कुछ व्यक्तियों की तरह एक दुबला, पतला, ठिंगना, चमकती आँखों वाला

भारतीय संसार की वर्तमान स्थिति के प्रति अत्यन्त चिन्तित है। चौतीस वर्ष की आयु का वह आचार्य श्री तुलसी है, जो जैन तेरा पंथ समाज का आचार्य है। वह अहिंसा में विश्वास करने वाला धार्मिक समुदाय है। आचार्य श्री तुलसी ने 1949 में अणुव्रती संघ की स्थापना की थी।—— –जब समस्त भारत को व्रती बना चुकेंगे, तब शेष संसार को भी व्रती बनाने की उनकी योजना है।"

दोस्तो! शुरू शुरू में ही देश विदेश के पत्रों में होने वाली प्रतिक्रिया से यह साफ जाहिर हो जाता है कि इस आन्दोलन की आवश्यकता संदेह से परे है। कुल दुनियाँ बीस वर्षों से हमारी राह देख रही है कि हम सब के सब व्रती बनें तो उनकी भी बारी आये।

दोस्तो! पत्रों की प्रतिक्रिया के बाद हम तुम्हें राज्यसभा और विधान परिषद में ले चलते हैं। प्रजातन्त्र में बौद्धिक रूप से जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व इन सभाओं के ही हाथ में होना माना जाता है।

राज्यसभा

1957 में जब अणुव्रत आन्दोलन विषयक प्रश्नोत्तर चल रहे थे, तब एक प्रश्न के उत्तर में तत्कालीन केन्द्रीय गृह मन्त्रालय के मन्त्री श्री ब० ना० दातार ने कहा था—"इस आन्दोलन को राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री की शुभ कामनायें प्राप्त हैं। आन्दोलन के

अन्तर्गत चल रहे भ्रष्टाचार - विरोधी अभियान का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था कि यह कार्य सिर्फ भाषणों तक ही सीमित नहीं रहेगा। अपितु ये साधु जन घर - घर जाकर स्वतन्त्र रूप से उच्चाधिकारियों को भ्रष्टाचार से बचने की प्रेरणा देंगे। इन चन्द वाक्यो के द्वारा देश की जनता की आत्मा की आवाज प्रगट की गई गया है। काश! हम उनकी आकाक्ष पूरी कर पाते।

विधान परिषद :

सन् 1959 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद में विधायक श्री सुगनचंद जी ने एक प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव पर अन्य 27 विधायकों के भी हस्ताक्षर थे। प्रस्ताव में कह गया था कि—“ यह सदन निश्चय करता है कि उत्तर प्रदेशीय सरकार देश में आचार्य श्री तुलसी द्वारा चलाये गये आन्दोलन में यथोचित सहयोग तथा सहायता दें।” इस प्रस्ताव पर काफी लम्बी बहस चली। विधायकों को सदेह था कि आन्दोलन में आर्थिक मदद की मांग की जा रही है। यहाँ चंद विधायकों के इस विषय पर बिचार इस प्रकार है। श्री ललितप्रसाद सोनकर जी ने कहा—“ यह प्रस्ताव सरकार से धन की माग नहीं करता और न किसी अन्य वस्तु की माग करता है। लेकिन यह प्रस्ताव सरकार से यही चाहता है कि उसके शासन में रहने वाले लोगों की नैतिक और आध्यात्म संबन्धी या चरित्र - सबन्धी बातों में सुधार हो।”

विधायक श्री शिवनारायण जी ने कहा—"सरकार से सहयोग का मतलब यह है कि सरकार की सहानुभूति प्राप्त हो। आज हरेक आदमी सहयोग का नारा लगा रहा है। सहयोग का मतलब है कि नीचे से लेकर उपर तक सभी इस काम में जुट जायें। ——— पैसे की कमी नहीं मान्यवर। पैसा कौन मांगता है" "

चर्चाओं का उत्तर देते हुए तत्कालीन सुरक्षा एव समाज कल्याण विभाग के राज्य मत्री श्री लक्ष्मीनारायण आचार्य ने कहा—"जहाँ तक सहायता का संबन्ध है और सहयोग तथा सहायता के शब्द प्रयोग किए गये हैं, शायद उसके माने यह हैं कि सरकार यह कह दे कि अणुव्रत आन्दोलन एक ठीक आन्दोलन है। ———लेकिन वह सहायता रुपये पैसे की नहीं है, मैं ऐसा समझता हूँ। जहाँ तक इन चीजों का संबन्ध है, श्री मान् मुझे सरकार की तरफ से यह कहने में संकोच नहीं है कि अणुव्रत आन्दोलन को सरकार गलत नहीं समझती है और ऐसा भी ख्याल करती है कि अणुव्रत - आन्दोलन कोई विकास विरोधी कदम (Retrogressive ste p नहीं है और न कोई प्रतिक्रियावादी शक्तियों की जजीर है या धर्म की स्थापना का नया तरीका।"

उपरोक्त चर्चाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अणुव्रत के प्रति जनता की उमड़ती श्रद्धा ने सरकार तक को जगाया।

1967 में राजस्थान सरकार ने भी अणुव्रत आन्दोलन के समर्थन में एक प्रस्ताव पास किया है।

विद्यार्थियो का आकर्षण :

विद्यार्थी ही भारत का भविष्य है। अतः आन्दोलन ने विद्यार्थियों में काम करने का तयकिया। दिल्ली जैसे शहर में पचास हायर सेकेन्ड्री स्कूलों में अणुव्रत विद्यार्थी परिषद बनाई गई। उन सबको एक सूत्र में बाधने के लिए प्रत्येक स्कूल के प्रतिनिधियों के आधार पर 'केन्द्रीय अणुव्रत विद्यार्थी परिषद' की स्थापना की गई। इस परिषद ने दिल्ली में अच्छा काम किया। कई बार दहेज विरोधी कार्यक्रम का आयोजन हुआ। भाषण, वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करके विद्यार्थियों में चारित्रिक निष्ठा जागृत करना इसका मुख्य लक्ष्य रहा। इस तरह की समितियाँ देश भर में जगह - जगह अपने - अपने ढंग से काम कर रही है। दिन - दिन विद्यार्थियों का झुकाव इस आन्दोलन की ओर बढ़ रहा है।

विद्यार्थियों के अलावा 'महिला अणुव्रत समितियाँ', 'अणुव्रत मित्र परिषद', 'बाल अणुव्रत मण्डली' आदि के नाम से देश भर में सैकड़ों छोटी - बड़ी समितियाँ आज इस आन्दोलन के लिए काम कर रही हैं। निश्चय ही यह सब आचार्य श्री और उनके विचारों के प्रति आम जनता की श्रद्धा का परिणाम है।

दोस्तो! अब मैं पुरानी पुस्तकों के आधार पर कुछ घटनाओं का जिक्र करने जा रहा हूँ। इस में मुख्यत मुनि श्री बुद्धमल जी द्वारा लिखित जीवनी हमारे सामने है। हृदय - परिवर्तन की घटनायें

अब इतनी अधिक होती है कि उसका न कोई लेखा जोखा रखता है और न उसे अब कोई विशेष महत्व की दृष्टि से आंकता है। पुराना संकलन कहीं होगा तो मुझे उपलब्ध नहीं हो सका। उसकी आवश्यकता भी क्या? चन्द चावल ही हाडी भर भात पकने की सूचना दे देते हैं।

गुनहगार का दर्द

"हाँ, सुना तो था, लेकिन वही भाषण यदि कुछ पहले सुन पाता तो मुझे यहाँ आना ही नहीं पड़ता।" यह वाक्य है एक कैदी का। दिल्ली सेन्ट्रल जेल में आचार्य श्री का व्याख्यान हुआ था। कुछ दिन बाद एक कैदी को सिपाही, जेल से कोर्ट लिए जा रहा था। रास्ते में जब एक भाई ने पूछा कि—"क्या तुमने आचार्य श्री का व्याख्यान सुना था?" तो कैदी ने उपरोक्त बातें कही थी। कितना दर्द और पश्चाताप है इस वाक्य में। यह आचार्य श्री के व्यक्तित्व का प्रभाव है। कुछ ऐसा है।

नेहरू जी को आश्चर्य—हाथरस (उत्तर प्रदेश) के एक सौ नौ व्यापारियों ने एक साथ मिलावट न करने की शपथ की तो पण्डित नेहरू जी को भी सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा कि ऐसे लोगों का नाम पत्रों में प्रकाशित होना चाहिए। इस से औरों को भी प्रेरण मिलेगी। सचमुच जहाँ चारों ओर आर्थिक घुड़ दौड़ चल रही हो और लोगों की मान्यता दृढ हो गई हो कि 'ईमानदारी

से व्यापार हो ही नहीं सकता', यहाँ एक छोटे से शहर में सौ-सौ व्यापारी स्वेच्छा से ईमानदारी का रास्ता अख्तियार करें, तो इसे तलवार की धार पर चलना ही कहेंगे। इसे सुनकर आश्चर्य किसे नही होगा, परंतु आचार्य श्री तुलसी के प्रति लोगों में जो श्रद्धा है वह ऐसा ही आत्मबल प्रदान करती है और लोग अनहोनी को भी होनी में बदल देते हैं।

रोटी नहीं ईमान चाहिए :—एक मुनीम को अणुव्रती बनने के बाद नौकरी से हाथ धोना पडा। उसने गलत बही-खाता लिखने से इन्कार कर दिया। फिर मालिक ने उसकी आवश्यकता नहीं समझी। बहुत दिनों तक कष्ट सबने के बाद उसकी ईमानदारी चर्चा का विषय बन गई। फिर तो साख बनी और वह आर्थिक सकट से पार निकल गया।

धर्म संकट :—एक औषधि विक्रेता अणुव्रती बना। अचानक उसकी दुकान में दस हजार रुपये के मूल्य का मिलावटी पिपरमेंट आ गया। उसके सामने अर्थ और धर्म का सकट आ खड़ा हुआ। आखिर धर्म ने अर्थ पर विजय पाई। उसने सारा मिलावटी पिपरमेंट नदी को भेंट कर दिया।

असत्य से संघर्ष :—एक अणुव्रती ने सरकार से मुकदमा लडकर काफी आर्थिक नुकसान उठाया, परंतु अन्याय को वर्दाश्त

नहीं किया। उस पर दो सौ रुपये का इन्कमटैक्स लगाया गया। उसका कहना था कि यह गलत है। फिर अन्याय के साथ समझौता कैसा? हम मिट जायेंगे परंतु अन्याय न खुद करेंगे और न अन्याय सहन करेंगे।

लालच बनाम धर्म —यह कौन नहीं जानता कि आज शहरों में दूकान के लिए मकान मिलना बहुत कठिन है। बिना 'पगड़ी' मकान की बात करने वालों को लोग पागल कहेंगे। 'पगड़ी' आज शिष्टाचार बन गया है। जब छोटे मोटे शहरों का यह हालत है तो दिल्ली की बात तो निश्चय ही दिल दहलाने वाली होगी। दिल्ली में ही एक अणुव्रती भाई ने एक मकान बनाया। उस में आठ दूकानों की व्यवस्था थी। बिना बुलाये पगड़ी दाता अपनी अपनी थैली लेकर आने लगे। उस भाई के सामने भी अर्थ धर्म का संकट खड़ा हो गया। लेकिन वह जरा भी विचलित नहीं हुआ। सभी दूकाने बिना 'पगड़ी' लिए किराये पर उठा दीं।

दोस्तो! आज की हालत में जहाँ अर्थ के लिए मनुष्य धर्म और ईमान को चौराहे पर बेच रहा हो, वहाँ एक सामान्य शिष्टाचार को भी अधर्म मानकर पचासों हजार रुपये का त्याग सामान्य बात नहीं कही जा सकती।

साँच को आँच नहीं —एक था अणुव्रती। वह सीमेन्ट सप्लाई क्लर्क का काम करता था। एक बार की बात है कि स्टाक में

सीमेन्ट कम था और प्रार्थियों की भीड़ थी। उधर सीमेन्ट ऑफिसर पर अनेक मित्रों द्वारा दबाव डाला जा रहा था। ऑफिसर ने क्लर्क को बुलाकर उसे अपनी परेशानी बताई और कहा कि—"आप अपनी रिपोर्ट में अन्य व्यक्तियों के प्रार्थना पत्र पर स्टाक में सीमेन्ट न होना लिख देना। इस तरह जो स्टाक शेष है उसे मित्रों में बाँट देने से समस्या हल हो जायगी।" क्लर्क क्षण भर के लिए उलझन में पड़ गया। सोचने लगा—"अगर ऑफिसर की बात नहीं मानेंगे तो नौकरी खतरे में पड जायगी जो परिवार का एक मात्र सहारा है। और उनका कहना मानलें तो अणुव्रत के संकल्प का क्या होगा?" आखिर उसने हिम्मत करके कहा—"श्रीमान, मुझे माफ करें। आपको अगर ऐसा करना ही है तो मुझ से रिपोर्ट न मांगे। मैं गलत रिपोर्ट नहीं लिख सकता। आप जिन्हें सीमेन्ट देना चाहें उनकी अरजियों पर खुद हस्ताक्षर कर दें। मैं परमिट बना दूंगा।" उस समय तो अफसर को अवश्य कुछ क्रोध आया, परन्तु बाद में उस क्लर्क के प्रति उसका विश्वास बहुत बढ गया। बाद में तो ऑफिसर ने उसकी रिपोर्ट देखना भी कभी आवश्यक नहीं समझा। किसी भी कठिन और उलझन के काम को, अणुव्रती क्लर्क को सौंपकर वह निश्चिन्त हो जाता। सचमुच सत्य का फल तो मीठा होता ही है, परन्तु उस के परीक्षण काल में डटे रहना आसान नहीं है। मनुष्य का मन एक तरफ इतना कमजोर होता है कि वह कदम-कदम पर लडखडाने लगता है, दूसरी ओर वह इतना मजबूत होता है कि

हिमाचल से टकराकर भी अपनी जगह से नहीं हिलता है। हम अभ्यास के द्वारा अगर मन को एक बार मजबूत कर लें तो किसी प्रकार का प्रलोभन हमें डिगा नहीं सकता। इस गुण को हासिल करने के लिए श्रद्धा और विश्वास चाहिये। बाकी किसी प्रकार की योग्यता अनिवार्य नहीं है। यहा मैं अपने साथ घटी एक घटना का जिक्र करना चाहता हूँ।

गरीब की ईमानदारी :

राजम्मा शुरू से ही अर्थात चार साल से आश्रम में घरेलू काम करती है। आर्थिक सहायता के नाम पर हम ३० रुपये मासिक देते हैं। पति शराब पीने का आदी है, इसलिए खाने-पीने में भी तगी बनी रहती है। ईश्वर की कृपा है कि उसे कोई बच्चा नहीं है।

यहाँ की प्रधान ट्रस्टी और विनोबा जी की प्रमुख सेविका श्रीमती महादेवी ताई जी उसे बहुत प्यार करती हैं। खैर, यह तो उनकी आदत ही है। उन्होंने राजम्मा को सीधी सादी सरल भाषा में अर्थ और संतान की निस्सारता समझा दी। उस अपढ़ महिला पर उन चद शब्दों का असर कितना गहरा पडा, उसका उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

एक बार दोपहर को मैं सो गया। बहुत थका था इसलिए नींद गहरी आई। उसी समय एक भाई ने १००० रुपयों का नोटों

का वडल लाकर दिया । मैं नींद की हालत में ही नोटों को तकिया के नीचे रखकर फिर सो गया । बाद में उठकर बाहर चला गया । आठ बजे रात में लौटने पर देखा कि राजम्मा अपने चाचा के साथ बैठी है । आते ही वह नोटों का बण्डल मेरे हाथ मे रखकर जल्दी से घर चली गई । बाद में उसने बताया कि नोटो का बण्डल खाट के नीचे गिर गया था । उसने नोटों की बात अपने चाचा को भी नहीं बताई । उसको डर था कि कहीं लालच में आकर ये कुछ अनर्थ न कर बैठें । मेरे लिए तो उन नोटों का खोना जीवन और मौत का सवाल था। समाज का एक-एक पैसा परमात्मा की अमानत है । लेकिन राजम्मा के लिए जैसे कुछ हुआ ही नहीं ।

एक बार आश्रम में परयूषण पर्व पर बहुत लोग आये थे । एक बहन की अगूठी खो गई। उसे खोजने का भरसक प्रयत्न किया गया किन्तु वह नहीं मिली । महीनों बाद राजम्मा को एक अगूठी मिट्टी में मिली । उसने तुरत अगूठी लाकर मुझे दे दी । याद दिलाया कि पर्व के समय एक बहिन की अगूठी खो गई थी । यह वही होनी चाहिए । आप पता लगाकर दे दें । हमने कोशिश की, लेकिन पता नहीं चला । अगूठी आज भी मेरे पास है, लेकिन राजम्मा उसे छूने को तैयार नहीं है ।

दोस्तो! जिस दिन हम अपनी ताकत पहचान लेंगे उसी दिन से हम अजेय हो जायेंगे । किसी भी काम को करने या छोडने का

दृढ़ संकल्प ले लें तो संसार की कोई ताकत हमें विचलित नहीं कर सकती ।

ब्लैक का धन अग्राह्य :—एक व्यापारी अणुव्रती बना। उसका व्यापार साझे का था। कुछ दिन बाद उसकी फर्म को 'प्लास्टिक चूर्ण' का बड़ा कोटा मिला। साथी चाहता था कि उसे ब्लैक में बेच लें। उस में तीन लाख का मुनाफा आता था। लेकिन अणुव्रती होने के नाते अणुव्रती ने ब्लैक करने से इन्कार कर दिया। आखिर इस खींचा-तानी में इसने उस व्यापार से अलग हो जाना ही श्रेयस्कर समझा।

चीनी नहीं, गुड़ सही—कहानी एक चाय पार्टी से आरम्भ होती है। पार्टी में आसाम का एक अणुव्रती व्यापारी और टेक्सटाइल औफिसर साथ बैठे थे। व्यापारी के लिए अलग से गुड़ की चाय लाई गई। औफिसर को जिज्ञासा हुई। पूछने पर व्यापारी ने बताया कि—"इस समय कन्ट्रोल से पर्याप्त चीनी नहीं मिलती है। अणुव्रती होने के नाते ब्लैक में चीनी नहीं ले सकता। अत गुड से चाय पीना तय कर लिया"। औफिसर बहुत प्रभावित हुआ और उस व्यापारी के लिए प्रति माह जरूरत के लायक चीनी की व्यवस्था कन्ट्रोल की दूकान से करवा दी।

दोस्तो! बात चीनी की चल पड़ी तो आप बीती सुनाने की इच्छा हो गई। कार्ड में जितनी चीनी मिलती है वह आश्रम के

लिए दस दिन में समाप्त हो जाती है। हमने ब्लैक से न खरीदने का तय कर लिया है। बाकी दिनों में गुड से काम चलाया जाता है। अब परेशानी केवल मोतीलाल जी जैसे चंद मित्रो से है, जिन्हें गुड की चाय कतई ग्राह्य नहीं है। उसके लिए अपने कोटे की चीनी ही छिपा कर रखनी पडती है। बाकी काम मजे में चल जाता है।

इन्सपेक्शन फर्म का या खुद का:—एक अणुव्रती भाई कपडे का व्यापार करता था। एक दिन कुछ खास नमूने के कपडे स्टेशन मास्टर के हाथ बेचे। स्टेशन मास्टर के जाते ही स्थानीय सेल्सटेक्स इन्सपेक्टर साहब आ धमके। उन्हें भी वही कपडा पसद आया जो स्टेशन मास्टर ने खरीदा था। आग्रह और धमकी के बावजूद दूकानदार अपनी बात बदलकर वह कपडा इन्सपेक्टर को देने के लिए राजी नहीं हुआ। इन्सपेक्टर क्रोध से आँखें लाल - पीली करके दूकान से बाहर निकला। जब दूकानदार वार्षिक बही - खाता दिखाने सेल्स टैक्स अफसर के पास पहुँचा तो वहाँ इन्सपेक्टर साहब मौजूद थे। इन्सपेक्टर ने अफसर से कहा कि मैं इस फर्म का निरीक्षण करना चाहता हूँ। अफसर ने उन्हें इसके लिए इजाजत दे दी। अब उसने मनमाने ढंग से व्यापारी को सताना शुरू कर दिया। बार - बार व्यापारी को बुलाता और तरह - तरह के प्रश्न पूछ कर परेशान करता। वह नोट करता जाता कि इस फर्म में कब कहाँ से

कितना माल आता है। वह व्यापारी के विषय में छोटी मोटी बातें भी ध्यान में रखने लगा। उसने नोट किया कि म्युनिसिपल कमेटी का टरमिनल टैक्स कब और कितना दिया है। व्यापारी को अपने जाल में फँसाने के लिए उसने सभी सम्भाव्य स्रोतों का उपयोग किया। उसने देखा कि यह कहीं कभी गलत व्यवहार करता ही नहीं है। अब इन्सपेक्टर साहब फर्म की जगह अपने व्यवहार का निरीक्षण करने लगे। उनकी आत्मा ने कहा कि—"गलती सब तुम्हारी है।" आखिर उसने अपने निरीक्षण कार्य की समाप्ति इन शब्दों के साथ की—"मैंने फर्म के बही खाते बड़ी सावधानी से देखे हैं। इन में कहीं भी गोल माल नहीं मिला।"

हरिजनों की भावना —मारवाड़ के 'काणाना' नामक गाँव में हरिजनों की संख्या तो बहुत है, परंतु महाजन उनका बहुत शोषण करते थे। (आज भी कर रहे होंगे) वहाँ के हरिजनों ने आचार्य श्री के नाम एक प्रार्थना पत्र लिखकर भेजा था। प्रार्थना-पत्र में उनकी अपनी स्थिति और महाजनों के दुर्व्यवहार की बात तो थी ही, साथ ही उन्होंने बड़ी आन्तरिक पीड़ा और श्रद्धा के साथ लिखा था—"क्या हम मानव पुत्र नहीं हैं? आपके उपदेश बड़े हितकर व मानव कल्याण मूलक हैं। हम आपके उपदेशों पर चलेंगे और आपके अणुव्रत आन्दोलन के नियमों की कभी भी अवहेलना नहीं करेंगे।"

आचार्य श्री ने उस पत्र का जिक्र करते हुए अपने व्याख्यान में लोगों को समझाया कि—"किसी को हीन मानना बुरी बात है। किसी को धोखा देना, अधिक ब्याज लेना, झूठा मुकदमा चलाना आदि किसी के लिए उचित नहीं है। फिर जैनों के लिए तो यह बहुत ही निन्दनीय है। आचार्य श्री के व्याख्यान का असर हुआ और बहुत सारे लोगों ने इन बुराइयों से बचने की प्रतिज्ञा ली।

विद्यार्थियों की सूझ :—'काणाना' में ही महाजन लोग आपस में दो गुटों में विभक्त थे। उनका आपस में बात-बात में झगडा होता रहता था। जब आचार्य श्री 'काणाना' पहुँचे तो विद्यार्थियों ने उस अवसर से लाभ उठाने की सोची। वे लोग गाँव के इस झगडे को मिटाना चाहते थे। लगभग सवा-सौ विद्यार्थियों का एक जुलूस आचार्य श्री के पास पहुँचा। उन लोगों ने आचार्य श्री से अनुरोध किया कि जब तक इस गाँव के झगडे का निपटारा नहीं हो जाय तब तक आप अपना व्याख्यान न शुरू करें। साथ ही उन लोगों ने उक्त अवधि तक के लिए अनशन करने की घोषणा कर दी। आचार्य श्री को उनका अनुरोध अच्छा लगा। प्रवचन बन्द रहा। उधर भोजन बन्द रहा। वर्षों की साध के बाद आचार्य श्री ने इस गाँव को पवित्र किया और अब उनका व्याख्यान नहीं हुआ तो गाँव में हल-चल मच गयी। आखिर दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया। वर्षों का द्वेष एक क्षण में इस तरह गायब हो

गया जैसे वर्षों की अंधेरी गुफा में टार्च का बटन दबाते ही अंधेरा वहाँ से गायब हो जाता है। सब प्रेम से एक दूसरे से गले मिले और मिल कर आचार्य श्री से क्षमा याचना कर ली।

प्रशंसनीय बालक :— घटना 'रावलिया' (राजस्थान) की है। चौदह साल के बालक शोभालाल ने आचार्य श्री के हाथ में एक पत्र रख दिया। आचार्य श्री वहीं विराज रहे थे।

आचार्य श्री ने पूछा— "क्या लिखा है इस में?"

बालक ने कहा— "गुरुदेव! मेरे नाना और गाँववालों के बीच झगड़ा चलता है। इस पत्र में आप से प्रार्थना की गई है कि आप उसे मिटा दें।"

आचार्य श्री ने पत्र पढ़कर उसी बालक से पूछा कि—"तुम इस में दोषी किसे मानते हो?"

बालक सचाई से जरा भी विचलित नहीं हुआ और आचार्य श्री से कहा—"गुरुदेव! अधिक दोष तो मेरे नाना जी का ही है।"

आचार्य श्री उसके नाना को बुलाकर समझाया। फिर गाँव वालों को भी बुलाया। दोनों को समझा दिया। रातोंरात झगड़ा समाप्त हो गया। जो व्यक्ति गाँव तो क्या पास पड़ोस के कहने और समझाने पर भी अपने हठ से नहीं हटा था, वह बालक की

सूक्ष्म बुद्धि के कारण आचार्य श्री के समझाने से तुरंत ठीक रास्ते पर आ गया। दोनों पक्षों ने आचार्य श्री से क्षमा मागी और प्रेम से रहने का तय किया।

बालक निर्विकार और अहंकार शून्य होता है। वह प्रेम मय है अतः झगडे को पसंद नहीं करता है। हम लोग सिर्फ अहंकार को पोषण देने के लिए ईर्ष्या-द्वेष को अपनाकर झगडते रहते हैं। एक कहानी उदाहरण के लिए प्रस्तुत कर रहा हूँ।

पण्डितों के पुत्र :— एक गाँव में दो पण्डित रहते थे। वर्षों से दोनों के बीच झगडा चला आ रहा था। आपस में बोल-चाल भी बन्द थी। दोनों को एक-एक लड़का था। दोनों में अच्छी दोस्ती थी। दोनों के माता-पिता को यह बात पसद नहीं थी। आखिर दोनों बच्चों ने इस झगडे को मिटाने के लिए एक तरकीब निकाली। दोनों ने मिलकर दो पत्र तैयार किये। दोनों ने एक दूसरे के घर जाकर एक दूसरे के पिता के हाथ में पत्र देकर कहा कि—"पिता जी ने यह पत्र दिया है।" पत्र में लिखा था कि—"आज ठाकुरवारी में कीर्तन होने वाला है। मैं आप से अपनी गलती के लिए क्षमा माँगते हुए प्रार्थना करता हूँ कि कीर्तन में अवश्य पधारें। हम इस आपसी झगडे को मिटाना चाहते हैं।" दोनों को आश्चर्य तो हुआ, परतु वे खुश थे। दोनों के अहंकार का पोषण हो गया था। रात को कीर्तन में दोनों इकट्ठे हुए। एक

ने जब बात शुरू की और पत्र लिखने के लिए धन्यवाद दिया तो दूसरे ने भी साश्चर्य पत्र की बात कही। आखिर भेद खुला कि दोनों के बच्चों ने यह शरारत की है। परंतु तब तक तो शरारत ने शराफ़त को प्रतिष्ठित कर दिया था। सब लोगों को खुशी हुई। उस दिन जोरदार कीर्तन चला और दोनों बच्चों के साथ गाँव भर के बच्चों को खूब मिठाई मिली।

समाज को संजीवन :—दोस्तों! आज अंग्रेज लड़की से शादी करना आम बात मानी जाती है। पहले तो समुद्रपार जाना भी पाप माना जाता था। विदेश से लौटने वालों को विलायती कहकर समाज से अलग भी कर दिया जाता था। इस देशी विलायती का सामाजिक झगड़ा देश भर में जहाँ तहाँ चलता ही रहता था। इसी तरह का एक झगड़ा बहुत पहले चुरु (राजस्थान) में शुरू हुआ। धीरे धीरे इस झगड़े ने थली (राजस्थान का एक बड़ा भाग) के समस्त ओसवालों में विग्रह उत्पन्न कर दिया। वर्षों तक चलने वाले इस झगड़े से समाज को बहुत नुकसान हुआ। एक तरह से ओसवालों का सामाजिक ढाँचा ही चर-मरा उठा था। कालांतर में थककर लोगों ने प्रत्यक्ष में तो लड़ना छोड़ दिया, परंतु अन्दर अन्दर उसकी आग सुलगती रही। जब कभी सामूहिक भोज आदि का प्रसंग उपस्थित होता तो राख के नीचे से द्वेष की चिनगारी चमकने लगती। सं० 1919 में आचार्य श्री ने चुरु में

चातुर्मास किया। समय का लाभ उठाकर उन्होंने लोगों को समझाना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे बात बन गई। लोग आपस में मिले। सबने आचार्य श्री की प्रेरणा से वर्षों पुराने विग्रह के वृक्ष को काट कर इस स्थान पर प्रेम का पौधा लगाया। 'चुरू' से प्रारम्भ होने वाला इस विग्रह रूपी अग्नि का 'चुरू' में ही अग्नि सस्कार सपन्न हुआ।

प्यारे दोस्तो! इस तरह की घटनाओं का अगर सकलन किया जाय तो कई ग्रन्थ बन सकते हैं। उसकी आवश्यकता नहीं है। चंद उदाहरण से ही यह सिद्ध हो जाता है कि आचार्य श्री के वचनों पर जनता की अपार श्रद्धा है। मुख्य चीज तो सिद्धान्त और श्रद्धा के समन्वय का है। सिद्धान्त सही रहते हुए भी कई बार अव्यावहारिक होता है। इसलिए उस में सामान्य जनता की दिलचस्पी नहीं होती है। अणुव्रत का सिद्धान्त तो अविरोधी और सर्वोपयोगी है ही, साथ ही यह व्यवहार में भी सुखी और स्वस्थ जीवन के अनुकूल है, यह बात इन कुछ घटनाओं से सिद्ध हो जाता है। इस के बाद भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि इन बीस वर्षों में जो कुछ परिणाम आया है, गणित की दृष्टि से इस गति से भारत में अणुव्रत अनन्त काल तक सफल नहीं हो सकता है। मान भी लें कि ऐसा ही होगा तो भी इस के लिए जिम्मेवार नम्बर एक में हम कार्यकर्त्ता हैं और नम्बर दो में आम जनता। कार्यकर्त्ता इसलिए कि—प्रथम तो हम खुद अणुव्रती नहीं बन सके हैं और

आम जनता तक विचार को पहुँचा नहीं सके हैं। जनता इसलिए कि वह स्वय क्यों नहीं आगे बढ़कर इस के प्रचार प्रसार की जिम्मेदारी लेती? फिर भी मेरा मानना है कि अणुव्रत से न सिर्फ भारत में बल्कि कुल दुनियाँ में परिवर्तन होकर रहेगा। विचार जब किसी के मस्तिष्क से निकलता है तो प्रारम्भ में चंद लोगों को समझाने में बहुत समय लगता है। बाद में तो, अगर वह विचार युग धर्म के अनुकूल और अनिवार्य होता है तो दावानल की तरह बढ़ जाता है। चद दीपक अगर ठीक से जल जाये तो दीपक से दीपक जलाने में अधिक समय नहीं लगता। और शीघ्र ही सब ओर दीवाली ही दीवाली नजर आती है।

मेरे दोस्तो! इतनी आस्था और विश्वास के बावजूद जो खतरा सामने है उसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता। आज जिस तरह अपने देश में साम्प्रदायिकता और विषमता तेजी से बढ़ रही है,' उस से एक गभीर खतरा उपस्थित हो गया है। हमारी गति अगर उस से भी अधिक तेज नहीं रही तो निराश हाथ लगने की परिस्थिति आ सकती है। आन्दोलन को जनता ने स्वागत किया है। आचार्य श्री के प्रति अणुव्रत विचार के कारण ही लाखों लोगों की श्रद्धा बढ़ी है। लेकिन आज तक 'अणुव्रत' व्यापारियों के घेरे को तोड़ नहीं पा रहा है। इतिहास साक्षी है कि व्यापारियों के माध्यम से आज तक देश में एक बार भी साजाजिक परिवर्तन नहीं हुआ। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि बिना व्यापारियों के

सहयोग के कोई बडा काम भी नहीं हुआ है। 'अब इस में मुख्य जरूरत है कि व्यापारी भाई इस आन्दोलन को जनता के बीच पहुँचाने में पहल करें। मेरा ख्याल है वैसा ही प्रयास आचार्य श्री की ओर से चल रहा है। हम आशावान रहेंगे। परिस्थिति अणुव्रत के लिए इतनी अनुकूल है कि सब को देर-अबेर सही तरीके से चलना ही पडेगा।

जो भी हो दोस्तो! आचार्य श्री अणुव्रत विचारों को समाज के सामने रखकर सबकी श्रद्धा के पात्र बन चुके हैं। यह श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है। यही है उनकी और उनके विचार की महानता का प्रमाण पत्र।

दोस्तो! इस देश में प्रारंभ से ही तरह-तरह के साधु-सत होते रहे हैं। साधु ही क्यों भगवान भी तरह-तरह के रूपों में यहाँ अवतरित होते रहे। और तो और एक ही वक्त में कई-कई भगवानों को एकत्र होने का भी मौका इसी धरती पर मिला। हजारों वर्षों के बाद भी ऐसे उदाहरण इतिहास में मिल जाते हैं, तो उस समय की हालत क्या होगी, कौन जाने? उदाहरण के लिए परशुराम और राम, बलराम और कृष्ण, महावीर और बुद्ध—समकालिन भगवान थे। आज भी शायद तुम्हें पता नहीं होगा कि इस समय कितने भगवान हमारे बीच हैं। सब का पता तो मुझे भी नहीं है, परंतु जो मालूम है वह बताता हूँ। उन सब के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करना तुम्हारा काम होगा।

भगवान न० 1— श्री साईबाबा। ये भक्तों को हवा में से पकड़कर तरह तरह की मुर्तियाँ और जवाहरात दे देते हैं, ऐसा सुना है।

भगवान न० 2— श्री मेहर बाबा। ये चालीस साल से मौन हैं।

भगवान न० 3— "माय बाप" अर्थात् ब्रह्म। इन्होंने 'ब्रह्म कुमारी समाज' की स्थापना की है। नई गीता लिखी है। अगले आठ साल में प्रलय की घोषणा की है।

भगवान न० 4— अनुकूल ठाकुर। इन्होंने 'आनन्द मार्ग' नाम से एक पथ चलाया है। देवघर में प्रधान केन्द्र है।

ये सब के सब भगवान के अवतार हैं, ऐसा उनका और उनके शिष्यों का कहना है। इनके अलावा भी कई और भगवान होंगे, इस पुण्यमयी भारत वर्ष में, जिनका मुझे पता नहीं। अधिक से अधिक भगवानों का अवतार एक साथ और वह भी इस समय कितनी खुशी की बात है! आज इस देश में भ्रष्टाचार, अकाल, जातिवाद संप्रदायवाद, राजनैतिक झगड़े, धार्मिक झगड़े आदि ऐसे हजारों तत्व मौजूद हैं जिन्होंने भगवान को अवतार लेने के लिए मजबूर किया होगा। हो सकता है कि भगवान को अनेकों रूपों में एक साथ अवतार लेकर काम निपटाने की जल्दी हो। बात तो जचती है। आज कोई एकाध लंका और मथुरा तो है नहीं। पूरा

देश ही लका और मथुरा बना है। फिर एक-एक लका और मथुरा में रावण और कंस नहीं, रावण और कंसों का समूह है। फिर तो ईश्वर की जिम्मेदारी निश्चय ही बढ़ गई है। लेकिन अफसोस होता है कि आधुनिक भगवानों ने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। उन बेचारों की भी अपनी परिस्थिति है। यह न त्रेता है न द्वापर, जब लोग भविष्य वाणी के आधार पर या बशी की तान पर भरोसा रखकर भगवान को भगवान मान लेते थे। आज नास्तिक जनता बेचारे भगवान को भी 'लेबोरेट्री' में ले जाकर जाचना चाहती है। अब जब तक यह जाच पडताल पूरा नहीं हो जाती तब तक तो प्रतिक्षा करनी ही होगी।

मेरे प्यारे दोस्तो। इस देश का ऐसा दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ ढोंग और धोखा-धडी भी भगवान और धर्म के नाम पर खूब फलती-फूलती रही। परतु इस तरह का व्यक्ति एक सीमा से बाहर नही निकल पाया। वह सीमा बडी हो या छोटी हो उसे एक खास सप्रदाय कह सकते हैं। आम जनता ने जिसे सार्वजनिक रूप से अपनाया वह भगवान हो या इन्सान—इस बात से उसे कोई खास दिलचस्पी नहीं रही। उसने आका है व्यक्ति के विचार की व्यापकता अनिवार्यता और सहिष्णुता को इसी कारण इस देश के

दोस्तो! हमने जिन वर्तमान भगवानों के विषय में जिक्र किया है उनकी आलोचना के ख्याल से नहीं किया। कोई अपने को भगवान कहें तो भला मेरे क्या नुकसान है? यहाँ तो ऋषियों ने सार्वजनिक मत्र ही दिया—'अहं ब्रह्मास्मि', 'सो अहं अस्मि', इसलिए किसी को भी यह छूट है कि वह अपने को अथवा औरों को भगवान कहे।

आचार्य श्री तुलसी तेरा पथ के आचार्य हैं, अणुव्रत के प्रणेता, संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं के पंडित, आगम के मर्मज्ञ, शास्त्र के ज्ञाता आदि विभिन्न रूपों से हमारे सामने हैं। फिर भी आचार्य श्री अपने आपको एक मानव मात्र मानते हैं। यह उनकी एक प्रधान विशेषता है। इसी नम्रता के कारण जनता की नजरों में वर्तमान के कई भगवानों से वे ऊँचे हैं। मनुष्य, मनुष्य का नहीं उसके गुणों की पूजा करता है। आम जनता का जिन्होंने प्रेम से मार्ग दर्शन किया, उसके साथ नम्रता पूर्वक समानता का व्यवहार किया, उन्हें जनता ने सर आँखों पर उठा लिया। उन से थोड़ा ही सही जनता को प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। इसके बदले कोई अपने आप में कितना ही चमत्कारी हो, योगी हो, शास्त्रज्ञ हो, या रिद्धि सिद्धि हो, आम जनता की नजरों में ऊँचा नहीं उठ सकता। इस में छोटे बड़े, खोटे खरे क प्रश्न गौण है, मुख्य प्रश्न है आवश्यकता पूर्ति का।

कबीर ने गाया—

धनि रहीम जल पक वह, लघु जिव अघाय ।
उदधि बडाई कौन है, जगत पियासा जाय ॥

अर्थात् .—" उस कीचड मिले पानी को धन्यवाद है जिमसे छोटे - मोटे जीव अपनी प्यास मिटाते हैं । समुद्र बडा है परन्तु उसकी बडप्पन किस काम का ? पानी नमकीन होने के कारण वहाँ से सब प्यासे लौट जाते हैं । बडप्पन तो वास्तव मे उदारता और नम्रता में ही है । अहकार युक्त मनुष्य के सारे गुण निरर्थक सिद्ध होते हैं ।

हिन्दुओं में भगवान और अन्य देवताओं के अलग - अलग अनेकों मंदिर बने हैं । लेकिन हनुमान को छोडकर और किसी भक्त का स्वतत्र मदिर इस देश में दिखाई नहीं देता । मदिर तो जनता की श्रद्धा का प्रतीक है । लेकिन जनता ने मात्र हनुमान को इतना ऊँचा स्थान इसलिए दिया कि हनुमान अत्यन्त नम्र सेवक थे । नम्रता के कारण ही हनुमान की पूजा इस देश में अनेकों देवताओं से बढ़कर होती है । आज इस देश की जनता को भगवान नहीं हनुमान की आवश्यकता है । कुल दुनियाँ में हिंसक शक्ति बढ़ रही है, हथियारों की होड बढ़ती जा रही है । उससे बचने के लिए आनेकानेक हनुमानों की आवश्यकता आज महसूस हो रही है । हनुमान अर्थात सर्वगुण सपन्न होकर भी अपने लिए कोई आकाक्ष

नहीं। सब काम परमात्मा के लिए। साथ ही हनुमान यानी अहकारी को सचेत करने वाला, दुश्मनों से मित्रता कराने वाला, बिना सहायता परहित के लिए कष्ट रूपी समुद्र को पार करने वाला, पूंजी रूपी स्वर्णपुरी (लंका) को भस्म करने वाला, लक्ष्मण रूपी सेवक को सजीवनी देने वाला, सीता रूपी धरती को मुक्त करने वाला।

दोस्तो! आज दुनिया की हालत क्या है? वियतनाम में केवल अमेरिका प्रतिदिन दस करोड़ डालर युद्ध में खर्च कर रहा है। कुल दुनियाँ में युद्ध की तैयारी में प्रति घटा 60 मिलियन* डोलर† खर्च होता है। दुनियाँ की आबादी के लिए प्रति व्यक्ति 30 टन से भी अधिक बारूद का हथियार जमा है। कितना भयावह है यह आंकड़ा? क्यों होता है यह सब? हर रोज विश्व में नये नये विवाद शुरू हो रहे हैं। विवादों के हल का कोई रास्ता नहीं मिल रहा है। अहकार को छोड़े बिना ठीक से सोच भी नहीं सकते। नम्रता के बिना कोई झगड़ा समाप्त नहीं हो सकता। इसलिए तो कहता हूँ कि हनुमान की नम्रता चाहिए। इस विषय का एक रूपक, रामायण के आधार पर बताने जा रहा हूँ —

सुरसा और हनुमान :— सीता की खोज में समुद्र पार

---

* 1 मिलियन बराबर 1000000 होता है।

† 1 डोलर 7-24 पैसे भारतीय मुद्रा में।

कर लंका जाना आवश्यक था। सौ योजन* अर्थात चार सौ कोस चौडा समुद्र लाघ कर अकेला राक्षसों की नगरी में सीता की खोज करना आसान काम नहीं था। आखिर हनुमान जी इस काम के लिए तैयार हो गये। लंका के लिए छलाग लगाई।

उधर देवताओं को शंका हुई कि इस वानर से यह काम पूरा होगा क्या? हनुमान के शारीरिक बल पर किसी को अविश्वास नहीं था, परंतु आगे का काम बुद्धि से सबन्ध रखता था। उन्होंने हनुमान की बुद्धि की परीक्षा लेने का निश्चय किया। सर्पों की माता सुरसा को इस काम के लिए आकाश मार्ग में भेजा गया।

सुरसा हनुमान के आगे आकर बोली—"मैं तुम्हारा भक्षण करूँगी।" हनुमान का कहना था कि—"शरीर से मुझे मोह नहीं है, परंतु इस समय यह शरीर राम के काम में लगा है। मैं सीता का पता लगाकर श्रीराम को जानकारी देने के बाद खुद आकर तुम्हारे मुँह में जाने के लिए तैयार हूँ।"

सुरसा इस के लिए तैयार नहीं थी। हनुमा ने गुस्से में आकर कहा कि—"तब खा लो मुझे। इस कहा-सुनी में वक्त क्यों बर्बाद करना?" अब सुरसा ज्यों-ज्यों अपना मुँह बढ़ाती, हनुमान अपना आकार दूना करते जाते। हनुमान अपनी शारीरिक

---

* रामायण के आधार पर यह दूरी लिखी गयी है। इस समय वास्तव में रामेश्वरम् के पास से लका की दूरी 25 मील के करीब है। उस समय भी शायद इतनी ही रही हो, यह खोज का विषय है।

शक्ति से उसे परास्त करना चाहते थे। लेकिन जब सुरसा ने मुँह का विस्तार पूरे समुद्र के विस्तार के बराबर, अर्थात सौ जोजन कर लिया, तब हनुमान को ध्यान में आया कि इसका मुकाबला बल से नहीं बुद्धि से करना चाहिए। बस हनुमान ने तुरंत अपना स्वरूप अत्यन्त छोटा कर लिया और सुरसा के मुँह में प्रवेश करके बाहर आगये। सुरसा के सामने हाथ जोड़कर बोले—"आपके खाने की प्रक्रिया मैं ने पूरी कर दी। अब इजाजत दीजिए।" सुरसा ने खुश होकर उन्हें बिदा किया।

आज दुनियाँ का एक भाग सुरसा के मुँह की तरह हथियार बढ़ाता है तो दूसरा हनुमान की तरह शरीर विस्तार कर रहा है। दोनों ओर से अहंकार का पोषण हो रहा है। किसी में हिम्मत नहीं कि हनुमान बुद्धि से काम लें। हथियार फेंक कर कहे कि—'अब देखना है तुम्हारे इन हथियारों का क्या उपयोग है' नम्रता पूर्वक अगर कोई राष्ट्र हनुमान की भूमिका पर उतर जाय तो कुल दुनियाँ को रास्ता मिले। एक नया रास्ता सामने आये।

दोस्तो! कमजोरों की नम्रता का अर्थ कायरता होता है। इसलिए हमें शक्तिशाली बनना चाहिए। लेकिन शक्तिशाली का आजकल जो अर्थ किया जाता है वही अनर्थ का बीज है। शक्तिशाली का अर्थ होता है आत्मशक्ति से ओत प्रोत। इस देश के इतिहास में ऐसे शक्तिशालियों की बड़ी रेलपेल रही है। हमारे

जमाने में गाँधी जी ने इस शक्ति को प्राप्त किया था। उन्होंने हजारों दुबले-पतले निहत्थों को शक्ति का दर्शन कराया और अस्त्र-शस्त्र धारी अंग्रेजों को परास्त किया। अमेरिका के नीग्रो नेता श्री मार्टिन लूथर किंग इसके लिए एक नमूना थे।

आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत के द्वारा आम जनता को शक्तिशाली बनाने का काम कर रहे हैं। विश्व शान्ति का जो भवन बनाने का सपना लोग देखते रहे हैं—अणुव्रत उस भवन की बुनियाद तैयार कर रहा है। इसी कारण ज्यों-ज्यों जनता को आचार्य श्री तुलसी के विषय में जानकारी होती जाती है लोगों का आकर्षण बढ़ता जा रहा है।

प्यारे दोस्तो! आज यह भाग समाप्त कर करा हूँ। आज शाम आश्रम में एक सभा बुलाई थी। आज से 23 वर्ष पूर्व (1945 में) आज की तारीख (6 अगस्त में) प्रथम वार अमेरिका ने अणुबम का प्रयोग किया था। 'हीरोशीमा' और 'नागाशाकी' जपान के दो प्रमुख नगर चंद मिनिटों में खाक में मिल गये। उस समय के कुछ फोटों यहाँ टगे हुए हैं। कितना हृदय विदारक है वह दृश्य। उस बम से क्षत-विक्षत मानव आज भी अस्पताल में मौत के इन्तजार में कराह रहा है। कहते हैं आज तक भी उस बम के परिणाम स्वरूप विकलाग शिशुओं का जन्म हो रहा है।

आज उस बम से सौ-सौ गुना अधिक शक्तिशाली बम

दुनियाँ में तैयार हैं। साथ ही उसकी संहारक शक्ति का और भी विकास हो रहा है। उद्जन बम की शक्ति और गुण अणुबम से बहुत अधिक है।

आज मानव अपनी कब्र आप ही खोदता जा रहा है और खुद ही मातम भी मना रहा है।

चारों ओर फैली बारूद के इस घटा टोप अंधेरे में भी दुनियाँ की आँखें भारत की ओर लगी हुई है। आशा है कि शायद भारत अपनी पुरानी परंपराओं का विकास करके मानवता को बचा ले।

'अणुव्रत विचार' एक ऐसी ही रचनात्मक विचार है जो विश्व मानव का मार्ग दर्शन कर सकता है।

हमारा दायित्व बहुत बढ़ गया है। हम दुनियाँ की कठिन परिस्थितियों का अध्ययन करें और 'अणुव्रत' को स्वीकार करें, यह समय का तकाजा है।

अच्छा साथियों! अब हम अगले चरण में मिलेंगे।



आचार्य श्री तुलसी

जैसा मैंने समझा

छठा चरण

नेता की नजरों में !



आजन्म पदयात्री आ० श्री तुलसी के चरण।

डायरी के पन्ने से

मेरे प्यारे साथियो! आज से 'आचार्य श्री तुलसी' की जीवनी का छठा और अन्तिम चरण बताने जा रहा हूँ। आज है 15 अगस्त, अर्थात इस देश का स्वाधीनता दिवस। इन बीस वर्षों में दुनिया के दर्जनों देश आजाद हो गये हैं। सबके लिए अपने - अपने आजादी के दिन का महत्व है, परंतु भारत की आजादी का महत्व कुल विश्व के लिए है। इतिहास की यह एक पवित्र थाती है। मानव इतिहास में पहली बार सामूहिक अहिंसा का इतना बडा और जोखम भरा प्रयोग किया गया। इसीलिए इस देश की आजादी के साथ मानव व्यवहार का नया अध्याय शुरू हुआ। अणुबम की संहारक सफलता के साथ ही परमात्मा ने गाँधी जी के अहिंसक आन्दोलन को सफल बनाकर त्रस्त मानव के सामने एक ज्योतिर्मय मार्ग प्रशस्त कर दिया। मानव स्वतंत्र है कि–वह संहारक मार्ग से जाय या उद्धारक मार्ग से।

1947 में जो आजादी मिली वह राजनैतिक थी। अहिंसक शक्ति की कसौटी का दूसरा और तीसरा कदम–आर्थिक और सामाजिक स्वतत्रता पाना शेष था। (आज तक वह शेष है।) इस देश के नेताओं में अब आत्मबल नहीं था कि इन समस्यो को भी

अहिंसक तरीकों से हल करते। इसके कारण हमारी वह सफलता भी धूमिल हो गयी है। फिर भी उन नेताओं में इतना बल शेष अवश्य था कि जिस किसी ने भी अहिंसक तरीकों से समस्या को हल करने की कोशिश की, उसे समर्थन देते रहे। इसी लिए आचार्य विनोबा जी के सर्वोदय और आचार्य तुलसी के अणुव्रत आन्दोलन को राजनैतिक नेताओं का समर्थन प्राप्त होता रहा। देश के इस नैतिक बल को हम बहुत महत्व देते हैं। आशा की इस एकमात्र किरण के सहारे हम जैसे हजारों लोग समस्याओं से संघर्ष कर रहे हैं। मुझे पूरा यकीन है कि सफलता अवश्य मिलेगी।



नेता की नजरों में

आज की समस्या :

मेरे दोस्तो ! इस भाग का नाम दिया है " नेता की नजरों में ।" तुम आगे देखोगे कि आचार्य श्री तुलसी और अणुव्रत के लिए नेताओं के मन में बहुत श्रद्धा है । इस तरह का एक भी उदाहरण दुनियाँ के और देशों में नहीं मिलेगा । इसका क्या कारण है ? ऐसा लगता है कि हमारे राजनैतिक नेता गण अपने आप को उन समस्याओं को हल करने में असमर्थ पा रहे हैं ; जिसे आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत के माध्यम से हल करना चाहते हैं । उन्होंने इसकी सफलता पर विश्वास भी किया है । यह अलग बात है कि वे अपने को इस में नहीं खपा पा रहे हैं । उनकी भी कुछ मजबूरियाँ हैं । हम आगे बढ़ने से पहले इस बात पर गौर करले कि आखिर उस ' समस्या ' का मूल कहाँ है ?

गाँधी जी का मुख्य काम आजादी की लड़ाई नहीं था । उन्होंने तो अपने जीवन का लक्ष्य माना ' सत्य का प्रयोग ' । स्वतंत्रा के लिए सघर्ष उनकी आध्यात्मिक साधना का एक अग मात्र था । लेकिन कुल मिला कर देखें तो लगता है कि गाँधी जी का रास्ता भारत की ऐतिहासिक अनिवार्यता थी । व्यापक दृष्टि से देखें

तो वह विश्व के लिए भी अनिवार्य था। गाँधी जी का कर्म क्षेत्र भारत होते हुए भी चिंतन के केन्द्र में विश्व का मानव था।

आज देश की क्या हालत है? गाँधी जी की दुहाई देने वालों में ही कई वर्ग हो गये हैं। आज देश का कोई भी वर्ग गाँधी जी को इन्कार नहीं करता है। लेकिन व्यवहार में वह गाँधी जी से विपरीत हो गया है। आज देश में एक वर्ग ऐसा है जिसकी मान्यता है कि – जब तक भारत हिन्दू राष्ट्र नहीं हो जाता, तब तक समस्याओं का समाधान असंभव है। इसलिए गैर हिन्दुओं के साथ न्याय नहीं कर पाता है। देश में एक दूसरा वर्ग है जो मानता है कि अंग्रेजों से पहले हमारे पूर्वजों का राज्य था। अंग्रेजो ने उनसे छीना था। अब अंग्रेज चले गये तो हमें वे सब सुविधायें मिलनी चाहिए जो मुगल काल में प्राप्त थीं। इसके बिना हम समस्या के समाधान में सहयोग क्यों करें।

एक तीसरा समुदाय मानता है कि ज़माना बदल चुका है। कमाने वालों का शोषण युगों से होता रहा है। अब सारी सुविधायें मजदूरों को मिलनी चाहिएँ और जिन्होंने आज तक शोषण किया है या कि जिनके पास धन है उन्हें एक झटके से मजदूरों की कतार में खड़ा किया जाये। अगर ऐसा नहीं होता है, तो मजदूर श्रम क्यों करें। फिर समस्या का समाधान कैसे होगा!

एक चौथा और नया वर्ग भी खड़ा हो गया है। वह

मानता है कि भारत की आजादी का मूल कारण एकता है। यह एकता पश्चिम से अंग्रेज और अंग्रेजी के द्वारा आई। आज भी पश्चिम के देश बहुत सुख सुविधा की जिन्दगी बिता रहे हैं। इसलिए जब तक हम पश्चिम का हू-बहू नकल नहीं कर लेते तब तक समस्या सुलझ नहीं सकती है।

इन चार तरह के विचारों के बीच क्षेत्र-वाद भी उभरकर सामने आया है। उसके कारण कुछ देर के लिए ये सब विचार गौण हो जाते हैं। परंतु वह टिकाऊ नहीं है।

इन सारी परिस्थितियों के बीच सारे भारत का चिंतन करने वाले व्यक्ति नगण्य हो गये हैं। राजनैतिक नेताओं का आपस में हर कदम पर विरोध है। फिर भी वे एक बिन्दु पर सहमत हैं कि समस्याओं का समाधान शासन के माध्यम से ही हो सकता है।

यह एक भयंकर विचार सामने आया है। अपनी मान्यताओं के अनुसार सब नेता सत्ता को हथियाना चाहते हैं। प्रजातंत्र में सत्ता प्राप्त करने के लिए जनता की राय चाहिए। और राय प्राप्ति के लिए सारे अनैतिक तरीकों को अपनाया गया। अब इन बीस वर्षों में किसी-न-किसी रूप में सभी तरह की मान्यता वालों के हाथ में शासन आया। फिर भी समस्या अपनी जगह कायम है। जनता का मनोबल टूट गया। देखा-देखी चारों ओर भौतिक सुविधा प्राप्त करने की लालसा प्रबल हो उठी है। इस होड़ में कोई

पीछे रहना नहीं चाहता है। फिर नैतिक अनैतिक का प्रश्न गौण हो गया। हर कोई अपने को मजबूरी का शिकार बताकर सारा दोष दूसरों के मत्थे मढ़ने का आदी हो गया है।

इस देश में सिद्धान्त और आदर्श इतने अधिक और ऊँचे ऊँचे हैं कि उनके व्यवहार से रिश्ते ही भग हो गये। वैचारिक क्षेत्र में प्रत्येक गलत काम करने वाला व्यक्ति अपने को सही साबित कर देता है। अब इस उलझी हुई समस्या को सुलझाने में वह आदमी हर्गिज सफल नहीं हो सकता जो सत्ता पाना चाहता है।

उपर्युक्त चिंतन से आपको भी लगता होगा कि समस्या का हल टुकड़ों में नहीं हो सकता है। समाधान के लिए पूरे भारत को मिलाकर सोचना होगा। तो इसका रूप क्या हो?

मनुष्य के लिए भौतिक सुख अनिवार्य है। उसके लिए विज्ञान को अपनाना पड़ेगा। इस दिशा में सरकार के द्वारा प्रयत्न हुआ है और हो रहा है। लेकिन भौतिक सुख का उपभोग हम आपस में झगड़ते रहकर नहीं कर सकते। इसके लिए आपस में प्रेम चाहिए। करूणा चाहिए। आत्मबल चाहिए। इन गुणों को प्रतिष्ठित करने के लिए नैतिक मूल्यों का विकास आवश्यक है। समस्या के इसी बिन्दु पर आकर हमारे राजनैतिक नेताओं ने हार मान ली है। इसी लिए वे अणुव्रत की सराहना करते हैं, उसका समर्थन करते हैं और चाहते हैं कि यह आन्दोलन सफल हो।

सकी सफलता में उनका भी भला है। फिर भी आज उनका सक्रिय सहयोग नहीं मिल रहा है। इसके लिए उनकी शिकायत भी क्यों करें? उनकी अपनी समस्यायें हैं। उनकी अपनी उलझने हैं। उनका समर्थन भी कीमती है।

अणुव्रत समस्याओं को टुकरा करके नहीं देखता है। वह तो समस्याओं की जड मनुष्य को ठीक करना चाहता है। मनुष्य ठीक हुआ नहीं कि समस्यायें अपने आप सुलझती चली जायेंगी।

आचार्य विनोवा भावे :— 1961 ई में जब आचार्य श्री तुलसी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का तय हुआ, तब विनोवा जी ने अपने सदेश में कहा था—"आचार्य तुलसी जी के महान् कार्यों के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने का विचार योग्य ही है। सयम को सेवा-कार्य में जोडने का काम अपनी विशिष्ट पद्धति से उन्होंने चलाया, जिसका असर जीवन के अनेक क्षेत्रों में पडा है और पडेगा। सयम और सेवा के सगम से ही नव-समाज बनेगा।" विनोबा जी के ये शब्द आचार्य श्री तुलसी के मूल भूत गुणों की ओर सकेत करते हैं। इस देश में सयम और सेवा की परपरा पुराने समय से चली आ रही है, परतु दोनों का सगम नहीं था। आज प्रजातत्र में सेवा के साथ ही असयम के क्षेत्र का इतना विस्तार हो गया है कि प्रजातंत्र ही खतरे में आ गया है। इसलिए आचार्य श्री तुलसी का काम युग की आवश्यकता है।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद — "——आचार्य श्री तुलसी जी द्वारा चलाया गया अणुव्रत आन्दोलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जनसाधारण को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। यह प्रयास अपने आप में ही इतना महत्व पूर्ण है कि इसका सभी को स्वागत करना चाहिए। आज के युग में जब कि मानव अपनी भौतिक उन्नति से चका चौंध होता दिखाई दे रहा है और जीवन के नैतिक तथा अध्यात्मिक तत्वों की अवहेलना की अशका है, ऐसे आन्दोलनों के द्वारा ही मानव अपने सन्तुलन को बनाये रख सकता है और भौतिकवाद के विनाशकारी परिणामों से बचने की आशा कर सकता है।'

उपरोक्त वाक्य डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने तब कही है जब वे देश के सर्वोच्च पद पर आसीन थे और अनुभव कर रहे थे कि कानून से गुणों का विकास नहीं हो सकता है। उन्होंने माना था कि इस देश को अगर गाँधी जी के रास्ते ले जाना है, तो अणुव्रत की अत्यन्त आवश्यकता है।

उप राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन — उपराष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन ने आचार्य श्री तुलसी से मिलने पर पूछा था कि— "जैन मन्दिर में हरिजन प्रवेश के विषय में आप का क्या अभिमत है?"

आचार्य श्री तुलसी मूर्ति पूजा में नहीं मानते हैं, फिर भी

उन्होंने कहा कि—" यद्यपि मूर्ति पूजक जैन भी कोई निषेध मानते हैं। लेकिन कहीं भी जहाँ धर्माभिलाषी व्यक्ति प्रवेश न पा सके, वह क्या मंदिर है ? किसी को अपनी अच्छी भावना को फलित करने से, मैं धर्म में बाधा डालना मानता हूँ।— ——— ।"

डा० राधाकृष्णन जी प्रश्नोत्तर के अंत में खुश हो कर कहा था कि—" मैं ऐसा मानता हूँ कि जीवन - उदाहरण का जो असर होता है, वह उपदेश या बोध से नहीं होता। इसलिए आप जो काम कर रहे हैं, उसका जनता पर स्वतः सुन्दर प्रभाव होता है। क्योंकि आपका जीवन उसके अणुरूप है।"

डा० राधाकृष्णन आचार्य श्री से बाद में भी मिले हैं और आज भी अणुव्रत के विषय में जानकारी रखते हैं। आचार्य श्री तुलसी के प्रति उनकी कितनी श्रद्धा है इसका एक मिसाल अभी अभी देखने में आया। मद्रास प्रवेश के समय डा० श्री राधाकृष्णन को समारोह की अध्यक्षता करने के लिए हम लोग उनसे अनुरोध करने गये। उन्होंने कहा कि " मैं किसी भी सभा - समारोह में भाग नहीं लेने का तय कर लिया है। अब तो कम्पाउण्ड से बाहर भी नहीं जाता हूँ, परंतु आचार्य श्री तुलसी मद्रास में रहेंगे तो उनसे जाकर मिलने को मैं बाउण्ड हूँ। मैं उनसे अवश्य मिलूँगा।"*

पण्डित जवाहरलाल नेहरू :— प्यारे दोस्तो ! हम सबको

---

* छापते [illegible] यह अंश जोड़ा गया है। [illegible]

यह बात अच्छी तरह से मालूम है कि पण्डित नेहरू धार्मिक मामलों में रुचि नहीं रखते थे। बल्कि वे कई अवसरों पर धार्मिक झमेलों की कटु आलोचना भी की थी। फिर भी अणुव्रत के प्रति उनको बहुत श्रद्धा और उत्सुकता थी। असल में वे धर्म के नहीं धार्मिकों के उस व्यवहार के विरोधी थे जो मानव मानव को तोड़ने का काम करता था। अणुव्रत चूँकि तोड़ने का नहीं जोड़ने का काम करता है। इसलिए पण्डित जी का रुचि लेना स्वाभाविक था। एक बार उन्होंने कहा था—"—मैंने उनके अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत होने वाले कार्य का विशेष रुचि व प्रशंसात्मक भाव से अनुशीलन किया है, जिसका उद्देश्य हमारे देश वासियों का और विशेषत नई पीढ़ी का नैतिक स्तर ऊँचा उठाना है।"

पुरुषोत्तमदास टण्डन :— प्यारे दोस्तो! हिन्दी को राष्ट्र भाषा का संवैधानिक दर्जा मिलाने के कारण श्री टण्डन जी इतिहास में अमर हो गये हैं। वे आजादी के तपे तपाये नेता थे। उन्होंने आचार्य श्री और अणुव्रत के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि "यह मेरा सौभाग्य है कि आचार्य श्री तुलसी को पास से देखने और उनसे बात करने तथा उनके भाषण सुनने का अवसर मुझे मिला है।——उनके चलाये अणुव्रत आन्दोलन के पक्ष में कुछ सभाओं में भी मैंने अपना मत प्रकट किया था। अणुव्रत की कल्पना बहुत सुन्दर है और उसने बहुतों को व्रती बनाकर उनके जीवन की गति में अच्छी भावना का प्रवेश कराया

है।" "देश में नैतिकता की गहरी कमी दिखाई पड़ती है। उस में परिवर्तन करने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन सहायक हो सकता है। आचार्य श्री तुलसी अपनी कल्पना की पूर्ति में अधिकाधिक सफलता पायें, यह मेरी अभिलाषा स्वाभाविक है। आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत-आन्दोलन की सफलता के लिए हम सबकी श्रद्धा और सहयोग के अधिकारी हैं।"

सर्वोदय नेता श्री जयप्रकाश नारायण :— "हमारे लिए यह सौभाग्या की बात है कि आज आचार्य श्री तुलसी जैसी विभूति हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही है। वे मानवता की प्रतिष्ठापना द्वारा समता, ससिष्णुता स्थापित करना चाहते हैं।

———अणुव्रत-आन्दोलन भी सर्वोदय-आन्दोलन का एक सहयोगी ही है। इससे भी देश-विदेश के प्राय: सभी विचारक और नेता परिचित हो ही गये हैं। हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य श्री तुलसी ने बहुत सुन्दर आदर्श रखा है। विनोबाजी और तुलसी जी सभी जाति और वर्ग के लिए हैं, दोनों ही सबका भला चाहते हैं।———आचार्य श्री तुलसी कहते हैं कि सब अपनी-अपनी आत्म-शुद्धि करें। यह और अच्छा है। अगर सब स्वत. आत्म-शुद्धि कर लें तो क्रांति की क्या आवश्यकता है? महात्मा गाँधी भी समाज-सुधार से पहले व्यक्ति-सुधार पर जोर देते रहे हैं। ———अगर हम आन्तरिक-सुधार और व्यक्ति-सुधार को प्राथमिकता नहीं देंगे तो हमारा कार्य अधूरा ही रह जायगा।——— —।"

" —आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में जो मंगल कारी कार्य हो रहा है, उसके साथ मैं तन्मय हूँ और मेरी जो कुछ भी शक्ति है, उसे इस पुण्य कार्य में लगाने को तत्पर हूँ।"

राष्ट्र संत श्री तुकड़ोजी :— " —मैं आचार्य श्री तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी कार्य विधि व सुविश्रुत अणुव्रत-आन्दोलन से चिर परिचित रहा हूँ। केवल परिचित ही नहीं, उसे निकट से देख भी चुका हूँ। "—आचार्य श्री ने अणुव्रत 'आन्दोलन के द्वारा अपने और जनता को व्यसन मुक्त कर सच्चरित व त्यागी बनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न प्रारंभ किया है'। यह एक अच्छा तरीका है। उनका कार्य सुसम्बद्ध और एक सूत्र से चलता है, यह मुझे बहुत ही अच्छा लगा। आचार्य श्री 'तुलसी' के उपदेशों से व अणुव्रतों की साधना से जनता को काफी लाभ होता है। उनका यह प्रचार प्रतिदिन बढ़े, यह मैं दिल से चाहता हूँ।"

श्री मैथिली शरण गुप्त —

तनिक से तुलसी दल का योग,
हो गया मेरा भोजन भोग।

तुम्हारी वाणी का अनुष्ठान,
लोक के लिए सुधा समान।
(स्वल्प भी सद्धर्मानुष्ठान
महा भय से करता है त्राण।)

धन्य धरती के पूत सपूत,
दियो चिर दिन दिव के - से दूत ॥

स्व श्री लालबहादुर शास्त्री :— आचार्य श्री तुलसी नैतिकता के पुजारी हैं, अहिंसा जिसका मूलाधार है। सभा, सम्मेलन और साहित्य - निर्माण आदि के द्वारा उन्होंने एक नये आन्दोलन को सम्बल प्रदान किया है। अणुव्रत - आदोलन ने प्रत्येक वर्ग को अपनी ओर खींचने का प्रयास किया है और जैन समुदाय पर स्वभावतः इसका विशेष प्रभाव पड़ा है। नैतिकता उपदेशों से कम, उदाहरण से ही पनपती है। आचार्य श्री तुलसी स्वयं उस मार्ग पर आचरण कर दूसरों को उस ओर प्रेरित करना चाहते हैं। उनका अभिनन्दन इसी में है कि लोग उनके इस आन्दोलन के स्वरूप को समझें और अपने जीवन को एक नये रूप में ढालने का प्रयास करें।"

श्री उ० न० ढेबर :— " -- राष्ट्र के सामने मुख्य कार्य यह है कि या तो धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि अहकारों को समाप्त किया जाय, जो अत्यन्त कठिन है या उसे सुसंस्कृत बनाया जाये, जो कुछ कम कठिन है। इसका अर्थ यही हुआ कि हमें इस अहम् को उसकी संकुचित गलियों से बाहर निकलना होगा। इसका यह अर्थ भी होता है कि हम यह याद रखें कि जिस स्तर पर हम व्यवहार करते हैं, उन स्तरों पर हमारा

आचरण पशुओं जैसा होता है, जब कि हम वास्तव में मानव हैं। इसलिए हमको मानव की उत्तम और श्रेष्ठ वृत्तियों को अपनाना और विकसित करना चाहिए।

क्या अणुव्रत इस सुसंस्करण की प्रक्रिया में सहायक हो सकता है? अणुव्रत यदि आचार का विज्ञान नहीं है तो फिर और कुछ भी नहीं है। छोटी बातों से प्रारम्भ करके वह ऐसी शक्ति संचय करना चाहता है जिसके द्वारा बड़े लक्ष्य सिद्ध किये जा सकें। मनुष्य को दूसरे मनुष्य के साथ व्यवहार में उसका प्रारम्भ करना चाहिए। उसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि जिस से वह दूसरों को अधिक से अधिक निकट पहुँचता चला जाये और अन्त में सारी दूरी समाप्त हो जाये। यह तभी हो सकता है, जब वह उपेक्षा के स्थान पर सहमति उत्पन्न करेगा, घृणा के स्थान प[र] मित्रता और शत्रुता के स्थान पर लिहाज और आदर की स्थाप[ना] करेगा। आचरण के द्वारा ही यह सब सिद्ध किया जा सक[ता] है।

———प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे उसका जीवन में कोई भी स्थान या पद क्यों न हो, प्रतिदिन एक दूसरे के प्रति आदर प्रकट करने और एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। किसी भी भारतीय के लिए यह महान् देश भक्ति पूर्ण सेवा होगी, कर्तव्य की दृष्टि से यह सेवा बहुत आसान है और परिणाम की दृष्टि से

यह सेवा बहुत आसान है और परिणाम की दृष्टि से वह उतना ही शक्तिशाली है। इस छोटी बात की तुलना हम अणु - शक्ति केन्द्र के एक छोटे अणु से कर सकते हैं।

अणुव्रत आन्दोलन और इस महान् आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी का यही सदेश है।"

श्री जैनेन्द्र कुमार :— "आचार्य श्री तुलसी उन पुरुषों में हैं, जिनके व्यक्तित्व से पद कभी ऊपर नहीं हो पाता। वे जैनमत के तेरापंथी सप्रदाय के पट्ट पर आचार्य हैं और इस पद की गरिमा और महिमा कम नहीं है। वे एक ही साथ अध्यात्मिक और लौकिक हैं। किन्तु तुलसी इतने जीवन्त और प्राणवन्त व्यक्ति हैं कि उस आसन का गुरुत्व स्वय फीका पड सकता है। वेश - भूषा से वे जैनाचार्य हैं, किन्तु आन्तरिक निर्मलता और सवेदन - क्षमता से वे सभी मत और वर्गों के आत्मीय बन सके हैं। मेरा जितना संपर्क आया है, मैंने उन्हें सदा जागृत व तत्पर पाया है। शैथिल्य कहीं देखने में नहीं आया। प्रमाद और अवसाद उनमें या उनके निकट टिक नहीं पाया। आस - पास का वातावरण उनकी कर्म शीलता से चैतन्य और उन्नत बना दिखाता है। परिस्थिति से हारने वाले वे नहीं हैं, आस्था के बल से उसे चुनौती ही देते रहते हैं। परपरा से उच्छिन्न नहीं हैं लेकिन नव्यता के प्रति भी उद्यत हैं। उनकी नेतृत्व की क्षमता अभिनन्दनीय है। नेतृत्व उस

वर्ग का जिसका प्रत्येक सदस्य निस्पृह, निस्वार्थ और सर्वथा मुक्त हो आसान काम नहीं है। किसी प्रकार का लोभ और भय वहाँ व्यवस्था में सहारा नहीं दे सकता। अन्तर्भूत आत्म तेज ही इस नैतिक नेतृत्व को सम्भव बनाये रख सकता है। तुलसी में उसी का प्रकाश दीखता है और मुझे उनके सान्निध्य से सदा लाभ हुआ है।"

डा० सम्पूर्णानन्द :— "अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी राजनीतिक क्षेत्र से बहुत दूर हैं। किसी दल या पार्टी से संबन्ध नहीं रखते। किसी वाद के प्रचारक नहीं हैं, परन्तु प्रसिद्धि प्राप्त करने के इन सब मार्गों से दूर रहते हुए भी वे इस काल के उन व्यक्तियों में हैं, जिनका न्यूनाधिक प्रभाव लाखों मनुष्यों के जीवन पर पड़ा है। वे जैन धर्म के संप्रदाय विशेष के अधिष्ठाता हैं, इसलिए आचार्य कहलाते हैं। अपने अनुयायियो को जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का अध्यापण कराते ही होंगे, श्रमणों को अपने संप्रदाय विशेष के नियमादि की शिक्षा दिक्षा देते ही होंगे, परन्तु किसी ने उनके या उनके अनुयायियों के मुँह से कोई ऐसी बात नहीं सुनी जो दूसरों के चित्त को दुखाने वाली हो।"

"——उनके आचरण और बात चीत में ऐसी कोई बात नहीं मिलेगी जो अन्य मतावलम्बियों को अरुचिकर लगे। भारत

सदा से तपस्वियों का आदर करता आया है। उपासना शैली और दार्शनिक मन्तव्यों का आदर करना अस्वारस्य होते हुये भी हम चरित्र और त्याग के सामने सिर झुकाते हैं। हमारा तो यह विश्वास है कि —

यत्र तत्र समये यथा तथा,
योऽसि सोऽस्यभिधया यथा तथा।

जिस किसी देश, जिस किसी समय, महापुरुष का जन्म हो, वह जिस किसी नाम से पुकारा जाता हो, वीतराग तपस्वी पुरुष सदैव आदर का पात्र होता है। इसलिए हम सभी आचार्य श्री तुलसी का अभिनन्दन करते हैं। उनके प्रवचनों से उस तत्व को ग्रहण करने की अभिलाषा रखते हैं जो धर्म का सार और सर्वस्व है तथा जो मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी है।"

श्री वुडलैण्ड वहेलर (अध्यक्ष, अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी संघ, लन्दन):— "आंतर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध इस समय समस्त संसार की एक प्रमुख समस्या है। दो विश्व-युद्धों के बाद पुराने ढंग से संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी भी यह अनुभव करने लगे हैं कि विश्व-व्यापी रूप में, यानी समग्र विश्व की दृष्टि से नई सीमा निर्धारित करनी आवश्यक है। इस कार्य में सहायता के लिए भारतवर्ष के जैनाचार्य श्री तुलसी अपने अनुयायियों को दुनियाँ में हर चीज पर परस्परावलम्बी अहिंसक दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा करते हैं।

विश्वव्यापी मैत्री के फूल व्यक्तिगत आत्म संयम के बीच से ही उत्पन्न होते हैं, इस बात को मुख्य मानते हुये आचार्य श्री तुलसी और उनके सर्वथा शाकाहारी अनुयायियों ने अणुव्रत आन्दोलन सगठित किया है। यह एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज निर्माण का प्रयत्न है, जिस में जैन और अजैन सभी ऐसे लोग शामिल हो सकते हैं, जो आदर्शों को अमली रूप देने के लिए निश्चित की गई कुछ अनुशासनात्मक प्रतिज्ञाओं को अपनी क्षमता के अनुसार स्वेच्छा पूर्वक ग्रहण करने के लिए तैयार हों।"

सेठ गोविन्ददास एम० पी० — "——देशोन्नति की धुरी चरित्र है। बिना चरित्र विकास के देश का विकास असम्भव है। चरित्र निमाण का संबन्ध हमारी शिक्षा और अर्थ - व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। इनके दोषपूर्ण होने पर निष्कलङ्क चरित्र की कल्पना नहीं की जा सकती। आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत आन्दोलन चरित्र निर्माण की दिशा में एक अभूतपूर्ण आयोजन है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटे व्रत। स्वभाव से ही मानव अन्धकार की परिधि से बाहर निकल प्रकाश की ओर बढ़ने का इच्छुक होता है। 'व्रत ग्रहण में भी यही तत्व निहित है। मानव समाज में व्याप्त विषमता, बेइमानी और अनैतिकता जब व्यक्ति को दृष्टिगोचर होती है तो उसके अन्दर इस वैषम्य, वैमनस्य, शोषण और अनाचार को दूर करने की प्रवृत्ति जागृत होती है और सद्भावमूलक इस प्रवृत्ति के उदय होते ही त्याग की भावना से : का

अन्त.करण व्रतों की ओर आकर्षित होता है। जीवन - सुधार की दिशा में व्रतों का महत्व सर्वोपरि है। व्रतों में प्रधानरूप से आत्मानुशासन की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार सिद्धान्त कायम करना जितना आसान है, उस पर अमल करना उतना ही कठिन, उसी प्रकार व्रत लेना तो आसान है, पर उसका निभाना बडा कठिन है। व्रत पालन में स्व - नियमन व हृदय - परिवर्तन से बडी सहायता मिलती है।"

—— "आचार्य श्री तुलसी प्रथय धर्माचार्य हैं जो अपने वृहत् साधु - सघ के साथ सार्वजनिक हित की भावना लेकर व्यापक क्षेत्र में उतरे हैं। " आचार्य श्री तुलसी एक व्यक्ति न होकर स्वय एक सस्था रूप है—— ।

श्री शिवाजी नरहरि भावे :— आचार्य श्री तुलसी जब धुलिया पधारे थे तब शिवाजी भावे से मुलाकात हुई थी। उस समय का सस्मरण लिखते हुए श्री शिवाजी भावे बताते हैं कि "एक व्यक्ति ने कहा कि—अहिंसा में निष्ठा रखने वाले भी कभी-कभी अनजाने विरोध के झमेले में पड जाते हैं।

आचार्य श्री तुलसी ने कहा— विरोध को तो हम विनोद समझ कर उसमें आनन्द मानते हैं। इस सिलसिले में उन्होंने एक पद्य भी गाकर बताया। श्रोताओं पर इसका बहुत असर हुआ।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनां ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥

सचमुच भर्तृहरि के इस कटु अनुभव को आचार्य श्री तुलसी ने कितना मधुर रूप दिया। सबलोग आवाक् होकर वार्तालाप सुनते रहे"।

"आचार्य श्री विशिष्ट पथ के संचालक हैं, एक बड़े आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जैन शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित, किन्तु इन सब बड़ी बड़ी उपाधियों का उनके भाषण में आभास भी किसी को प्रतीत नहीं होता था। इतनी सरलता! इतना स्नेह! इतनी शान्ति! ज्ञान व तपस्या के बिना कैसे प्राप्त हो सकती है?"

श्री को० आ० सुब्रह्मण्यम (भूतपूर्व उपकुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय) — "...गाँधीजी हर एक व्यक्ति को, हर एक दल को, हर एक वर्ग को, शासन के अधिकारियों को, समस्त देश को चरित्र की दृष्टि से देखा करते थे। ...गाँधीजी के स्वर्गवास के बाद उनका वह स्थान अब भी रिक्त है। कोई भी उनको ग्रहण करने में अपने को समर्थ नहीं पा रहा है।"

...जिन धर्माचार्यों ने वर्तमान परिस्थिति को समझकर इस नये अवसर पर, भारतीय जनता और भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम से प्रेरित होकर उनकी रक्षा और सेवा करने का निश्चय किया, उनमें आचार्य श्री तुलसी का नाम प्रथम गण्य

है। आचार्य श्री तुलसी ने अपना 'अणुव्रत - आन्दोलन' प्रारंभ करके वह काम किया है जो हमारे सबसे बडे विश्वविख्यात नेता नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि चरित्र - भ्रंश के क्या - क्या बुरे असर देश पर हो चुके हैं और अधिक क्या - क्या हो सकते हैं। चरित्र - भ्रंश का एक बहुत कडुवा फल यह होता है कि जनता में पारस्परिक विश्वास सर्वथा समाप्त हो जाता है। जहाँ परस्पर विश्वास नहीं है, वहाँ सगठन नहीं हो सकता है, जहाँ फूट होती है, वहाँ एकता नष्ट होती है।

व्यक्तिगत जीवन में इतना शैथिल्य आ गया है कि संयम का कुछ भी मूल्य नहीं रहा। भारतीय सस्कृति का प्राण ही सयम है। सयम - प्राण अणुव्रत - आन्दोलन प्रारभ करके आचार्य श्री तुलसी ने धर्म निष्ठा और दूर दर्शिता दिखलाई है।

" आचार्य श्री और उनके सहायकों की जीवन शैली प्राचीन भारतीय सस्कृति का एक विकसित पुष्प है। इस प्रकार की जीवन शैली भारत के बाहर नहीं देखी जा सकती है। इस पुष्प को आचार्य जी ने भारतमाता की सेवा में समर्पित किया है। आजकल के गिरे हुए भारतीय समाज में आचार्य श्री का जन्म हुआ। यही लक्षण है कि इस समाज का पुनरुत्थान अवश्य होगा।

श्री वी० वी० गिरि — "सन् 1924 में गाँधीजी

ने 'यंग इण्डियन' में लिखा, 'वह अर्थशास्त्र असत्य है जो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा अथवा अवहेलना करता है।'—

भारतीय पद्धति के समाजवाद में जो गाँधीजी का स्वप्न था व हमारा राष्ट्रीय ध्येय है, दूसरे कथित समाजवादी देशों के समाजवाद में यह अन्तर है कि हम अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखते हैं जब कि अन्य समाजवादी देश शक्ति को नये समाज की प्रसव पीड़ा मानते हैं अथवा जैसा कि अन्य कुछ लोग कहते हैं, अण्डे को तोड़े बिना आमलेट नहीं बन सकता। विदेशों में जो लोग समाजवाद की कल्पना के पृष्ठपोषक बने हुए हैं, उनके निकट साधनों का कोई महत्व नहीं यदि साध्य न्यायोचित हो। किन्तु गाँधीजी का कहना था कि साधनों को साध्य से पृथक नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ होता है कि न्यायोचित साध्य को अनुचित साधनों से प्राप्त करना नैतिक नहीं है। गाँधीजी का कहना था कि हमको लोगों का हृदय परिवर्तन करके सामाजिक परिवर्तन लाना चाहिए।

——आचार्य श्री तुलसी ने यही विचार प्रतिपादित किया है। उन्होंने भौतिकता पर आध्यात्म की नकेल लगाई है। उनका तत्वज्ञान व्यक्ति पर केन्द्रित है और सर्वोच्च सामाजिक श्रेय प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को नियमों का कुशलतापूर्वक पालन करना चाहिए। यह विधि संहिता कोई ऐसी कठोर नहीं है कि उसकी

अवहेलना करने पर न्यायालयों द्वारा किसी को दण्ड पाना पडे। न्यायालय वास्तविक और प्रभावशाली समाजवाद की स्थापना करने में सहायक नहीं हो सकते। यह बहुधा कहा गया है कि लोकतंत्र की सफलता मुख्यत: इस पर निर्भर करती है कि लोग अपने अधिकारों और सुविधाओं की माग करने के पहले अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों को पूरा करें। लोकतंत्र की भाति समाजवाद की सफलता की भी यही कसौटी होगी। आदर्श की पूर्ति के लिए नागरिकों को राष्ट्र के सामने उपस्थित सभी कर्मो में बिना किसी बाहरी सत्ता के आदेश के स्वेच्छा और उत्साह पूर्वक योग देना चाहिए।

इन प्रयत्नों में अणुव्रत और ऐसे ही अन्य आन्दोलन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में ठोस और स्थिर नैतिक आधार पर व्यापक परिवर्तन लाने में हमारी सहायता कर सकते हैं।

भारत रत्न, महर्षि डी० वी० कर्वे :— स्पूतनिक के इस युग में हम विज्ञान द्वारा प्राप्त महान् सफलताओं और प्रकृति पर मानव के प्रभुत्व की बात सुनते हैं। किन्तु साथ ही हम नई खोजों की बुराइयों से भयभीत हैं, जो मानव जीवन का ही अस्तित्व समाप्त कर सकती हैं। अराजकता की इस स्थिति में आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत - आन्दोलन के रूप में दुनियाँ की सब बुराइयों का एक समाधान प्रस्तुत करते हैं, जो सर्वसम्मत है। वह है—आत्म-शुद्धि

का वह प्राचीन सन्मार्ग जो मनुष्य के जीवन को सुखद बना सकता है।

महामहिम श्री रघुवल्लभ तीर्थ स्वामी — आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन अत्यन्त प्रसंसनीय है और सही रास्ते पर चलने में सहायता प्रदान करता है।

सह अस्तित्व के लिए यह आन्दोलन निश्चित ही बहुत सहायक होगा, अत समस्त मानव जाति सत्य के इस पवित्र बन्धन के प्रकाश से आबद्ध होगी, ऐसी हम कामना करते हैं।

श्री नरहरि विष्णु गाडगिल — — —विद्यमान दुनियाँ में असन्तोष और अशान्ति इतनी फैली हुई है कि कल क्या होगा, कोई नहीं कह सकता। न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति। अणु से ब्रह्माण्ड का नाश करने का षड्यन्त्र रचा जा रहा है। वैर से वैर नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। परिणाम यह नजर आ रहा है कि वैर बढ़ता जा रहा है और असन्तोष की एक चिनगारी का स्वरूप महान् ज्वालामुखी में परिवर्तित हो रहा है। शान्ति तो नजर ही नहीं आती और मूर्खता से या अविवेकी साहस से कोई एक कदम उठाया जाये तो जगत का नाश अनिवार्य है। इसीलिए आज शाँति का और सच्चरित्र का सन्देश आवश्यक है और यही काम आचार्य श्री तुलसी वर्षों से कर रहे हैं। अणु का मुकाबला अणुव्रत से किया जा रहा है। एक एक व्यक्ति अपने

जीवन में साधु आचार करे तो समाज का जीवन स्थिर नैतिक दृष्टि से बढ़ता ही जायेगा। आज आवश्यकता है, चरित्र की, चातुर्य की नहीं। आज आवश्यकता है, सम्यक् आचार की, समलंकृत वाणी की नहीं, कार्य की आवश्यकता है, विवरण की नहीं और यही मार्गदर्शन आज आचार्य श्री तुलसी कर रहे हैं।

श्री गुलजारी लाल नन्दा :— - अध्यात्मवाद ही भारत का प्रमुख अंग है। इसे बिना अपनाये हम अपने चरित्र को ऊँचा नहीं उठा सकते। इस दिशा में आचार्य श्री तुलसी ने जो कार्य किया है, वह स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। ऐसे विद्वानों का अभिनन्दन करने से सर्वसाधारण में स्फुर्ति आती है और उनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति जागृत होती है।

श्री श्री प्रकाश :— - - मुझे यह देखकर बहुत सन्तोष हुआ कि आचार्य श्री तुलसी के अनुयायी बहुत हीं उत्साही स्त्री - पुरुष हैं जो कि उनके विचारों का सक्रिया प्रचार करते हैं। उनके द्वारा जन साधारण की सेवा होती है और जनता को धार्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। अपने देश में धर्म का सदा से ही प्रबल प्रभाव रहा है। आधुनिक विचार शैलियों के कारण इस ओर से कुछ लोग उदासीन होने लगे हैं। ऐसी अवस्था में उनको पुनः इस ओर ध्यान दिलाते रहना उचित है, क्योंकि इसी में हमारा कल्याण भी है और अपनी पुरातन सस्कृति की रक्षा भी है।

मेरी शुभकामना है कि आचार्य श्री तुलसी हमारे बीच में बहुत दिनों तक रहकर हमारा पथ प्रदर्शन करते रहें और इनके जीवन और वचन से अधिकाधिक नर नारी दिन प्रतिदिन प्रभावित होते रहें। अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करते रहें और व्यक्तिगत मान मार्यादा बनाये हुए देश और समाज की सेवा भी उनके द्वारा होती रहे।

मा० स० गोलवलकर — आचार्य श्री तुलसी को परम कृपालु परमात्मा सुदीर्घ एवं निरामय आयु प्रदान करें ताकि दुःख से भरे हुए, शोषित, पीड़ित, मार्गदर्शन के लिए इधर उधर भटकने वाले त्रस्त मानव समाज को पथ प्रदर्शन करने में वे सफल बनें।

श्री गुरुमुख निहाल सिंह — आचार्य श्री तुलसी के जीवन व कार्य से हमें सदा प्रेरणा मिलती रहेगी और हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि जो सिद्धान्त उन्होंने हमारे सामने रखे हैं उनको ग्रहण करें। देश का वास्तविक उन्नति तभी हो सकती है जब कि सामाजिक और आर्थिक उन्नति के साथ साथ आध्यात्मिक उत्थान भी हो।

टी० एन० वेंकटरमण :— भारतवासी कितने सौभाग्य शाली हैं कि आचार्य श्री तुलसी ने जीवन के नैतिक व आध्यात्मिक अभिसिंचन के लिए देश में अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया है।

भारत वैदिक और उपनिषदीय गाथाओं का देश है, किन्तु उसे राजनैतिक पराधीनता से मुक्त होने के पश्चात् अब इस अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता है। देश ने यह स्वतन्त्रता अहिंसा के अस्त्र द्वारा प्राप्त की और इस अस्त्र का प्रयोग करने वाले महात्मा गाँधी थे। गाँधी जी सत्य को ही ईश्वर मानते थे और जीवन में उनका एक-मात्र ध्येय सत्य की नौका खेना था और उनकी एक-मात्र इच्छा थी कि असत्य पर सत्य की जय हो।

······इस समय राष्ट्र पर नैतिक पतन का सकट मँडरा रहा है, चारित्रिक और आध्यात्मिक मूल्यों को भुला देने की बात तो दूर रही, वेदों, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों और भगवद्गीता के होते हुए, महात्मा गाँधी की महान् नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति के उठ जाने के पश्चात् भारतीय सामूहिक रूप से पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं और अपने समस्त उच्च आदर्शों को भुलाते जा रहे हैं। इसलिए अणुव्रत जैसे आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्र को आचार्य श्री तुलसी और उनके सैकड़ों साधु-साध्वियों के दल के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जो इस आन्दोलन को चला रहे हैं।

हम इस आदोलन को भगवान् श्री कृष्ण के आश्वासन की पूर्ति मानते हैं। उन्होंने भगवद्गीता के चौथे अध्याय के आठवें श्लोक में कहा है कि धर्म की रक्षा करना उनका मुख्य

कार्य है और स्वयं समय समय पर नाना रूपों में अवतार धारण करते हैं।

आचार्य धर्मेन्द्र नाथ —— ——आ० श्री तुलसी जितना-जितनाअपरिग्रह की मर्यादा का व्याख्यान करते गये, उतना-उतना मुझे वह सम्पन्न लोगों की दुरभिसन्धि मालूम होने लगा। हमारा परिग्रह मत देखो, हमारे साधुओं को देखो। अहो! प्रभावस्तापसाम! अगले दिन के लिए भोजन तक सचय नहीं करते। ——यह तपस्या और यह अणुबम का जवाब अणुव्रत! मुझे लगा कि अपने सम्प्रदाय के सेठों की लिप्सा और परिग्रह पर पर्दा डालने के लिए साधुओं की यह सारी चेष्टा है, जिस का पुरस्कार अनुयायियों के जय जयकार के रूप में दिया जा रहा है—— —।

———इसके अतिरिक्त ईश्वर की सत्ता और धर्म की आवश्यकता आदि कितने ही विषयों पर मेरी मान्यतायें जैन विश्वासों से भिन्न थीं। जब बात चल निकली तो मैंने अपना कैसा भी मतभेद आचार्य श्री तुलसी से छिपाया नहीं।

मेरा ख्याल था कि आचार्य श्री इस विषय को तर्कों से पाट देंगे, लेकिन उन्होंने तर्क का रास्ता नहीं अपनाया और इतना ही कहा कि, "मतभेद भले ही रहे, मनोभेद नहीं होना चाहिए।" मैं तो यह सुनते ही चकरा गया। तर्क की तो अब बात ही नहीं रही। चुप बैठ कर इसे हृदयगम करने की चेष्टा करने लगा।

-----आचार्य श्री तुलसी एक सम्प्रदाय के धर्म गुरु हैं। और विचारक के लिए गुरु - पद कोई बहुत नफे का सौदा नहीं है। बहुधा तो यह पदवी विचार बन्धन और तंगनजरी का कारण बन जाती है। लेकिन आचार्य श्री की दृष्टि उनके अपने सम्प्रदाय तक ही निगडित नहीं है। वे सारे भारत के युग दृष्टा ऋषि हैं। जन - शासन के प्रति मेरी आदर - बुद्धि का उदय उनसे परिचय के बाद ही हुआ है, अतएव मैं तो व्यक्तिश· उनका आभारी हूँ।

श्री पी० एस० कुमारस्वामी ·— - - -भारतीय परपरागत ज्ञान और विवेक का आधार यह विचार है कि सद्ज्ञान और सदाचार से सुख की प्राप्ति होती है। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि यही शाश्वत और प्रेरक सन्देश अणुव्रत - आन्दोलन का भी मूलाधार है जिस से जीवन की शुद्धि होती है और दैनिक मानव - व्यवहार में नैतिकता और सत्य का समावेश होता है। वर्तमान समय में जब मानव मन भौतिकवाद के जाल में फँस रहा है, हमें अपना पथ आलोकित करने के लिए एक व्यवहारिक और प्रेरक धर्म की आवश्यकता है। आचार्य श्री तुलसी उपयुक्त समय पर अवतरित हुए हैं। वे हमारे महान् धमाचार्यों की परम्परा में हैं। वे हमें सद्विचार और सदाचार का मार्ग दिखा रहे हैं।

------सौभाग्य से वर्तमान युग में महात्मा गाँधी ने हमारी समाज नीति को प्रभावित किया। उन्होंने हमारी राजनीति को

आध्यात्मि रूप देने का प्रयास किया और हमें गर्हित भौतिकवाद से बचा लिया। मुझे विश्वास है कि अणुव्रत आन्दोलन भी अहिंसा, सत्य, स्वावलम्बन और स्वार्थ त्याग पर बल देकर राष्ट्र का कल्याण सिद्ध करने के लिए कठोर परिश्रम करेगा। ये सिद्धान्त किसी एक धम की बपौती नहीं है, सभी धर्म उनको मान्यता देते हैं। यह हो सकता है कि कोई धर्म उनके पालन पर न्यूनाधिक बल देता हो।

साहूशान्तिप्रसाद जैन — मैंने पाया है कि आचार्य श्री तुलसी दूसरों के आग्रहों को चुनौती नहीं देते, चुनौतियों को आमन्त्रित करतें हैं और दृष्टि का सामजस्य खोजते हैं। तत्त्वचर्चा और धार्मिक प्रवचण को उन्होंने मनुष्य के नैतिक जीवन की समस्याओं से जोड़कर धर्म को जीवन की गति और हृदय का स्पन्दन दिया है। अणुव्रतों की व्यवस्था जिन आचार्यों ने की थी, उन के लिए ये व्रत समाज के नैतिक संगठन और निराकुल संरक्षण के आधारभूत सिद्धान्त थे। ज्यों ज्यों धर्म जीवन से विच्छिन्न होकर रूढ़ होता गया, अणुव्रत की महत्ता उसी अनुपात में शास्त्रगत अधिक और जीवन गत कम हो गई। अणुव्रत चर्चा की सार्थकता आन्दोलन के रूप में जो भी हो, आचार्य श्री तुलसी को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने अणुव्रतों का प्रतिपादन युग के संदर्भ में किया और व्यापक स्तर पर समाज का ध्यान केन्द्रित किया।

श्री करण सिंह जी :— अणुव्रत - आन्दोलन कोई राजनैतिक यज्ञ नहीं है। यह तो मानवमात्र की आध्यात्मिक उन्नति का प्रयास है। इसका उद्देश्य है कि जीवन पवित्र बने। दैनिक जीवन में सचाई का प्रामाणिकता आये। थोड़े में कहा जाय तो अणुव्रत - आन्दोलन चरित्र का आन्दोलन है। यह किसी सम्प्रदाय, जाति, धर्म व व्यक्ति विशेष का न होकर सब का है।

आज के युग में जब हम अपने चारों ओर देखते हैं तो बड़े दुःख के साथ अनुभव करते हैं कि देश मे सर्वत्र भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद आदि अनेक विषैले किटाणु हमारे समाज को नष्ट करने में व्यस्त हैं। ऐसी दशा में उनका उद्धार केवल अणुव्रत जैसे आन्दोलनो से ही हो सकता है।

श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन :— आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन कर भारत के धर्म गुरुओं के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। आज जब कि जाति, प्रान्त, भाषा व धर्म के नाम पर अनेकानेक झगड़े खड़े हो रहे हैं, स्वार्थ - भावना की प्रबलता है, साम्प्रदायिकता निष्कारण ही पनप रही है, आचार्य श्री तुलसी द्वारा नैतिक क्रान्ति का आह्वान सचमुच ही उनके दूरदर्शी चिन्तन का परिणाम है। आचार्य जी विशुद्ध मानवतावादी हैं और प्रत्येक वर्ग में व्याप्त बुराई का निराकरण करना चाहते हैं। वे आध्यात्मिकता के धनी हैं और उन में साधना का प्रखर तेज है। वे भारतीय ऋषि परंपरा के वाहक हैं।

श्री मोहन लाल सुखाड़िया — आचार्य श्री तुलसी देश के एक साधु-संघ के नेता तथा अणुव्रत आन्दोलन के प्रणेता हैं, जिनका उद्देश्य समाज के मूल्यों का पुनरुत्थान तथा समाज का नैतिक विकास है।

श्री अलगूराय शास्त्री :— श्री तुलसी जी वर्तमान युग के सदाचार प्रचारकों तथा आचार प्रधान महापुरुषों में सूर्य समान देदीप्यमान व्यक्ति हैं। उनकी प्रेरणाओं से जन मानस में उच्च आचरण के लिए उथल पुथल उत्पन्न हो जाती है। मुझे इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्री तुलसी जी दीर्घ आयु प्राप्त करें और मानव समाज को आचार शिखर पर ले जाकर उन्हें सिद्धशिला का अधिकारी बनावें, यही कामना है, ईश्वर से यही याचना है।

डा० पंजाबराव देशमुख :— — – यों तो आचार्य जी अनेक गुणों और विशेषताओं के धनी हैं—हिन्दी साहित्य, दर्शन और शिक्षा भी उनके अधिकृत क्षेत्र हैं। संस्कृत और हिन्दी भाषा के विकास में उनका व्यापक योग है, फिर भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि उन्होंने अपने आप को और अपने प्रभावशाली साधु - संघ को जन कल्याण के लिए अर्पित किया है।

श्री यशपाल जैन :— – – इसके विपरीत कुछ लोगों का कहना था कि उनमें (आचार्य श्री तुलसी) नाम की बड़ी भूख है

और वह जो कुछ कर रहे हैं, उस के पीछे तेरापंथी सम्प्रदाय के प्रचार की तीव्र लालसा है। मैं दोनों पक्षों की बातें सुनता था।

"हम लोग पहली बार मिले थे, लेकिन ऐसा लगा मानो हमारा (मेरा और आचार्य श्री का) पारस्परिक परिचय बहुत पुराना है।

"......हमारे देश में साधु - संतों की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। आज भी साधु लाखों की संख्या में विद्यमान हैं, लेकिन जो सच्चे साधु हैं, उन में से अधिकांश निवृत्ति - मार्गी हैं।......मुझे लगता है कि समाज को प्रत्यक्ष लाभ उन से मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पाता।

रविन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है, "मेरे लिए मुक्ति सब कुछ त्याग देने में नहीं है। सृष्टि - कर्ता ने मुझे अगणित बन्धनों में दुनियाँ के साथ बाँध दिया है।"

आचार्य श्री तुलसी इसी मान्यता के पोषक हैं। यद्यपि उनके सामने त्याग का ऊँचा आदर्श रहता है और वे उनकी ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होते रहते हैं, तथापि वे समाज और उसके सुख - दुःख के बीच रहते हैं और उनका अहर्निश प्रयत्न रहता है कि मानव का नैतिक स्तर ऊँचा उठे, मानव सुखी हो और समूची मानव - जाति मिल - जुल कर प्रेम से रहे। वह एक सम्प्रदाय - विशेष के आचार्य अवश्य हैं, लेकिन उनकी दृष्टि और उनकी करुणा संकीर्ण परिधि से आवृत नहीं है।

गाँधी जी कहा करते थे कि समाज की इकाई मनुष्य है और यदि मनुष्य का जीवन शुद्ध हो जाय तो समाज अपने आप सुधर जायगा। इसलिए उनका जोर हमेशा मानव की शुचिता पर रहता था। यही बात आचार्य श्री तुलसी के साथ है।

— अपनी पहली भेंट से लेकर अब तक के अपने संसर्ग का स्मरण करता हूँ तो बहुत से चित्र आँखों के सामने घूम जाते हैं। उनसे अनेक बार लम्बी चर्चाएँ हुई हैं, उनके प्रवचन सुने हैं, लेकिन उनका वास्तविक रूप तब दिखाई देता है, जब वे दूसरों के दुःख की बात सुनते हैं। उनका संवेदनशील हृदय तब मानो स्वयं व्यथित हो उठता है और यह उनके चेहरे पर उभरते भावों से स्पष्ट देखा जा सकता है।

— आचार्य श्री की आँखों के सामने अपनी संस्कृति तथा सभ्यता के चरम शिखर पर खड़े भारत का चित्र रहता है। अपने देश से, उसकी भूमि से और उस भूमि पर बसने वाले जन से, उन्हें बड़ी आशा है।

डा० युद्धवीर सिंह — श्री आचार्य तुलसी भारत के सन्तों की परंपरा में एक सन्त तुल्य हैं। आपकी वाणी में रस है, आपके सम्पर्क से मनुष्य अपनी आत्मा का उत्थान होते हुए अनुभव करता है। आपका जीवन तपस्वी जीवन है और आपका व्यक्तित्व आकर्षक है। एक छोटी सी सम्प्रदाय के नेता हुए भी आपने

हर मजहब और हर प्रान्त के अच्छे-अच्छे लोगों को आकर्षित किया है।

आपने नैतिकता की ओर विशेष ध्यान दिया और उसी के लिए अणुव्रत-आन्दोलन चलाया। आन्दोलन में बहुत से लोग सम्मिलित हुए और निःसन्देह उसका असर भी लोगों पर पड़ा है। मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि यदि आचार्य प्रवर एक साम्प्रदायिक आचार्य न हो कर मुक्त होते हुए ऐसा आन्दोलन चलाते तो उसका व्यापक असर होता। आप के एक सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण जनता का ध्यान सम्भवतः इतना उस ओर आकर्षित न हुआ हो, जितना होना चाहिए था। फिर भी आपके त्याग, तपस्या और व्यक्तिगत प्रभाव से प्रभावित होकर बहुत से लोगों का नैतिक उत्थान हुआ है और होगा।

बेगम अली जहीर:— आचार्य श्री तुलसी से मिलने पर हमने देखा कि वे सही माने में एक फकीर की जिन्दगी बसर करते हुए इस बात की कोशिश में जुटे हुए हैं कि हमारी तरक्की के साथ साथ सारी दुनियाँ की तरक्की हो। यही वजह है कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी लोग उनके बताये हुए अणुव्रत असूलों को पसद करते हैं।

आचार्य श्री तुलसी ने मरीज इन्सान की नब्ज को अच्छी तरह से समझा है। उसे इन्सानियत का पैगाम किस तरह सुनाया

जाये और उस पर चलने के लिए किस तरह जोश पैदा किया जाये, यह आज के जमाने में और लोगों की बनिस्पत ज्यादा अच्छी तरह समझा है। ऐसे नाजुक जमाने में अणुबम के मुकाबले में अणुव्रत आन्दोलन चलाकर आचार्य श्री तुलसी ने दुःख और निराशा के अन्धकार में भटकती हुई दुनियाँ को सुख-शान्ति की एक नई रोशनी दी है।

—— आचार्य श्री तुलसी दुनिया को मानवता का वही संदेश सुना रहे हैं जिसे कभी योगिराज कृष्ण ने सुनाया, महावीर स्वामी ने सुनाया, महात्मा गौतम बुद्ध ने सुनाया, जिसके लिए हजरत मुहम्मद साहब ने हिजरत किया और हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी शहीद हुए। आज उसी मानवता का संदेश, इन्सानियत का पैगाम आचार्य श्री तुलसी और आचार्य विनोबा भावे हमें सुना रहे हैं।

श्री रिषभदास रांका :— वैसे किसी तीर्थंकर, अवतार, पैगम्बर, मसीहा ने जो उपदेश दिया हो उसकी समयानुसार व्याख्या करने का कार्य आचार्य का होता है। उसे तुलसी जी ने बहुत ही उत्तम प्रकार से किया है, यह कहना ही होगा।

——उनके प्रतिकूल विचार रखने वाले कहते हैं कि वे जैसा जो आदमी हो, वैसी बात करते हैं। मन में एक बात हो और दूसरा भाव प्रकट करना दंभ ही तो है। यदि इतने साल

परिश्रम कर यही साधना की हो तो रत्न को चन्द रुपयों में बेचने जैसा है। जब साधना के मार्ग में दंभ से बढ़कर कोई दूसरा बाधक दुर्गुण न हो, तब क्या तुलसी जी जैसा साधक—विकास मार्ग का प्रतीक—इसी दंभ में उलझ जायगा, विश्वास नहीं होता।

कई अच्छे लोगों के मन में गलत फहमी है कि उनके शिष्य बड़े-बड़े लोगों को लाकर उनका इतना अधिक प्रचार क्यों करते हैं?...... आज का युग विज्ञापन का युग है। अच्छी बात भी बिना प्रचार के आगे नहीं बढ़ती। यदि अपनी अच्छी प्रवृत्तियों या आन्दोलन के प्रचार के हेतु यह सब किया जाता हो तो क्या उसे अयोग्य या त्याज्य माना जा सकता है?

श्री के० एस० धरणेन्द्रय्या :— " लोगों में व्यापक नैतिक अध पतन को देखकर आचार्य श्री तुलसी ने सारे राष्ट्र में पुनीत अणुव्रत-आन्दोलन शुरु किया है। जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के प्रतिपादन में उनका उत्साह सराहनीय है। महान् अशोक से उनकी तुलना की जा सकती है, जिसने अहिंसा के सिद्धान्त की शिक्षा और उनके प्रसार के लिए अपने दूतों को सुदूर देशों में भेजा था। सर्वोदय नेता के रूप में महात्मा गाँधी से भी उनकी तुलना की जा सकती है।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक है और उससे आध्यात्मिक प्रकाश तथा अन्तर्ज्ञान का तेज प्रस्फुटित होता है। लोग उन्हें पसन्द करते

हैं और शान्ति प्राप्त करने के लिए उसी तरह उनके पास आते हैं जैसे ईसामसीह के पास जाते थे। भगवान बुद्ध की तरह उन्होंने ऐसे निःस्वार्थ और उत्साही अनुयाइयों का दल तैयार किया है जो मनुष्य जाति की सेवा के लिए अपने जीवन अर्पित करने के लिए कटिबद्ध हैं।

श्रीमती सुधा जैन —— अणुव्रत आन्दोलन एक धार्मिक संस्था या अहिंसक क्रान्ति है, जिस ने देश में फैली अनैतिकता को बहुत कुछ दूर किया है और कर रही है। आचार्य विनोबा के भूदान यज्ञ की तरह यह भी प्रेम और सहिष्णुता का आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत यज्ञ है, जो कहता है, 'आओ! आओ! अणुव्रत की इस पावन अग्नि में अपने मन के मैल—अनैतिकता को भस्म कर दो। यहाँ कोई कठोरता नहीं, और जबरदस्ती नहीं।' देश के कोने कोने में फैले हुए साधु साध्वी गृहस्थों को नैतिकता का पाठ दे रहे हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम घर द्वार छोड़कर हमारी तरह सन्यासी बन जाओ, वरन गृहस्थ में रहते हुए सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का यथा साध्य पालन करो। वर्षों से आचार्य श्री तुलसी और उनका देश व्यापी संघ जागरण के इस महान् यज्ञ को प्रज्वलित किए है। आशा है आचार्य श्री तुलसी की यह साधना सफल होगी और देश में फैली अनैतिकता दिन प्रतिदिन दूर होगी।

डा० प्रभाकर माचवे :— " "देश काल के परिवर्तन के बावजूद नैतिकता की नींव जिस आधार पर बार - बार आकर रुकती है, वह यम - सयम का कोई न कोई रूप है। आदिम समाज से अराजक समाज तक सामाजिक आचार - सहिता का आधार ऐसे अपने आप बोलते हुए अनुशासन या नियम हैं (जो चाहे अलिखित हों), जो अपने स्वातंत्र्य के साथ दूसरे के स्वातंत्र्य में बाधा नहीं डालते। इस प्रकार से सारे मानव व्यापार अन्तत स्वाधीनता से सम्बद्ध है। मैं दूसरे को बदल नहीं सकता, इसलिए उपदेश और नसीहतें देना कोई मानी नही रखता। यह सब ऊपरी - ऊपरी हवायें हैं — जड़ों के भीतर कोई और चीज है जो काम करती है। व्यक्ति - व्यक्ति को नैतिक बल से बदल सकता है, यह हमारी पुरानी धारणा हमें बदलनी होगी। व्यक्ति केवल अपने को बदल सकता है। दूसरे पर उसका प्रभाव पडे, या न पडे। 'अन्य' या 'पर' का हम कुछ भी नहीं कर सकते, ऐसा आधुनिकतम पश्चिमी अस्तित्व वादी मानते हैं। अत. नीति की चर्चा हमेशा अपनी चर्चा होनी चाहिए, औरों की चर्चा हमें अटकाती है। कभी - कभी वह अपनी चर्चा न करने का बहाना बन जाती है। आत्म सयम या आत्म नियमन ही नीति का मूलाधार हो सकता है। उसी में सच्ची स्वतत्रता है। अणुव्रत - आन्दोलन का केन्द्र भी यही है।

श्री हरि भाऊ उपाध्याय :— फिर से इस बात ने जोर

पकड़ा है कि देश में – भारत में – एकता पैदा की जाय ।—एकता के इस प्रश्न के दो पहलू हो जाते हैं — भावनात्मक एकता और स्वार्थगत एकता । ये दोनों एक दूसरे के पोषक हैं । यह कहना बहुत कठिन है, इन में पहले कौन ? पहले बाप या बेटा ? बीज या फल, उत्पत्ति या प्रलय, जैसा ही जटिल यह प्रश्न है ।

मेरी राय में मानव जीवन में प्रेरणा दायनी शक्ति तो भावना ही है, बुद्धि उसका नियन्त्रण करती है, संतुलन रखती है ।—हमारे भारतीय जीवन की स्थिति, रक्षा और विकास के लिए 'भारतीय संविधान' बना हुआ है । स्वस्थ परम्पराएँ भी मौजूद हैं । आध्यात्मिक, धार्मिक या नैतिक ज्ञान उपदेश परम्परा की भी कमी नहीं है । सिर्फ दो ही बातों की अभाव या कमी नजर आती है—एक तो सुयोग्य और क्रियाशील तथा प्रभावशाली नेतृत्व और दूसरे व्यक्तियों में जागरूकता । प्रभावशाली नेतृत्व वही हो सकता है, जो स्वय इस एकता की प्रतिमूर्ति हो, इसी के लिए जीता और मरता हो । इस में कोई शक नहीं कि हमारे पूज्य आचार्य श्री तुलसी अणुव्रत आन्दोलन के रूप में एक संगठित नेतृत्व हमें दे रहे हैं । उनके क्षेत्र का दायरा भी बढ़ता ही जा रहा है । अतएव हमें उनसे और भी अधिक आशा होती है । अन्यान्य क्षेत्रों में भी ऐसे तेतृत्व की आवश्यकता है । वैसे तो बापू के रूप में एक आदर्श नेतृत्व हमें मिला था । अब पूज्य विनोबा और पूज्य

जवाहरलाल जी* के रूप में हमें जीवन की मूलभूत एकता पर अच्छा नेतृत्व मिल ही रहा है। इस से हमें आशा होती है कि भारत में जो अनेकता या फूट या भावनात्मक एकता का अभाव जगह - जगह दिखाई देता है, यह थोडे समय में समाप्त हो सकेगा।

श्री जयसुख लाल हाथी :— ....आचार्य श्री तुलसी ने 1949 में अणुव्रत - आन्दोलन चलाया।.. इस आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य ये हैं— 1) जाति, वर्ण, राष्ट्रीयता और धर्म का कोई भेद न करते हुए सब लोगों के लिए सयम का आदर्श प्रस्तुत करना और उस आदर्श के अनुसार अधिकाधिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित करना, 2) समाज में विश्व - शान्ति के लिए प्रचार करने के लिए प्रचारक तैयार करना और उन्हें प्रेरित करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की पाँच प्रतिज्ञाएँ लेने को कहता है।

........हम आज देखते हैं कि धर्म, भाषा, जाति और सम्प्रदाय के नाम पर लोग परस्पर लड रहे हैं। धर्म की भावना को लोगों ने ठीक प्रकार से नहीं समझा है। धर्म केवल मदिर जाने और दैनिक कर्मकाण्डों का पालन करने में नहीं है। वह इन सबसे कुछ अधिक है। वास्तविक धर्म सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता

---

* यह लेख 1962 का ही है।

दिखाने में है। पूजा की विधि कुछ भी हो, उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाए, और रचनात्मक दृष्टि कोण अपनाये बिना यह लक्ष्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

आचार्य श्री तुलसी ने एक धर्माचार्य के रूप में अपनी उदार मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

श्री मुकुटबिहारी वर्मा — "आज तो स्थिति यह है कि सब कुछ दूसरों से चाहा जाता है और खुद वैसा करने की चिन्ता नहीं की जाती। मानो हर एक यह चाहता है कि दूसरे सब तालाब में दूध डालें और मैं अगर पानी डालूँगा तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसा सोचना किसी एक का ही अधिकार नहीं होता, जिसका परिणाम यह होता है कि तालाब में ज्यादातर लोग पानी ही डालते हैं और दूध या तो कोई नहीं डालता या फिर ऐसे लोगों के अपवाद रूप होने से दूध की जगह पानी ही ज्यादा होता है। फलत आलोचना के बावजूद अनैतिकता और भ्रष्टाचार घटने के बजाय बढ़ते ही जा रहे हैं।

अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य में नैतिकता लाने का आन्दोलन है। यह अच्छा हो कि परोपदेश या पर निन्दा के बजाय यह हम लोगों में स्व कर्तव्य पालन की भावनाओं को प्रोत्साहन दें और ऐसे आदर्श उपस्थित करें जो दूसरों से चाहने या दूसरों की

आलोचना करने की बजाय खुद कोई अनैतिकता न करें, यानी कष्ट और असुविधा बचाने के लिए किसी तरह के प्रभाव का उपयोग करने के लोभ से मुक्त हो। ऐसा हो, तभी भ्रष्टाचार की समस्या का कोई समाधान सभव होगा, ऐसा हमारा नम्र अभिप्राय है। अत: नैतिकता का हमारा मूल्याकन बदलना चाहिए और उसकी कसौटी यह होनी चाहिए कि दूसरों से चाहने के बजाय खुद करने का प्रयत्न किया जाये।

न्यायमूर्ति श्री सुधिरंजन दास :—— इस समय हमारी दृष्टि धुंधली हो गई है और हमारे मन भ्रमित हैं। सतत भय ने हमको घेरा हुआ है। वास्तविक मूल्यों को हम बिल्कुल भूल गये हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुष के हृदय शोक और कष्ट से पीडित है। मित्रता और बन्धुता की सच्ची आवश्यकता जितनी आज है, उतनी पहले कभी नहीं थी। नैतिक पतन और मृत्यु की इस अन्धकारपूर्ण घडी में हमको समस्त मानव जाति के आगे मैत्री का हाथ बढ़ाना चाहिए जैसा कि ऋषि और कवि ठाकुरने अपनी कविता के अन्तिम चरण में कहा है :

मानव हृदय अशान्ति के ज्वर से पीडित है,
स्वार्थपरता का विष व्याप्त हो रहा है,
तृष्णा का कोई अन्त नहीं है
देशों ने अपने मस्तक पर घृणा का-रक्त-टीका-लगा लिया है।

उनको अपने दायें हाथ से स्पर्श करो
उन्हें एकात्म भाव प्रदान करो
सौन्दर्य की लहरें उत्पन्न करो
ओ! शान्त, ओ! मुक्त,
तेरी असीम दया और कृपा
विश्व के हृदय से अन्धकार की कालिमा को धो डाले।

मेरे विचार से अणुव्रत का भी यही सन्देश है। तो आइये, हम अपने मानव बन्धुओं के प्रति बन्धुता का हाथ आगे बढ़ायें, चाहे दुनियाँ के किसी भी भाग में क्यों न रहते हों। पृथ्वी पर मानव बन्धुता का प्यार फूले, फले और शाश्वत शान्ति का राज्य स्थापित हो।

प्यारे दोस्तो! आज 14 सितम्बर है। हिन्दी दिवस। हिन्दी इस देश को जोड़ने वाली भाषा तभी बन सकती है, जब हिन्दी भाषी और अहिन्दी भाषी भाइयों के मन में यह संकल्प हो कि देश की एकता सर्वोपरि है। एकता में बाधक किसी भी भाषा का कोई महत्व नहीं है। हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया सामने रखकर हम एक दूसरे को सही बात समझायें और खुद समझें, यह हमारी एकता के लिए अनिवार्य शर्त है। इसलिए अणुव्रत का सहारा हमारे काम का सिद्ध हो सकता है।

वैसे अणुव्रत आन्दोलन के द्वारा हिन्दी की और राष्ट्रीय

एकता की बड़ी सेवा हो रही है। यह मूक सेवा चलती रहेगी और यही हिन्दी और हिन्दुस्तान की सेवा का श्रेष्ठतम तरीका है।

दोस्तो! आचार्य श्री तुलसी और अणुव्रत-आन्दोलन के कुछ नेताओं के विचार आप देख चुके हैं। इस पर से आप आचार्य श्री के व्यापक व्यक्तित्व और विचार के विषय में सही अन्दाज लगा लिये होंगे। अब मैं इस छठे और अन्तिम चरण को श्री सियाराम शरण जी की निम्न युगल पक्ति के साथ समाप्त करता हूँ .—

अणुव्रत के आचार्यप्रवर श्री तुलसी के प्रति
अर्पित है मेरी लघु वचना प्रणति – नमस्कृति!

वय —

श्री सीताशरण शर्मा ·

म से ही सेवाभावी रहे

की लगन ने इन्हें आचा

विनोबा भावे की सेवा में पहुँच

दी।

लेखक (13 3 1931)

स्वाध्याय, सतसगति और परिश्रम से इन्होंने अपना विका किया है। आप ,ग्रामीण भाषा में अच्छी कविता लिखते हैं इनका लेख कई पत्रिकाओं में छप चुकी है। लिखने की ओर ध्या दें तो साहित्य की अच्छी सेवा हो सकती है।

'एस० पी० निराला'

'मसान कुटो'